समकालीन हिन्दी नाट्य-काव्यों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

(हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद की पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत)
शोध - प्रबन्ध

1985

प्रस्तुतकर्त्री :
कु. अदिति जायसवाल
एम. ए., एम. फिल.

नूरजहाँ बेगम
निर्देशिका :
डॉ० नूरजहाँ बेगम
एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (संस्कृत), पी-एच. डी.
प्राध्यापिका हिन्दी-विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

विजेन्द्र नारायण सिंह
अध्यक्ष :
डॉ० विजेन्द्रनारायणसिंह
एम. ए., डी. लिट्.
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

SUPERVISOR'S CERTIFICATE

This is to certify that Kum Aditi Jaiswal M.A, M.Phil is a bonafide student of the Department of Hindi, University of Hyderabad, and the thesis entitled "Samkaleen Hindi Natya Kavyon Ka Mano-vaigyanik Adhyayan", is a bonafide record of the research work done under my supervision for the award of PH.D. in Hindi.

Noorjahan Beg

NOORJAHAN BEGUM.

(Supervisor)

HYDERABAD

Dated 4th December 85.

DECLARATION.

I I hereby declare that this thesis entitled "Samkaleen Hindi Natya Kavyon Ka Manovaigyanik Adhyayan" has been written by me under the guidence and supervisor of Dr. Noorjahan Begum, M.A. (Hindi) M.A. (Sanskrit) Ph.D Lecturer is Hindi Department, University of Hyderabad for the award of Ph.D Degree in Hindi.

I also declare that this thesis is the result of my own effort and has not been submitted to any other University before, for any Degree or Diploma.

Aditi Jaiswal

HYDERABAD
Dated 11-12-1985

Aditi Jaiswal.

प्राक्कथन

समाज सापेक्ष अध्ययनों के मूल में व्यक्ति मन का अध्ययन अपना विशेष स्थान रखता है। परिस्थितियों की जटिलता समाज के कठोर नियम सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा धार्मिक प्रभाव मन की आशा आकांक्षाओं तथा कामनाओं को स्वच्छंद रूप में विचरने नहीं देते। फलस्वरूप उसमें अनेक विकार कुण्ठायें आदि उपस्थित हो जाती है। मानवसमाज के परिवर्तन के साथ-साथ यह प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। समसामयिक नाट्य-काव्यों में सामयिकता की दृष्टि और अस्तित्व पूर्ण क्षण के प्रति जागरूक चेतना की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति निहित है। समसामयिकता के दायित्व का निर्वाह करने के लिए यह आवश्यक है कि कवि के अन्दर आधुनिकता के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टि के साथ-साथ अनुभव के नये परिवेश की आस्था हो। नितान्त समसामयिकता का उद्देश्य यह है कि कवि के उस अनुभूति का भी महत्व स्थापित हो, जो वह मुक्त क्षणों के साथ-साथ उपलब्धि के रूप में पाता है, ग्रहण करता है। आधुनिकता जिस परिवेश का निर्माण करती है, समसामयिकता उस परिवेश के प्रति व्याप्त जागरूकता को क्रियाशीलता प्रदान करती है।

अतः समकालीन नाट्य-काव्यों का आग्रह जिस विशेष तत्व पर है, वह उस मानव व्यक्तित्व की स्थापना और उसकी उपयोगिता से विकसित होता है, जो समस्त विद्रूपताओं और कटुताओं के बावजूद मनुष्य को उसकी मूल मर्यादा के प्रति निजत्व और अस्तित्व के प्रति जागरूक रखना चाहता है। यह आग्रह निरा कपोल कल्पित नहीं है, वरन इसके पीछे समस्त मानव-चेतना का वह अनुबंध है जो एक सीमा

पर यथार्थ को पकड़ना चाहता है, किन्तु जो उसकी कुण्ठा का साधन न बनकर सम्पूर्ण चेतना की वास्तविकता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का अधिक सशक्त माध्यम रहा है ।

मनोविज्ञान व्यक्ति की जटिल परिस्थितियों से उत्पन्न मानसिकता का विश्लेषण परीक्षण, करके समुचित मार्ग निर्देश करता है, तथा भविष्य के लिए योजनाबद्ध कर व्यक्ति की उन्नति के साधन प्रस्तुत करता है ।" समकालीन नाट्य काव्य " के आवरण में लिपटा व्यक्ति और उसका जीवन मेरा अन्वेष्य है । कुण्ठाओं और अभावों के साये मे पलते आधुनिक व्यक्ति के शब्द चित्रों जो समकालीन नाट्य काव्य के रूप में समाज समक्ष उपस्थित है के मनोवैज्ञानिक रूप का उद्घाटन इस शोध-प्रबन्ध का उद्देश्य है । ताकि ज्ञान के आलोक में व्यक्ति के अभावों क T उसकी रुग्णता का यथा-शक्ति निराकरण किया जा सके अथवा उसके लिए मार्ग प्रशस्त किया जा सके ।

व्यक्ति को जानने की मेरी प्रारंभ से ही रुचि रही है । "समकालीन हिन्दी नाट्य-काव्यों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" शोध विषय को मेरी रुचि के अनुकूल - स्वीकृति प्राप्त हो गई । अतः मैंने समकालीन नाट्य-काव्यों को मनोवैज्ञानिक संदर्भ में निरखने परखने का प्रयास किया और इस शोध-कार्य को एक नई दिशा प्रदान की । इस क्षेत्र में कुछ कार्य सम्पन्न हुए हैं जैसे - आधुनिक मनोविज्ञान और सूर-काव्य (डॉ० कमला आत्रेय). आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन (गणेश दत्त गौड़). किन्तु समकालीन नाट्य काव्यों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दिशा में कोई कार्य नहीं हुआ है । इस कार्य को पूरा करने का मैंने विनम्र प्रयास किया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से छः अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में "व्यक्ति परिस्थिति और नवीन मनोविज्ञान के सिद्धांत का" व्याख्यायित करने का ध्येय रहा है । वंश एवं परिवेश व्यक्ति के विकास की अवस्थाएं मूल प्रवृत्तियाँ, मूल प्रारूप, मानसिक संघर्ष स्वप्न, मानसिक संतुलन के लिए अचेतन मन की कार्य विधि आदि वैज्ञानिक रूप से ।

द्वितीय अध्याय में समकालीन नाट्य काव्यों में मूल भावों की व्यंजना पर दृष्टिपात किया गया है । व्यक्ति में मूलभूत प्रवृत्तियाँ जैसे घृणा या विकर्षण, आत्म रक्षा की प्रवृत्ति पर आधारित भावनाएं जैसे विस्मय आदि हैं । इसके अतिरिक्त समकालीन नाट्य काव्यों में मिश्र भावों की व्यंजना भी दिखाई पड़ती है, जैसे- विश्वास, आशा, निराशा, अनुताप, शोक, हर्ष, श्रद्धा, कृतज्ञता , निर्वेद ग्लानि, उद्वेग, विषाद, क्षोभ, जड़ता, असन्तोष उन्माद आदि व्यक्ति की नैसर्गिक प्रवृत्तियों को अतीत से भी जोड़ा जा सकता है। व्यक्ति में आदिम जिज्ञासा आकांक्षा विश्वास संशय आदि का गंभीर एवं सुचिंतित विधान विद्यमान रहता है । ये मूल - प्रवृत्तियाँ मनुष्य मात्र की प्रवृत्ति नियति से परिचित कराती है । समकालीन नाट्य-काव्यों जैसे उत्तर प्रियदर्शी, सूखा सरोवर, उर्वशी, संशय की एक रात, महा-प्रस्थान, प्रवाद पर्व, आत्मजयी, एक कंठ विषपायी, शम्बूक, सूर्य-पुत्र आदि में मूलभावों की व्यंजना की गई है ।

तृतीय अध्याय में जातीयता के गुणों को मूल प्रारूपों के रूप में प्रस्तुत करने का ध्येय रहा है । युंग का कथन है कि मिथक किसी भी देश के सामूहिक अचेतन के समझने का अत्यन्त विश्वसनीय माध्यम है लगभग सभी नाट्यकाव्यों में सृष्टि, शिव, राम, कृष्ण अथवा ऐतिहासिक मिथकों का समावेश है ।

चतुर्थ अध्याय में समकालीन नाट्य-काव्यों में मानसिक संघर्ष तत्सम्बन्धी प्रेरणाओं, तज्जन्य कुण्ठाओं की प्रतिक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय में स्वप्न के कुछ प्रसंग व्यक्ति के सामान्य असामान्य क्रिया व्यापारों की व्याख्या प्रस्तुत है । समकालीन नाट्य काव्यों में स्वप्न सिद्धांत की दृष्टि से आत्मजयी विशेष उल्लेखनीय है ।

षष्ठ अध्याय में "भावनाओं की संतुलित अभिव्यक्ति" का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है । व्यक्ति अपनी वैयक्तिक सत्ता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न ही नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति अथवा उससे भी आगे बढ़कर सम्पूर्ण-सृष्टि के साथ अपना आत्मिक विकास एवं एकीकरण करता है और उसके स्वभाव विचार एवंकार्य सृष्टि-कल्याण के ही सहायक हो जाते हैं । सर्जकता, मौलिक नैतिक निर्णय, सहयोग, आत्मनिरीक्षण, आत्म विस्तार, संयोजनशील जीवन-दर्शन आदि अचेतन मन की इन कार्य विधियों द्वारा व्यक्ति इस अवस्था को प्राप्त होता है । अधिकांश आलोच्य नाट्य काव्यों में व्यक्ति इन्हीं कार्य विधियों से गुजरा हैं ।

उपसंहार में समकालीन नाट्य काव्यों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की सीमाओं और संभावनाओं को रेखांकित किया गया है ।

अंत में सहायक ग्रन्थों की सूची निबद्ध है ।

अध्ययन की सम्बन्ध में कवि श्री नरेश मेहता जी (संशय की एक रात एवं महाप्रस्थान के रचयिता) की मैं हृदय से कृतज्ञ हूं जिन्होंने अपना अमूल्य

समय देकर काव्य के संदर्भ में मेरी शक्ति का निवारण किया । अपने गुरु एवं भूतपूर्व विभागाध्यक्ष पूज्य प्रो० चन्द्रभान रावत जी की विशेष आभारी हूं जिन्होंने विषय को स्वीकृति प्रदान करते हुए समस्त विभागीय सुविधाएं भी मुझे प्रदान की ।

अंतः मैं मेरा पुनीत कर्तव्य है कि मैं अपनी मार्ग निर्देशिका डा० गुर-जहाँ बेगम के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करूं । जिनके मार्ग दर्शन के बिना इस प्रबन्ध की रचना सर्वथा असंभव थी । उनके उपकारों का स्मरण कर मेरा चित्त गद-गद एवं पुलकित हो जाता है । मैं समझती हूं कि उनका जितना स्नेह मुझे मिला है, उतना कम ही लोगों को प्राप्त होता है । इसे पाकर मैं अपने आपको धन्य समझती हूं।

टंकण कार्य में विशेष सावधानी बरतने पर भी कई भूलें हुई हैं । उन्हें सुधारने के प्रयास के बाद भी कुछ छूट गई हैं । उन्हें सुधारने के प्रयास के बाद भी कुछ छूट गई है । त्रुटियाँ परिस्थिति अनुसार मार्जनीय है ।

हिन्दी विभाग
हैदराबाद - विश्व विद्यालय,
हैदराबाद - (आ. प्र.)

विनीत,
(अदिति जायसवाल),
अदिति जायसवाल

दिनांक - 11-12-85

समकालीन हिन्दी नाट्य-काव्यों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

प्रथम अध्याय

व्यक्ति परिस्थिति और नवीन मनोविज्ञान के सिद्धान्त

1. वंश परम्परा और परिवेश

1.2 व्यक्ति के विकास की अवस्थाएँ

1.3 मानव व्यवहार की सोद्देश्यता

1.4 मूल प्रवृत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त

4.1 विरागात्मक वृत्ति पर आधारित भावनाएँ विकर्षण घृणा

4.2 आत्मरक्षा वृत्ति पर आधारित भावनाएँ भय

2.1 पलायन

2.2 भय

2.3 क्षुधा

2.4 शरणागति (दैन्य) एवं अधीनता (दासत्व)

2.5 जिज्ञासा अथवा कौतूहल वृत्ति (विस्मय)

1.5 स्वप्रतिष्ठापन अथवा अहंवृत्ति

4.3 व्युत्पन्न भावनाएँ

3.1 आशा

3.2 निराशा

3.3 अनुताप

3.4 घृणा

3.5 ग्लानि

3.6 क्रोध अथवा आवेश

3.7 विषाद

3.8 शोक

3.9 जड़ता

3.10 उन्माद

2. मूल प्रारूप

2.1 मिथक की मनोवैज्ञानिक भूमिका

2.2 मिथक और धर्म

2.3 मिथक तत्व तथा कल्पित तत्व

2.4 मिथकीय प्रतीक

3. मानसिक संघर्ष के लिए अचेतन मन की कार्य विधि

3.1 फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्त के आधार पर मानसिक संघर्ष

3.3 मनोविश्लेषण के कुछ नवीन सिद्धान्तों के आधार पर मानसिक संघर्ष

4. स्वप्न दृष्टि : फ्रायड, एडलर एवं युंग आदि

4.1 स्वप्न एक मानसिक प्रक्रिया

4.2 स्वप्नों का एक निश्चित अर्थ

4.3 स्वप्न में सुदूर अतीत के अनुभवों की प्राप्ति

4.4 स्वप्नों में एक से अधिक अर्थों की प्राप्ति

4.5 स्वप्न सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

4.6 स्वच्छन्द प्रवृत्ति की क्रियात्मक मूलवर्तिता के रूप

4.7 स्वप्नों में रुचियों या कल्पनाओं पर विजय

4.8 स्वच्छन्द का वर्तमान का समस्याओं से सम्बन्ध

4.9 स्वच्छन्द सामूहिक अचेतन मन की भाषा

4.10 स्वच्छन्द साहित्य वर्णन के लोक

5. <u>मानसिक असन्तुलन के लिए अचेतन मन की कार्य विधि</u>

5.1 कुण्ठाग्रस्तता

5.2 मौलिक दैहिक निर्बंध

5.3 संयोग

5.4 आत्म विस्तार

5.5 आत्म निरीक्षण

5.6 संयोगशील जीवन दर्शन

द्वितीय अध्याय

समकालीन नाट्य-नाटकों में मूल भावनाओं की व्यंजना

1. क्रियात्मक वृत्ति पर आधारित भावनाएँ-विकर्षण ।घृणा।

2. आत्मरक्षा वृत्ति पर आधारित भावनाएँ

2.1 पलायन

2.2 भय

2.3 जुगुप्सा

2.4 आत्मापत्ति । दैन्य एवं अधीनता । आत्महत्या ।

2.5 जिज्ञासा अथवा कौतूहल वृत्ति

2.6 मातृ भावना अथवा वात्सल्य

1.5 स्वप्रतिष्ठापन अथवा अहंवृत्ति

3. व्युत्पन्न भावनाएँ

3.1 आशा

3.2 निराशा

3.3 अनुताप

3.4 शंका

3.5 ग्लानि

3.6 उद्वेग अथवा आवेग

3.7 विषाद

3.8 क्षोभ

3.9 जड़ता

3.10 उन्माद

तृतीय अध्याय

समकालीन नाट्यकाव्यों में मिथक की मनोवैज्ञानिक भूमिका

1. शिव का मिथक

2. राम का मिथक

3. कृष्ण का मिथक

4. अन्य मिथक

4.1 उर्वशी का मिथक

4.2 विश्वामित्र का मिथक

4.3 नचिकेता का मिथक

5. ऐतिहासिक मिथक

6. सृष्टि मिथक

चतुर्थ अध्याय

समकालीन नाट्य-काव्यों में मानसिक संघर्षों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

1. फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर

1.2 दमन

1.3 स्थानान्तरण

1.4 तादात्म्यीकरण

1.5 औचित्य स्थापन

1.6 विचारद्वन्द्व

2. एडलर के मनोविज्ञान के आधार पर अन्तर्द्वन्द्व

3. ओटोरैंक, केरनहार्नी, एरिक फ्रोम के सिद्धान्त के आधार पर

पंचम अध्याय

समकालीन नाट्य - काव्य और स्वप्न मनोविज्ञान

1. फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त

1.1 स्वप्न एक मानसिक प्रक्रिया

1.2 स्वप्नों का निश्चित अर्थ

1.3 स्वप्नों में एक से अधिक अर्थों की प्राप्ति

2. एडलर के स्वप्न सिद्धान्त

2.1 स्वप्न व्यक्ति की क्रियात्मक सृजनशीलता के अंग

2.2 स्वप्न अपूर्ण एवं सम्पूर्ण रूप में

2.3 स्वप्नों में संघर्ष का कठिनाइयों पर विजय

2.4 स्वप्न भविष्य दर्शन के द्योतक

3. युंग के स्वप्न सिद्धान्त

3.1 स्वप्नों का वर्तमान समस्याओं से सम्बन्ध

3.2 स्वप्न सामूहिक अचेतन मन की भाषा

षष्ठ अध्याय

समकालीन नाट्य-काव्यों में भावनाओं की सन्तुलित अभिव्यक्ति

1. मानसिक संतुलन के लिए अचेतन मन की कार्य विधि

1.1 बुद्धिपरता

1.2 मौलिक नैतिक निर्णय

1.3 सहयोग

1.4 आत्म विस्तार

1.5 आत्म निरोध

1.6 संयोजनशील जीवन दर्शन

प्रथम अध्याय

व्यक्ति परिस्थिति और नवीन मनोविज्ञान के सिद्धान्त

1. वंश परम्परा और परिवेश
1.2 व्यक्ति के विकास की अवस्थाएँ
1.3 मानव व्यवहार के सोद्देश्यता
1.4 मूल प्रवृत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त
4.1 विरागात्मकवृत्ति पर आधारित भावना - विकर्षण [घृणा]
4.2 आत्मरसावृत्ति पर आधारित भावनाएँ
2.1 पलायन
2.2 भय
2.3 युयुत्सा
2.4 शरणागति [दैन्य एवं अधीनता [दासत्व]
2.5 जिज्ञासा अथवा कौतूहल वृत्ति [विस्मय]
1.5 स्वप्रतिष्ठापन अथवा अहंवृत्ति
4.3 व्युत्पन्न भावनाएँ
3.1 आशा
3.2 निराशा
3.3 अनुताप
3.4 श्रद्धा
3.5 ग्लानि
3.6 उद्वेग अथवा आवेग
3.7 विषाद
3.8 क्षोभ
3.9 जड़ता
3.10 उन्माद
2. मूल प्रारूप
2.1 मिथक की मनोवैज्ञानिक भूमिका

2.2 मिथक और धर्म

2.3 मिथक सत्य तथा इतिहास सत्य

2.4 मिथकीय भूगोल

3. मानसिक संघर्ष के लिए अचेतन मन की कार्यविधि

3.1 फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्त के आधार पर मानसिक संघर्ष

3.2 एडलर एवं युंग के मनो विज्ञान के आधार पर मानसिक संघर्ष

3.3 मनोविश्लेषण के कुछ नवीन सिद्धान्तों के आधार पर मानसिक संघर्ष

3.4. स्वप्न दृष्टि : फ्रायड, एडलर एवं युंग आदि

4.1 स्वप्न एक मानसिक प्रक्रिया

4.2 स्वप्नों का एक निश्चित अर्थ

4.3 स्वप्नों क्ष क्ष में सुदुर अतीत के अनुभवों की प्राप्ति

4.4 स्वप्नों में एक से अधिक अर्थों की प्राप्ति

4.5 स्वप्न सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

4.6 स्वप्न व्यक्ति की क्रियात्मक सृजनशीलता के अंग

4.7 स्वप्नों में संघर्ष या कठिनाइयों पर विजय

4.3 स्वप्न का वर्तमान समस्याओं से सम्बन्ध

4.90 स्वप्न सामूहिक अचेतन मन की भाषा

4.10 स्वप्न भविष्य दर्शन के बोधक

5. मानसिक संतुलन के लिए अचेतन मन की कार्यविधि

5.1 सुस्थिरता

5.2 मौलिक नैतिक निर्णय

5.3 सहयोग

5.4 आत्मविस्तार

5.5 आत्मनिरीक्षण

5.6 संयोजनशील जीवन दर्शन

प्रथम अध्याय

व्यक्ति परिस्थिति और नवीन मनोविज्ञान के सिद्धान्त

साहित्य का बहिर्मुखी अध्ययन आधुनिक अनुसंधान का ध्येय है। इन अध्यायों में सांस्कृतिक अध्ययन सामाजिक आदि प्रमुख है। इन अध्ययनों के द्वारा समाज और साहित्य का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

समाज सापेक्ष अध्ययन के मूल में मानव-मन का अध्ययन अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मानव की क्रिया-प्रतिक्रियाएँ उसकी मानसिक स्थिति पर आधारित रहती है। इस मानसिक स्थिति पर सामाजिक चेतना और उस वर्ग जिससे व्यक्ति का सम्बन्ध है, की चेतना का भी प्रभाव रहता है। हमेशा संघ में रहने के कारण मानव के सामने अनेक समस्याएँ संघर्ष एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है। जिनका प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परिस्थितियों की जटिलता समाज के कठोर नियम सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा धार्मिक प्रभाव मानव मन की आशा आकांक्षाओं तथा कामनाओं को स्वच्छंद रूप में विचरने में नहीं देते फलस्वरूप उसमें उनके विकार कुण्ठाएँ आदि उपस्थित हो जाती है यह क्रम मानव समाज के रूप परिवर्तन के साथ साथ और भी बढ़ता ही जाता है। मनोविज्ञान मनुष्य की मानसिक स्थिति जैसे - चेतना, स्मृति कल्पना आदि का मनोवैज्ञानिक परीक्षण करके अपना समुचित विकास करता है व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी कार्यों व व्यवहारों का अध्ययन करता है तथा भविष्य के लिए योजनाबद्ध कर व्यक्ति की उन्नति के साधन प्रस्तुत करता है।

व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी कार्य व्यवहार के मूल में वंश परम्परा और परिवेश निहित है। वंश परम्परा और परिवेश से हटकर मनुष्य के अस्तित्व तथा उसके व्यवहार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। कुछ

सीमा तक व्यक्ति का अस्तित्व वंश पर निर्भर है तथा कुछ सीमा तक परिवेश पर, इन्हीं विचारों में वंश तथा परिवेश को लेकर विद्वानों में म मत भेद रहा है कुछ विद्वान वंश को महत्व देते है कुछ और परिवेश को । और अधिकांश इन दोनों के संयोजन को ।

<u>वंश परम्परा और परिवेश</u> – व्यक्ति के जीवन में परिस्थितियां बदलती रहती है और वह किसी न किसी तरह उनके साथ सामंजस्य बैठाने को चेष्टा करता है और कभी परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेता है । इस सामंजस्य बैठा सकने की प्रवृत्ति के लिए अँग्रेजी में एक शब्द आता है – एडाप्टेशन – इसे हिंदी में "अनुकूलन" कह सकते हैं । व्यक्ति आनुवांशिक गुणों के कारण परिस्थितियों को अपने अनुरूप ढाल लेता है ।

"मनोविश्लेषणवादी" फ्रायड का कथन है कि – "व्यक्ति दूसरों के साथ रहने की इच्छा करता है क्यों कि इससे अधिकांश शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य प्राणियों के साहचर्य में होती है । अनुकरण की प्रवृत्ति भी व्यक्ति की एक विशेष प्रवृत्ति है ।"[1] व्यक्ति अपने परिवेश से प्राप्त अभीष्ट पदार्थों तथा परिस्थितियों के मध्य से गुजरकर तथा परिपालकों द्वारा अनुमोदित एवं समाज स्वीकृत मार्ग पर चलकर ही अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति को अनेक विधियों को सीखता है । इस प्रकार परितृप्ति के लिए मिलने वाले प्रशिक्षण के साथ ही वह अपने व्यक्तित्व के प्रमुख पक्षों को अर्जित करता चलता है । कभी-कभी वह शक्तिशाली अथवा लोकोत्तर [ईश्वर] से सहायता के लिए याचना करता है । यह भी व्यक्ति की एक प्रवृत्ति मानी जा सकती है ।

व्यक्ति व्यक्ति में अन्तर होता है मानसिक दृष्टि से कोई भी दो व्यक्ति अभिन्न नहीं होते हैं । कोई भी व्यक्ति समान रूप से कुशल नहीं होता है व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर होता है – इसका प्रमुख कारण है – आनुवांशिकता, परिवेश, घर का वातावरण, सामाजिक-आर्थिक स्थिति और शिक्षा की व्यवस्था ।

---

1. Frued Sigment, Group Psychology and The Analysis of the Ego – P-57.

नयी परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए प्रायह - "स्मृति, तर्क करने की क्षमता, समझने की क्षमता तथा भाषाज्ञान की आवश्यकता को महत्व देता है ।"[1]

एडलर आनुवांशिकता तथा पर्यावरण के अतिरिक्त व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति को भी महत्व देता है ।"[2] रचनात्मकता शक्ति ही मुख्य रूप से व्यक्ति के निर्माण में सहायक होती है ।

युंग का कथन है कि - "व्यक्ति जिन गुणों का अर्जन करता है वे किसी न किसी रूप में उसकी आनुवांशिकता से सम्बन्धित होते हैं ।"[3] व्यक्ति अपने जीवन में जो कुछ अनुभव प्राप्त करता है उसके आधार पर उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है ।

वाटसन व्यक्ति के विकास में वातावरण के प्रभाव को महत्व देता है उसका कथन है कि - "मुझे एक बच्चा दो और मैं उसे किसी प्रकार का विशेषज्ञ बनाऊँगा वह डाक्टर, वकील, कलाकार, व्यापारी, भिखारी, चोर अथवा अयोग्य भी बन सकता है ।"[4] व्यक्ति के विकास में पर्यावरण का महत्व सर्वोपरि है ।

मानवतावादी मनोविश्लेषक एरिक फ्रोम का कथन है कि - "व्यक्ति की प्रकृति उस समाज एवं संस्कृति पर निर्भर है जिसमें वह रहता है ।"[5] जब परिस्थितियां व्यक्ति के अनुकूल होती है तभी उसका समुचित विकास हो सकता है अन्यथा नहीं । [5] Mans Mind is influenced by his body his mental state by his phisical and social experience. Erich Fromm, The crisis of psychoanalysis p-180

फ्रोम प्रत्येक व्यक्ति को अनन्य मानता है उसके अनुसार "व्यक्ति की अनन्यता उसकी आनुवांशिकता तथा जीवन में अर्जित गुणों पर निर्भर है ।"[6]

6. Man is able to know what is good and act according on strength of his natural potentialities. E. Fromm, Man for himself P-41

1. Each individual always manifests himself as unique, be it in thinking, feeling, speaking or acting; Worman, contemporary theories & systems in psychology. 9-385.
2. Each Endowed with an individual creative power; Wolman, contemporary theories and systems in Psychology-165.
3. Mental energy or hibido is used basically for self preservation and preservation of specicies; Wolman, Contemporary Theories and systems in psychology - 301.
4. Give me a child and I shall train him to become any type of specialist. I might select-doctor, lawyer, artist, merchant chief and yet even begger man and thief regardless of Talent. Watson, Behaviorism - P.17.

~~Mans mind is influenced by his body his mental state by his~~

सुलीवान - "व्यक्ति के निर्माण में समाज एवं संस्कृति को महत्वपूर्ण योग देता है ।"[1] जब कोई व्यक्ति समाज के या समाज के अन्य सदस्यों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ रहता है तो उसमें एक प्रकार की चिन्ता हो जाती है इसके अतिरिक्त पारस्परिक सम्बन्ध टूट जाने का भय भी चिन्ता का कारण बनता है । व्यक्ति इस चिन्ता से मुक्ति पाने की चेष्टा करता है इसलिए वह समाज और संस्कृति से अधिकतम सहयोग प्राप्त करना चाहता है यदि कभी चिन्ता से मुक्ति नहीं होती तो मानसिक रोगी हो जाता है ।

आलपोर्ट - "वंशानुक्रम से व्यक्ति का निर्माण मानते है उसी के अनुसार उसका स्वभाव बनता है वंशानुक्रम से सम्बन्धित जो संवेगात्मक तत्व होते हैं वही स्वभाव Temperament कहलाते हैं ।"[2]

"क्षेत्र मनोविज्ञानवादी" लेविन कहते हैं कि, "सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश में जो अभिवृत्तियां व्यक्ति धीरे-धीरे सीखते हैं उन्हीं से उसका व्यक्तित्व ओतप्रोत होता है ।"[3] वस्तुएं घटनाएं और लोग जिस रोशनी में देखे जाते हैं उसी में हमारी प्रतिक्रिया की जाती है जिस सांस्कृतिक, सामाजिक वातावरण में व्यक्ति पलता है वही उसका मानसिक धरातल निर्धारित करता है । प्रजातंत्र की तानाशाही, धार्मिक कट्टरता और परिवार में कलहपूर्ण वातावरण इत्यादि व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते । इस प्रकार वातावरण में पाई जानेवाली कुछ वस्तुओं को वह पसन्द करता है और उनकी तरफ आकर्षित होता है जिनको वह पसन्द नहीं करता उनसे दूर रहना चाहता है ।

---

1. All activities which pertains more to the culture are imbedded in particular way in individual.
&. H.S.Sullivem,conceptions of Modern Psychiatry- P-6.
2. Temperament refers to the individual emotional nature including insuceptibility to the emotional stimulations his coustom strength and speed of response the qualities of his prevising mood. All port- personality p-54.
3. Personality has ever device the important of environment and impact of changing situation.
Lewin,Principles Topological Psychology.

गेस्टाल्टवादियों में कोफ्का के अनुसार "व्यक्ति के स्वभाव को जानने के लिए पर्यावरण तथा विशेषकर उस क्षेत्र के अध्ययन पर देना है, जिसमें मानव का व्यवहार होता है ।"[1] व्यक्ति व्यवहार की उत्पत्ति उस क्षेत्र अथवा पर्यावरण के प्रति ऐसी अनुक्रिया है जो अर्थपूर्ण और अखण्ड है । कोफ्का पर्यावरण की व्याख्या करते हुए एक उदाहरण देता है जो इस प्रकार है - "जाड़े की एक सन्ध्या में एक घुड़सवार किसी सराय में पहुँचा । उसे इस बात की बड़ी प्रसन्नता थी कि वह तूफान से बचकर सराय तक पहुँच गया था । सराय के मालिक ने उससे पूछा कि आप किस तरफ से आए हैं ? घुड़सवार ने एक ओर इशारा किया । सराय के मालिक ने बड़े आश्चर्य से कहा क्या आप जानते हैं कि आप ठंड से जम गयी झील से होकर आए हैं यह सुनकर घुड़सवार अचानक जमीन पर गिर पड़ा ।"[2] कोफ्का के इस उदाहरण से स्पष्ट है कि व्यक्ति के निर्माण में जो पर्यावरण है उससे उसका घनिष्ट सम्बन्ध है व्यक्ति जो कार्य करता है वह उसके पर्यावरण तथा क्षेत्र से सम्बन्धित होता है ।

मैक्डगल वातावरण की अपेक्षा व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम को अधिक महत्वपूर्ण स्थान देता है अर्जित व्यवहार वंशानुक्रम के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानांतरित होते रहते हैं । पूर्वजों के व्यवहारों का प्रभाव सन्तानों पर पड़ता है । परिवेश के द्वारा अर्जित व्यवहार पीढ़ियों में मिलते हैं ।

1.2 <u>व्यक्ति के विकास की अवस्थाएँ</u> - व्यक्ति अपनी पैतृकता और परिवेश में भिन्न होने के कारण अपने व्यवहार में भी भिन्न होते हैं । उम्र की वृद्धि के साथ साथ जैसे व्यक्ति के संवेगों का विभेदीकरण होता है, वैसे व्यक्तित्व का भी प्रौढ़ावस्था तक आते आते एक दूसरे विशेष में अन्तर स्थापित करने वाले लक्षणों का उदय होता है ।

---

1. The impenetrable barriers causes strong lension,involving the ego area, and explosive emotional behaviour will follow. Kurt Koffka,Principles of Gestalt Psychology p-408.
2. Kurt Koffka,Principles of Geslatt Psychology,P-27

फ्रायड व्यक्तित्व के विकास की तीन अवस्थाएँ बताता है - प्रथम अवस्था को शैशविक, द्वितीय को अव्यक्त और तृतीय को किशोरावस्था। उसका कथन है कि - "व्यक्तित्व को विकास सिद्धान्त लिबिडो" के प्रवाह से प्रभावित है।"[1]

एडलर के अनुसार "बालक रचनात्मक शक्ति को लेकर उत्पन्न होता है ये रचनात्मक शक्ति बालक के अंगों को प्रभावित करने में समर्थ होती है।"[2] बचपन की अनेक असफलताओं और आवश्यकताओं के कारण बालक में एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति का निर्माण होता है विकास की सम्पूर्ण अवस्था तक उसके मन में अपने माता-पिता और समस्त विश्व के साथ निजी सम्बन्धों में एक हीनता की भावना बनी रहती है हीनता की भावनाओं पर विजय पाने के लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। जन्म के समय से ही शिशु पर्यावरण के प्रति आक्रोश प्रकट करता है क्योंकि पर्यावरण के साथ सामंजस्य कष्ट दायक होता है जिसके फलस्वरूप लड़ना, मारपीट करना और अन्य निर्दयी व्यवहार सीखता है लेकिन जब बाद में बालक का विकास होने लगता है तब आक्रोश का रूप बदल जाता है और उसके आक्रोश की अभिव्यक्ति समाज में होनेवाले प्रतियोगिता खेल प्राप्ति, सामाजिक राष्ट्रीय आदि के रूप में पाते हैं।

युंग ने व्यक्तित्व के विकास में कामुकता को अभिव्यक्ति नहीं दी लिबिडो के सम्बन्ध में उसके विचार फ्रायड से भिन्न है।"[3] माता पिता में न्यूराटिक प्रवृत्तियाँ है तो शिशु अचेतन रूप से इन प्रवृत्तियों को ग्रहण कर लेता है।

---

1. The measure principle is personality is effect by hibido. James strachey; Psychological works of Sigmund Prend - P-217 Vol.VII P-217.
2. The child is born with a free creative power - this innate power is exposed to influences stemming the child's organism Alfred Adlem - The practice and theory of Individual Psychology P 4-5.
3. Jjngs concept of hibido has most forgivable departure from Prends creed. Wood worth, contemporary Schools of Psychology p-306.

फ्रायड ने व्यक्तित्व की मानसिक स्थिति के सम्बन्ध (id, Ego, Super Ego) में जो समाधान प्रस्तुत किए है उसी से सम्बन्धित ओटोरैंक ने व्यक्ति के विकास को तीन अवस्थाएं बताया है। उसके अनुसार "जब बालक काम इच्छा के जन्म तथा समाज के वातावरण में सामंजस्य स्थापित करता है, जब बालक समाज के आदर्श एवं मूल्यों को प्राप्त करने की चेष्टा करता है जब वह प्रौढ़ावस्था में आ जाता है तो विकास की तीसरी अवस्था म है।"[1]

केरन हार्नी बचपन को महत्वपूर्ण बताती है "बचपन में अर्जित अनुभव यदि दुःखदायी होते है तो बच्चा आगे चलकर मनस्तापी बन जाता है। स्नेह के अभाव में वह अपने आप को असुरक्षित समझने लगता है।"[2]

एडवर्ट मीड "नवजात शिशु को केवल एक जैविक प्राणी कहता है।"[3] शिशु के विकास के साथ उसका व्यवहार परिवर्तित होता है। शिशु के एक जैविक मानव से विकसित होने पर सामाजिक बन जाता है जैविक मानव से जब सामाजिक मनुष्य बन जाता है तो उसकी व्यवहार व्यवस्था पूर्ण रूपेण संगठित हो जाते है।

लेविन के अनुसार "अवस्थावृद्धि के साथ साथ बच्चा विभिन्न वस्तुओं में अन्तर समझने लगता है।"[4] ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है त्यों त्यों उसमें एक वस्तु को अन्य वस्तु से भिन्न समझने की क्षमता आ जाती है जिसे (Differentiation) कह सकते हैं।

1.3 <u>मानव व्यवहार की सोद्देश्यता</u> - आवश्यकता को पूर्ति हेतु व्यक्ति जो कार्य करता है वही उसका व्यवहार व्यक्त करता है। इस प्रकार व्यवहार 1. सोद्देश्य होता है 2. कार्य आवश्यकताओं का ह्रास करना होता है।

---

1. The impulse (instinct) emotion and there by distinguishing the biological elementary contain is the id and social aspects assimilated into the super ego as given collective ideologies. Paskotto, Will theraphy truth and reality-p-144.
2. Lack of satisfaction produces anxiety in child this anxiety should be a result of invironmental factor. KarenHorney, our inner Conflicts - p-75.
3. Physical and social events occurity remote a distance in child. Lewin, Principles of Topological Psychology - p-185.

अतः व्यवहार का कारण आवश्यकता है प्रायः हम दो प्रकार की आवश्यकताएँ मानते हैं एक तो दैविक शारीरिक आवश्यकताएँ दूसरे व्युत्पन्न आवश्यकताएँ। शारीरिक आवश्यकताओं का तात्पर्य आंगिक व दैविक न्यूनताओं से है जैसे शरीर में पानी, शक्कर, खुराक की कमी। व्युत्पन्न आवश्यकताएँ मनोवैज्ञानिक न्यूनता की सूचक है जैसे स्नेह, सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा की कमी। जब आवश्यकताएँ अनुभव होती है तो व्यक्ति कुछ करने के लिए बाध्य होता है।

फ्रायड इस सिद्धान्त को इस रूप में स्पष्ट करते हैं - "हमारे जीवन के सारे आचरण व व्यवहार हमारे मानस की आन्तरिक प्रवृत्तियों द्वारा प्रेरित होते हैं उनका कुछ न कुछ उद्देश्य होता है। उसके द्वारा जीवन के किसी बहुत बड़े अभीष्ट की सिद्धि होती है।"[1] मानव आन्तरिक शक्ति का केन्द्र है और अन्दर से ही काम करता है। वह एक क्रियाशील प्राणी है जो निरन्तर अपने वातावरण से प्रभावित होता है। उसके जीवन और आचरण को आसपास की चीजों और लोगों के साथ अन्तर्क्रीड़ा कहा जाता है वह अपने अपने परिवेश में कई प्रकार के परिवर्तन करता है और इस प्रक्रिया में उसके अन्दर भी परिवर्तन होते हैं।

एडलर का कथन है कि "व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या उसका अन्तिम लक्ष्य ही कर सकता है।"[2] किसी लक्ष्य की गोचरता के बिना हम विचार अनुभव संकल्प कार्य कुछ भी नहीं कर पाते। यह लक्ष्य हीनता की भावना पर विजय पाना है। इससे भी अधिक मनुष्य महत्व और सत्ता के लिए निरन्तर चेष्टावान रहता है। महत्वाकांक्षा का लक्ष्य हमारे जीवन में एक शत्रुत्व और लड़ने की भावना उत्पन्न करता है, और उसके कारण मनुष्य में आक्रान्त प्रवृत्ति का उदय होता है लेकिन समाज में सफलता प्राप्त करने के लिए उसे समाज के साथ अपने व्यक्तित्व का सामंजस्य स्थापित करना

---

1. All behaviours of our life are direced by our inner perseverence.
   Benjamin B Wolman, contemporary theories and systems in psychology - p-266.
2. The final goal can explain man's behaviour.
   Alfred Adler, The practice and theory of individual psychology - p-45.

पड़ता है । मनुष्य में जिस प्रकार हीनता की भावना से उत्पन्न महत्वाकांक्षा और आक्रोश की प्रवृत्ति नैसर्गिक है उसी प्रकार सामाजिकता से संयुक्त प्रेम की भावना का उदय होता है । मनुष्य में वैयक्तिक महत्वाकांक्षा जितनी मूलभूत है उतनी ही सामाजिक जीवन की आवश्यकता भी मनुष्य के अनवरत अस्तित्व के लिए समाज सर्वोत्तम प्रमाण है । सामाजिक और सहयोगी जीवन भी उसकी प्रधान शक्ति है । इसके लिए उसे अपनी अंत: प्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनों से जूझना पड़ता है । इस आवश्यकता से ही समाज का उदय और विकास हुआ है और उसकी सफलता सामाजिक सहयोग पर ही निर्भर रहती है ।

वाटसन मानव व्यवहार को अत्यंत जटिल मानता है - "इस जटिल व्यवहार का अध्ययन वह "उद्दीपक और प्रतिवार" के माध्यम से करता है ।"[1]

गेस्टाल्टवादियों में कोहलर के अनुसार "व्यक्ति का सम्बन्ध एक ऐसे व्यवहार क्षेत्र से है जो उसके व्यवहार का स्तर निर्धारित करता है ।"[2] व्यक्ति को समझने के लिए "परिवेश और व्यक्ति का नहीं, परिवेश के विरुद्ध व्यक्ति का नहीं, परिवेश में व्यक्ति का अध्ययन करना चाहिए । इस रूप में गेस्टाल्टवाद व्यक्ति और वातावरण को एकान्वित रूप में देखने का प्रयास करता है ।

मनुष्य का व्यवहार उसके कार्य से सम्बन्धित होता है और उद्देश्य लक्ष्य होता है और लक्ष्य सदैव आन्तरिक क्षेत्र निर्धारित करता है । क्षेत्र मनोविज्ञान के अनुसार "यदि मनुष्य इन सीमाओं को तोड़कर जाना चाहता है तो कुछ अवरोध उसे ऐसा नहीं ~~करने~~ करने देते ।"[3]

---

1. He is closely at the two terms stimulus and response. Walson, Behaviourism - p-11.
2. Human actions are usually related to physical reality not as it is but it appears to perceiving subject. The environment as perceived together with perceiving subject from psychological field; Benjemin Wolman, contemporary theories and systems in psychology - p-433.
3. A barrier is constraint which has no balance outset and egoests on force until force exerted on it when it offers a certain amount of resistance; Benjamin, B.Wolman, contemporary theories and systems in psychology p-454.

व्यक्ति का उद्देश्य जीवित रहना है इसके लिए वह कुछ न कुछ व्यवहार करता है। व्यवहार सदैव बाह्य घटनाओं द्वारा फलित होते हैं, या किन्हीं बाह्य उद्दीपकों का परिणाम है ऐसी बात सदैव नहीं होती कुछ क्रियाएं आन्तरिक भी होती है। इन आन्तरिक क्रियाओं का कुछ न कुछ प्रयोजन होता है इस प्रकार व्यवहार चाहे बाह्य शक्ति का परिणाम हो या आन्तरिक क्रियाओं का सदैव समायोजन की तलाश करता है। कभी कभी व्यक्ति के व्यवहार का कारण वंशगत भी होता है व्यक्ति नैसर्गिक प्रवृत्तियों को लेकर उत्पन्न होता है और प्रयोजनात्मक क्रियायें सम्पन्न करता है इन क्रियाओं के फलस्वरूप व्यक्ति में व्यवहार पैदा होता है इस प्रकार व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया के पीछे कोई न कोई प्रयोजन होता है।

1.4 <u>मूल प्रवृत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त</u> - व्यक्ति के विकास के साथ साथ इन प्रवृत्तियों में परिवर्तन होता रहता है जीवन में जो भी परिस्थिति सामने आती है, जिस वातावरण में वह विचरण करता है उसके प्रति क्रियातत्परत्व इन्हीं मूल प्रवृत्तियों के कारण होता है जिस तरह किसी मशीन में चाबी भर दी जाती है और वह बाद में यथा समय अनुकूल प्रतिकूल वास्तविक प्रभाव के कारण एक विशेष ढंग से प्रतिक्रिया करती है उसी तरह मनुष्य भी इन्हीं मूल प्रवृत्तियों की चाबी से शक्ति समन्वित होकर जन्म लेता है। उसमें एक विशिष्ट ढंग से प्रतिक्रियान्वित होने की क्षमता रहती है। हम जिसे मानव चरित्र कहते हैं उसके निर्माण के लिए ——— कच्चीसामग्री इन्हीं मूल प्रवृत्तियों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। कुछ मूल प्रवृत्तियाँ वंशानुक्रम के द्वारा उद्देश्यपूर्ण विकास के लिए निरन्तर गतिशील रहती है तथा प्राणी का व्यवहार भी उसी के अनुरूप होता है। मैक्डूगल के अनुसार "यह मूल प्रवृत्तियां मनोभौतिक वंशानुगत होती है। प्राणी का देखना, सुनना इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण है क्योंकि सुनने तथा देखने के पश्चात ही उस वस्तु के प्रति संवेगात्मक उत्तेजना होती है। तथा परिणाम स्वरूप प्राणी उस ओर अग्रसर होता है।"[1]

---

1. Instincts are inherited psychophys ial disdosition which determine class to experience and emotional excitement and to act in regard and to it in a particular manner. M.C.Dougall, Introduction to social psychology-p-32.

मनोभौतिक घटनाओं को व्याख्या करता हुआ मैक्डूगल कहता है कि "इसके लिए भविष्य में जिस घटनाओं की संभावना है उसकी पूर्व दृष्टि और ऐसी पूर्व दृष्टि पर ध्यान देना जरूरी है ऐसी सारी घटनाए, पूर्व दृष्टि को सारी चेष्टाएँ अब एक दूसरी मौलिक जाति के व्यवहारवाद का उदाहरण प्रतीत होती है, वह जाति जिसे हम प्रयोजक मुखी कहते हैं ।"[1]

4.1 विरागात्मक वृत्ति पर आधारित भावना - विकर्षण घृणा

मैक्डूगल के अनुसार "दुर्गन्धित, हानिकारक चिकने पदार्थों द्वारा घृणा का भाव उत्पन्न होता है ।"[2] इसकी अनुभूति घृणा स्पद वस्तुओं, व्यक्तियों के प्रत्यक्षीकरण द्वारा होती है यह स्मृतिजन्य घृणा मानसिक है । इससे शरीर सिकोड़ना, हाथ फेंकना मुँह बनाना एवं घृणा - व्यंजक शब्द कहना आदि की स्थिति उत्पन्न होती है ।

4.2 आत्म रक्षा की वृत्ति पर आधारित भावनाएँ

2.1 <u>पलायन [भय]</u> - पलायन मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण भावना है । मैक्डूगल के अनुसार - "विनाशकारी तत्वों से दूर भागने के रूप में भय जीवन रक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण भावना है ।"[3] आतंक भय का तीव्रतम रूप है जिसमें सम्पूर्ण स्नायु तंत्र अत्यधिक क्षुब्ध होकर मूर्च्छा अथवा मृत्यु का कारण बनता है ।

2.2 <u>भय</u> - भय उत्पन्न करने वाले कारणों में मैक्डूगल कहता है कि - आलम्बन के परिचय या अपरिचय से भय का सम्बन्ध नहीं है अपरिचित आकस्मिक ध्वनि या रहस्य भय के सहज आलम्बन है । भय के परिणाम गंभीर होते हैं । "इससे प्रेरित व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए भयस्थल से पलायन,

---

1. All such events, all foresighted string, seem to be instances of a second fundamental type of causation the type which we call purposive.
   Mc.Dougall, The energies of Man- p-7.
2. The instinct repulsion seems merely in the avoidance of noxious things, or their rejection.
   Mc.Dougall, An Introduction to Social Psychology - p-55.
3. It is great inhibitor of action, both present action and future.
   Mc.Dougall & William, Social Psychology p-267.

वेग चिल्लाना, तीव्र श्वास-प्रश्वास अवरोध, जड़ता आदि क्रियाओं को प्रकट करता है ।"[1]

गार्डनर मर्फी भय के कारण एवं परिणाम समर्थन करता हुआ विभिन्न व्यक्तियों में भय की विभिन्न प्रतिक्रिया होनी स्वीकार की है - "इस में हृदय डूबता, शरीर कांपता शीतल प्रस्वेद होना आदि है ।"[1]

फ्रायड समस्त मानव व्यवहार को "जीवन प्रवृत्ति मृत्यु प्रवृत्ति" इन दो प्रवृत्तियों से संचालित करता है ।

ये भाव अत्यधिक तीव्र एवं सशक्त आवेग उत्पन्न करते हैं । इन भावों के प्रेरक पूर्व निश्चित पदार्थ नहीं होते, बल्कि व्यक्ति के किसी आवेग या भाव तज्जनित क्रिया की पूर्ति में बाधक प्रत्येक वस्तु इन्हें प्रेरित कर सकती है । इस प्रत्याक्रमण में आश्रय को अपने प्राण रक्षा की भी चिंता नहीं रहती प्राय: पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा यह वृत्ति अधिक होती है ।

2.3 जुगुप्सा - ये आकस्मिक स्थायी विध्वंसात्मक सम्पूर्ण एवं लक्ष्योन्मुख होते है - "इन भावों में व्यक्ति प्रथम तो बाधक को अपने मार्ग से हटाने का प्रयत्न करता है, किन्तु इसमें सफलता न मिलने पर उसे नष्ट करने के लिए तत्पर होता है ।"[2] भौंह सिकोड़ना, ओठ ऊँचा होना, गर्जन-तर्जन करना, काटना शरीरांगों का फूलना, रोमांच आदि इन भावों से उत्पन्न क्रियाएँ है आधुनिक जीवन में नियंत्रित जुगुप्सा की स्वीकृति द्वारा क्रीड़ा, शिक्षा साहित्य एवं विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा भी इसका महत्वपूर्ण निर्माणकारी पक्ष है जिसमें पराजित व्यक्ति या व्यक्ति समूह भी अपनी स्पर्द्धा कुशलता बढ़ाने का रचनात्मक मार्ग ही अपनाता है ।

---

1. The dilated pupil, the staring eyes the dry mouth, the arrested digestion the paller of the Srin the raped pulse and breathing all these are sumptoms of fear. Mc.Dougall, An out line of Psychology - p-322.
2. The patient live propetually infear shrinking interror from the unusual sound and surrounds with safe guards against danger, Gardner Murphy. An introduction to Psychology-p-89.
3. IAnd its impulse is to breakdown any such obstruction and destroy what ever offers this opposition. Mc.Dougall. An introduction to social Psychology p-60.

2.4 शरणागति (दैन्य) एवं अधीनता (दासत्व) - मैक्डूगल कहता है कि व्यक्ति को स्वभावत: अपने अन्दर अधीनता की भावना जगानी होती है ।"[1] व्यक्ति जब युयुत्सा-वृत्ति का आश्रय लेकर अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं होता, तब शक्तिहीनता एवं असहायता जनित विशेष प्रकार की ध्वनि आदि करता है जो उसके दैन्य की सूचक है । अश्रु, सिसकियाँ, एवं भूमि पर लोटना आदि इसकी अनेक चेष्टाएँ है । समाज एवं धर्म द्वारा व्यक्ति में अधीनता वृत्ति जगाकर उसके विकास में योग दिया जा सकता है ।

2.5 जिज्ञासा अथवा कौतूहल वृत्ति (विस्मय) जिज्ञासा अथवा कौतूहल सहज प्रवृत्ति को अनुसंधान प्रेरक तथा मानव की ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी उन्नति एवं प्रवृत्ति विजय में अत्यधिक सक्रिय मानते हैं ।"[2] जिज्ञासा, सहज प्रवृत्ति से सम्बन्धित भाव असामान्य वस्तु से उत्पन्न होता है मानव का दार्शनिक चिन्तन मूलत: इसी प्रवृत्ति पर आधारित है ।" यह भाव असामान्य वस्तु से उत्पन्न होता है वस्तु के अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करने के मूल में अनुसंधान की चेष्टा, कानों एवं नेत्रों को गड़ा देना, उत्कीर्ण होना आदि इससे उत्पन्न शारीरिक एवं मानसिक चेष्टाएँ है ।

1.5 स्वप्रतिष्ठापन अथवा अहंवृत्ति - विस्मय मानव अन्तस में आत्म लघुता जगाता है, किन्तु अहंवृत्ति उसमें आत्म श्रेष्ठता की अनुभूति से उद्दीप्त करती है । फ्रायड ने "इदं, अहं एव पराहं आदि का वर्णन किया है । किन्तु इस वर्णन में "अहं" भाव न होकर एक प्रकार से मानव के त्रिविध विभाजन का अंग मात्र है, जो मन के इदं एवं पराहं अगों के साथ सम्बद्ध रहता हुआ उसकी इच्छा पूर्ति का साधन भर है ।"[3]

---

1. This instinct seems to be specially adopted on the receptive side.
   Mc.Dougall, An introduction to Social Psychology p-55.
2. The Curiouisty normally proceeds in atleast two phases a phase of approach to the object and a phase of closer examination by one more channels of sense.
   Mc.Dougall William, An outline of Psychology p-162.
3. R.S.Wood Worth, contemporary theories and systems in psychology - p-188.

एल्फ्रेड एडलर ने श्रेष्ठता भावना एवं हीनता ग्रंथि के माध्यम से अहं का चित्रण किया है, जिस के अनुसार व्यक्ति आत्म-सर्वोपरिता की अभिव्यक्ति करता हुआ सब पर अपना प्रभुत्व आरोपित करने का प्रयत्न करता है और सब व्यक्तियों के प्रति आक्रमण का व्यवहार करता है ।

मैक्डूगल - "अहंवृत्ति को मुख्यतः मानव में ही विकसित एवं सामाजिक भाव कहता है, क्योंकि इसका प्रदर्शन जन-समाज के मध्य होता है ।"[1] इसके उत्तेजक कारणों के रूप में ऐसे व्यक्तियों की उपस्थिति हो सकती है, जिनसे अहं ग्रस्त व्यक्ति स्वयं को किसी न किसी रूप में श्रेष्ठ समझने की चेष्टा करता है । उन व्यक्तियों से प्राप्त आदर कृतज्ञता एवं प्रशंसा आदि उसके अहं को बढ़ा देती है । इसकी अभिव्यक्ति आत्म प्रदर्शन करने, अकड़ कर चलने, अपनी शक्ति, सम्पन्नता, सुन्दरता, अपने वंश भाग्य आदि की अनावश्यक डींग मारने आदि के रूपों में होती है । आत्म श्रेष्ठता से भरा व्यक्ति अपने निकट के अन्य व्यक्तियों पर प्रभुत्व स्थापन का प्रयत्न करता है और उनके द्वारा अपने आदेशों का पालन में शिथिलता दिखाये जाने पर अपनी त्रुटि बतलाये जाने पर क्रुद्ध हो उठता है ऐसा उत्कृष्टतम ईश्वर-शक्ति के ज्ञान की धार्मिक शिक्षा अथवा परहित-वादी आवेगों से युक्त "कोमल भावों" अथवा दोनों के सम्मिलित प्रभाव से विनम्र बन सकता है ।

4.3 <u>व्युत्पन्न भावनाएँ</u>

3.1 <u>आशा</u> - मैक्डूगल "बाधाओं के आगमन के कारण लक्ष्य प्राप्ति के विश्वास में कुछ सन्देह उत्पन्न होने से आशा की उत्पत्ति मानते हैं ।"[2] इसमें बाधाओं की समाप्ति एवं लक्ष्य प्राप्ति की संभावना बनी रहती है ।

---

1. This instinct self feeling corresponds to his emotional state. Man struts before the world boasts of his strength. Mc.Dougall, William, An introduction of Social psychology p-
2. Hope is increases the activity of desire aids it in resisting misfortune. Mc.Dougall, An introduction to social psychology p-369.

आशा लक्ष्य की स्पष्ट व्यक्ति का एवं उसकी प्राप्ति के साधनों के परिज्ञान में सहायक होती है और कर्म-प्रक्रिया की स्पष्टतर चेतना जगाती है। बाधाओं की न्यूनता अथवा दूर होने की स्थिति में लक्ष्य सिद्धि की आनन्दमयी पूर्व कल्पना जगाये रखना आशा की प्रकृति है।

3.2 <u>निराशा</u> - मैक्डूगल के अनुसार - "बाधाओं की सापेक्षिक सघनता एवं तीव्रता मानव मन में लक्ष्य सिद्धि की आशा अधिकाधिक क्षीण करती हुई उसमें न्यून अथवा गहन निराशा उत्पन्न करती है गिरता साहस, नमित सिर कभी सहायता के लिए निष्फल पुकार करता आदि निराशाजन्य मानसिक शारीरिक चेष्टाएं है।

3.3 <u>अनुताप</u> - निराशा से पीड़ित व्यक्ति अपने अतीत कर्मों आदि का चिन्तन करके अनेक प्रकार से पछताता है जो अनुताप या पश्चाताप कहलाता है। अनुताप के मूल में लक्ष्य प्राप्ति की ऐषणा का अस्तित्व होता है।

शोक - " मैक्डूगल - "शोक मूल न हो कर के बल्कि व्युत्पन्न होता है। शोक की अभिव्यक्ति रुदन, विलाप, सिसकियां भरना, अश्रुमोचन एवं ईश्वर को सहायता के लिए पुकारना दैव पर दोषारोपण करना आदि में होती है।"[1] वास्तव में शोक का मुख्य आधार किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु है इससे उत्पन्न चेष्टाओं के अन्तर्गत अपने विषय में यह हीन भावना आती है कि मृतक की जीवन रक्षा के अमुक-अमुक उपाय नहीं कर पाये अथवा उचित अवसर पर शीघ्र पूर्ण प्रयत्न करने में असफल रहें।

---

1. Sarrow is not a primary but a derived emotion and seem with in that of late to cry out for aid and comfort to cling to its objects and resists consolation to restore its object.
Mc.Dougall William, Social Psychology - p-377.

विलियम मैक्डूगल - "हर्ष को गहन आवेग मानता है । प्रेमोत्पन्न प्रसन्नता हर्ष का सुन्दर उदाहरण है जिसमें प्रिय से सम्बन्धित हमारे को मूल प्रयत्नों की सफलता कारण रूप में बसी रहती है ।"[1] प्रेम की सफलता के अतिरिक्त घृणा अन्य प्रतिशोध की सफलता से भी हर्ष की भावदशा होती है जिसके मूल में किसी सबल स्थायी भाव के अन्तर्गत वात्सल्य, आत्म मान आदि एक अथवा एकाधिक मौलिक भाव रहते हैं ।

3.4 श्रद्धा - मैक्डूगल के अनुसार श्रद्धा एक धार्मिक संवेदना है जो गिने चुने व्यक्तियों में होती है । इसमें विस्मय, भय, कृतज्ञता एवं ऋणात्मक आत्मानुभूति अर्थात आत्मलघुता की भावनाओं का योग रहता है ।"[2] भय के अतिरिक्त शेष तीन भावनाओं का समावेश श्रद्धा में माना जा सकता है । आत्म लघुता की अनुभूति प्रिय की प्रशंसा उसके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन के रूप में होती है ।

3.5 ग्लानि - ग्लानि का अर्थ "अवसाद या क्लान्ति" के रूप में लिया जा सकता है । यह एक प्रकार का अनुताप है जिसमें मूलत: विकसित आत्म मान अथवा अहं भाव रहता है और उसी के साथ-साथ अन्य सामान्य मौलिक भावों को सत्ता रहती है । इस भाव में दोषपूर्ण तथा असफल अतीत कार्यों पर वेदानुभूति होती है, जिसमें सुधार नहीं किया जा सकता और जिसमें व्यक्ति के अहं पर आघात पहुँचता है । यह स्थिति अन्य किसी के नहीं, व्यक्ति के अपने ही कार्यों द्वारा उत्पन्न होती है और इसी कारण कार्य दोष आदि से उत्पन्न क्रोध स्वयं की भर्त्सना एवं आत्मपीड़न के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है ।

---

1. Joy also is one of the derived emotion for others it implies or presupposes the working within us of some strong desire.
Mc.Daugall, William, An outline of Psychology p-343.
2. Reverence is the religious emotion parexcellence few merely human powers are capable of exciting reverence, this blend of wonder, fear, gratitude and negative self feeling.
Mc.Dougall -Social psychology - p-115.

3.6 ईर्ष्या - मैक्डूगल के अनुसार, "ईर्ष्या किसी सुसंगठित स्थायी भाव पर आधारित मिश्र भाव है। यह स्थायी भाव किसी वस्तु के प्रति हमारा राग या प्रेम एवं x हमारा आत्ममान या अहं प्रकट करता है।"[1] ईर्ष्या अंत:करण की कुटिल वृत्ति है। ईर्ष्या में प्रेम अहं, आत्म लघुता एवं क्रोध का मिश्रण भी हो सकता है।

3.6 उद्वेग अथवा आवेग - मैक्डूगल - "उद्वेग को हमारी प्रिय वस्तु पर आघात अथवा विनाश की संभावना से उत्पन्न वेदना मानते हैं, जिसमें उस वस्तु के प्रति कोमल संवेग उसकी हानि करनेवाले तत्व के प्रति ईक्त क्रोध का मिश्रण रहता है।"[2] उद्वेग भय से मिलता जुलता भाव है जो संभावित हानि की प्रतिक्रिया के रूप में जन्म लेता है।

3.7 विषाद - विषाद भी दु:खात्मक भाव है विषाद जन्य क्रियाओं की अभिव्यक्ति शरीर शैथिल्य, मुख मुरझाना, कम्प, रोम हर्ष या रोमांच, त्वचा का जलना मन का भ्रमित होना या चक्कर खाना, खड़ा न रह सकना, वस्तुओं का हाथ से छूटना आदि के रूप में होती है।

3.8 क्षोभ - व्यक्ति जब किसी अप्रिय घटना अथवा अपमान जनक परिस्थिति में पड़ जाता है और उसका प्रतिकार करने में स्वयं को सामान्यत: असमर्थ पाता है तो उसकी यह उत्तेजक मानसिक विकलता को "क्षोभ" कहा जाता है।

3.9 जड़ता - जड़ता की उत्पत्ति चिन्ता, उत्कण्ठा भय विरह, इष्ट अनिष्ट के श्रवण दर्शन से बतलाई गई है। जड़ता की स्थिति केवल एक भाव से उत्पन्न न होकर परिस्थिति के अनुसार एक से अधिक भावों के मिश्रण से उत्पन्न होती है। हर्ष एवं विस्मय अथवा प्रेम, निराशा एवं तीव्र वेदना या विषाद आदि के साथ मिश्रित होने से जड़ता की तीव्र भावाकुलता उपस्थित होती है। मनोवैज्ञानिक रिबों का कथन है कि, "यह चरित्र में क्रिया प्रेरणा के लिए आवश्यक अनुभूति का अभाव होता है।"[3]

Inertia is only a barren soil on which nothing will grow.
Ribot, The psychology of Emotions - p-162

1. Jealousy arises when the object of the sentiment gives to another, or merely is thought to give to another, any part of the regard this claimed for the self. It is thus an stable state of emotion of which most constant element is the painfully checked positive self feeling. Mc.Dougall, Social psychology + p-118.
2. A universal tendency of mind, which is also familiar as to run some risk of being neglected, must be briefly to be respected more readily in virtue of its previous occurence

3.10 उन्माद - हैडफील्ड - "उन्माद के भावात्मक रूप के स्थान पर "हिस्टीरिया" आदि केवल रोगों का वर्णन देता है - "हिस्टीरिया" लैंगिक विषमताओं के अतिरिक्त सहानुभूति की कामना तथा कठिन परिस्थितियों से पलायन से भी होता है तथापि यह मस्तिष्क के स्नायुओं आदि के क्षतिग्रस्त हो जाने उत्पन्न रोग ही है ।"[1] इसके शारीरिक लक्षणों में ताप, स्पर्श आदि संवेदनात्मक अक्षमता, ऐंठन, पक्षाघात, भूखनाश आदि इसकी पुष्टि करते हैं ।

व्यक्ति की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का सम्बन्ध अतीत से भी जोड़ा जा सकता है । मनुष्य में आदिम जिज्ञासा आकांक्षा विश्वास संशय आदि का गंभीर एवं गुम्फित विधान विद्यमान रहता है । यू मूल प्रवृत्तियां मनुष्य मात्र की प्रवृत्ति नियति से परिचित कराती है इनके द्वारा मानव सत्य को उद्घाटित किया जा सकता है ।

2. मूल प्रारूप - जातीयता के गुण मूल प्रारूपों प्र के रूप में होते हैं युंग के व्यक्तित्व सिद्धान्त में मूल रूपों का बड़ा महत्व है । मूल रूप एक विश्वव्यापी विचार है और इसके द्वारा ही सामूहिक अचेतन गठित होता है । यही सामूहिक अचेतन युंग के शब्दों में मिथक है ।

2.1 मिथक की मनोवैज्ञानिक भूमिका - मिथक अंग्रेजी के "मिथ" शब्द का हिंदी पर्याय है और अंग्रेजी "मिथ" शब्द यूनानी भाषा के "माइथास" से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है "आप्त कथन" अथवा "अतर्क्य कथन" । हिंदी में "मिथ" के लिए "कल्प कथा" "पुरा कथा" आदि अन्य शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु अब "मिथक" ही एक प्रकार से रूढ़ हो गया है ।

मिथक का सम्बन्ध ऐसे गाथाशास्त्र से हो सकता है, जिसमें आदिम धर्म का अध्ययन किया जाता है ।"[2]

---

1. Hysteria, because a define physical symptom is substituted for the mental and moral conflict.
   J.A.Hadfield, Psychology and Morals.
2. Mythologu is the study of primative early form of religion while it was living faith.
   Levis spence, An introduction to Mythology p-12.

प्राय: अंग्रेजी साहित्य में myth की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि यह सत्य पर आधारित नहीं होते ।"[1]

इन्साक्लोपीडिया में मिथकों को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि मिथक वह कहानी है जो अधिकांशत: किसी अद्भुत बात या तथ्य को स्पष्ट करती है जैसे - किसी नगर की अग्नि, संसार की उत्पत्ति, देवी देवताओं की उत्पत्ति और जीवों के विकास के बारे में कुछ बातें स्पष्ट होती है । मिथ से तात्पर्य सामूहिक अचेतनों देवी-देवताओं की प्राचीन परम्परागत कथाओं से है जो किसी तथ्य की या प्राकृतिक सिद्धान्तों की व्याख्या करती है । "साथ ही इसका अर्थ मिथ्या और क्पोलकल्पित भी मानते हैं ।"[2]

फ्रायड परांह को अहं का विकसित एवं संशोधित रूप कहता है । इसका निर्माण सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों के मूल्यों एवं संस्कारों द्वारा मानव-मन में अचेतन रूप से होता है अधिकांश रूप में परांह अचेतन होता है और व्यक्ति को अज्ञात रूप से ही नियंत्रित एवं संशोधित करता रहता है तथा उसे आदर्श जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करता है । ~~XXXX~~ "प्राथमिक रूप से इसका लक्ष्य उन प्रवृत्तियों को नियंत्रित तथा संचालित करना है जो अनियंत्रित रहती है ।"[3]

जुंग के अनुसार - "मिथक की रचना प्राक्तन संस्कारों से है जो प्रत्यक्ष या उसकी वस्तुपरक व्याख्या करने में आदिम मानव की विशेष रुचि नहीं थी । लेकिन बाह्य जगत के समस्त ऐन्द्रीय अनुभवों को आन्तरिक और मानसिक घटनाओं के रूप में अधिगत करने की उत्कट आवश्यकता का अनुभव उसका अचेतन मन अनिवार्य रूप से करता था ।"[4]

---

1. M.Georg Hewlley, poltic process in new English Bictionary
2. Mythology is collection of Myth-chamberst London and Edinburg Edition - 1954.
3. R.S.wood worth, contemporary schools of psychology-p-188-89.
4. D.Yakobi, The Psychology of the Jung - p-30.

Warren and Wellek के अनुसार "मिथक वर्णनात्मक होते है ये कथित कथा के उद्गम उसकी दिशाओं और सृष्टि के कारणों में "हमारे क्रियाकलापों की विस्तृत व्याख्या करते हैं साथ ही प्रकृति का स्वरूप और मनुष्य के उद्देश्य की व्याख्या करते हैं ।"[1]

मिथक का उपयोग काल्पनिक रूप से मानव मन में निहित सत्य को प्रकट करता है ।"[2]

Alan Watt के अनुसार "मिथक जटिल कहानियाँ कुछ वास्तविकता को लिए कुछ काल्पनिक होती है जो कई कारणों से मानव जीवन के आन्तरिक भावनाओं को स्पष्ट करते हैं ।"[3]

David Bidney के अनुसार "मिथक सार्वभौमिक सांस्कृतिक सिद्धान्त है जो बौद्धिक शक्तियों का समावेश करती हुई अनेक रूपताओं से प्रारंभ होती है ।"[4]

Carfries के अनुसार "मिथक मानव की शक्तियों का ऐसा स्वतंत्र रूप है जिसमें निजी संरचना कार्य-प्रणाली प्रकटीकरण और अनुभवों की एकता होती है ।"[5]

Joseph Margolies के अनुसार - "मिथक एक काल्पनिक योजना मात्र है जो स्वतंत्र रूप से वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हैं और सशक्त रूप से बाह्य संसार के प्रति अपने दृष्टिकोण को स्थापित करते हैं ।"[6]

Lewis Spence के अनुसार "मिथक का सम्बन्ध ऐसे गाथा शास्त्र से हो सकता है जिसमें आदिम धर्म का अध्ययन किया जाता है ।"[7]

---

1. Warren and Wellek. Myth & literature p-5.
2. Mirror-person to person,conservation of nature An ancient Indian tradition - September 1985 - p-5.
3. William Righter. Myth and Literature p-5.
4. William Righter, Myth and Literature p-5.
5. William Righter, Myth and Literature p-5,
6. William Righter, Myth and Literature p-2
7. Lewis spence. An introduction to mythology p-12.

मिथ का अर्थ मिथ्या और कपोल कल्पित भी हो सकता है ।"[1]

सामान्य रूप में मिथक का अर्थ हो ऐसी परम्परागत कथा है, जिसका सम्बन्ध अतिप्राकृतिक घटनाओं और भावों से होता है । मिथक मूलत: आदिम मानव के समष्टिमत की सृष्टि है जिसमें चेतना की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है । मिथक की रचना उस समय हुई जब मानव और प्रकृति के बीच की विभाजक रेखाएँ स्पष्ट नहीं थीं - दोनों एक सार्वभौम जीवन में सहभागी थे, वे परस्पर सहयोग एवं संघर्ष के सूत्र में बंधे हुए थे, और चेतन मानव का मन अज्ञान रूप से प्रकृति की घटनाओं को अपने जीवन की घटनाओं तथा अनुभवों के माध्यमों से समझने का प्रयास करता था । समष्टि मत द्वारा प्रकृति के तत्वों और घटनाओं के मानवीकरण की यह अचेतन प्रक्रिया ही मिथक की रचना का मूल है । इन उद्धरणों से मिथक के रूप में विषय में निम्नोक्त निष्कर्ष प्राप्त होते हैं -

1. मिथक का रूप कथात्मक होता है

2. इस कथा की घटनाएं लोक बाह्य, एक प्रकार से अलौकिक या अति मानवीय होती है - किन्तु मानव जीवन के लिए उनकी अपनी विशेष सार्थकता अनिवार्य रहती है, अर्थात अलौकिक एवं अतिमानवीय होने पर भी मानव जीवन के लिए वे किसी प्रकार अप्रासंगिक नहीं होती ।

3. मिथक की रचना में यद्यपि कल्पना का अनिवार्य योगदान रहता है, फिर भी उसकी प्रतीति सत्य रूप में ही होती है ।

4. कल्पना और सत्य या भाव गत सत्य और वस्तुगत सत्य की अभेद प्रतीति मिथक की प्रकल्पना का आधारतत्व है ।

5. मिथक मानव जाति का सामूहिक स्वप्न और सामूहिक अनुभव है ।

6. मिथक पूर्वकालीन ऐतिहासिक घटना या आस्था है ।

7. मिथक में प्रतीक विद्यमान होते हैं ।

8. मानव-चेतना मिथकीय चेतना से विकसित होकर यथार्थवादी अथवा ऐतिहासिक चेतना में परिवर्तित हो जाती है । ऐतिहासिक चेतना के

---

1. Mythology in collection of myth. Chamberst-Mythology-p-2

साथ ही मिथकीय चेतना विलुप्त होकर संस्कार या युंग की शब्दावली में "सामूहिक अवचेतन" रह जाती है । यही सामूहिक अवचेतन आगे चलकर समाज में विभिन्न रूढ़ियों और परम्पराओं को जन्म देता है ।

मिथक में जो महत्वपूर्ण प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है वह है आदिम मनुष्य का मन । आदिम मिथक के समाप्त हो जाने पर भी उसकी अर्थवत्ता बनी रहती है । उदाहरण के लिए – कोई देवता है जो आकाश से पानी बरसाने की क्षमता रखता है, इसी क्षमता के कारण वह महत् है । देवता की मूल कल्पना के उपरांत फिर इस कल्पना के चारों ओर एक कथा का ताना बाना बुना जाना कठिन न था प्रत्येक प्राकृतिक व्यापार को देखकर x उसके सहज मन ने उसे आधार बनाकर एक कथा गढ़ ली, उस कथा में उस व्यापार के प्रति सम्बद्ध भाव निबद्ध हुए और मिथक की उत्पत्ति हुई । मिथक की उपर्युक्त उत्पत्ति प्रक्रिया के फलस्वरूप प्राय: सभी देशों के मिथक प्रकृति से सम्बद्ध रहे हैं । आदिम मानव ने सभी प्राकृतिक घटनाओं को मनुष्य की भाँति प्राणवान तथा विभिन्न प्रकार की इच्छाओं वाला माना । चन्द्रमा, ध्रुव, विन्ध्याचल, गंगा आदि की कथाएं इसके उदाहरण के रूप में देखी जा सकती है । भारतीय मिथक अधिकांशत: प्रकृति से सम्बद्ध है । मैक्डानल कीथ ने अपने प्रसिद्ध वैदिक ग्रंथ – "वैदिक माइथोलोजी" में विभिन्न पुराख्यानों के स्वरूप का विवेचन करते समय प्रकृति के परिवेश से उत्पन्न और विकसित मिथक की विशेष ढंग से चर्चा की है । कीथ ने अपने इस ग्रंथ में पुरादेव, पुराप्रकृति, पुराख्यानांतर्गत आनेवाली कुछ पुरा-प्राकृतिक कथाओं तथा सृष्टि और जगत के नियम मीमांसा आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विभिन्न प्राकृतिक मिथकों का विवेचन किया है ।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि प्रकृति के विभिन्न संघातों के फलस्वरूप बने मिथक के मूल और विकसित स्वरूप की स्थापित में प्रकृति ने कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

---

1. अनु रामकुमार राय, वैदिक माइथोलोजी – पृ सं0 14–19

2.2 मिथक और धर्म - साहित्य में जहाँ रहस्यात्मक धर्म साधनाओं का पुट होता है वहाँ मिथक बनाम धर्म के द्वन्द्व पर भी विचार किया जा सकता है। मिथक शास्त्रियों के अनुसार मानव संस्कृति के विकास में मिथक का अंत और धर्म का प्रारंभ कब होता है कहना कठिन है क्यों कि मिथक और धर्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मिथक ऐसे गाथा शास्त्र है जिसमें आदिम धर्म का अध्ययन किया जाता है। मैलिनोव्स्की ने आदिम जीवन के प्रारंभ में खतरों और समस्याओं पर जादू और मिथक शास्त्र का विकास मानते हैं, शाक्त, शैव, नाथ सम्प्रदायों में भी यही हुआ है जादू को अंध विश्वासों का अवतार तथा धर्म को सर्वोच्च नैतिक आदर्शों का प्रतीकात्मक अभिव्यंजना माना गया है। लेकिन जब धार्मिक विश्वासों को जादू से सम्बद्ध किया गया तब वे भी अन्धविश्वास बन गए। जादू की आदिम कला, आदिम मिथक, आदिम विज्ञान चारों पर्यवसित रहें है क्योंकि मनुष्य के कुतूहल से ही जादू का जन्म हुआ तथा कुतूहल ही धर्म का आदिम रूप है। साहित्य में धर्म और मिथक का मिथकीय धर्म रूप भी होता है।

2.3 मिथक सत्य तथा इतिहास सत्य - मिथक सत्य और इतिहास सत्य में भौतिक अन्तर है। मिथक सत्य श्रद्धा और विश्वास पर आधारित है आश्रित है तथा कर्मकाण्डों से गुंथा है। इतिहास सत्य विज्ञान तथा तथ्यों पर आधारित होता है तथ्यों को संकलित करने के बाद उनकी व्याख्या करने पर ऐतिहासिक सत्य प्राप्त होता है मिथकों में यदि तथ्यों का उद्घाटन किया जाए तो उसका प्रत्यक्ष रूप ही विलीन हो जाता है। ऐतिहासिक सत्य मिथकीय सत्य से जोड़े जा सकते है जिससे आर्किटाइपलों का पुनरान्वेषण होता है। ये आर्किटाइपल अपना सन्दर्भ बदल कर आते हैं क्योंकि आज के यातनापूर्ण जीवन में इनका अस्तित्व उतना ही सत्य है जितना प्राचीन और आदि काल में था। आदि रूप मानस ऊर्जा के स्रोत नहीं है, पर बाह्य जीवन के परिज्ञान के भी स्रोत है। ये आदि रूप ऐतिहासिक प्रक्रिया में सदैव

घटित होते हैं इस प्रकार के आदिरूप है प्रकाश, धरती, आकाश आदि जो सदा साहित्य और कला में रचनात्मक सन्दर्भ पाते हैं। विम्ब की रचना के लिए इन आदि रूपों को ध्यान रखना आवश्यक है।

मानव का जीवन एक कथा है, यह कथा है मानव के भोग, प्रतिदान और मुक्ति की, अधूरी आकांक्षाओं तथा अभावों से पीड़ित, नियति से परिचालित एक सफल कहानी है जिसका प्रत्येक सोपान खण्डित है। इन बिखरे खंडों, ध्वस्त स्वप्नों तथा गलित तत्वों से युक्त जो अस्पष्ट किन्तु सुवर्ण रश्मियों से सम्बन्धित जो बिंब बनते हैं, उन बिंब समूहों का पुंजीभूत रूप है मिथक।

इस तथ्य को स्पष्ट करने और मिथक तथा इतिहास में भेदक रेखा खींचने के लिए कतिपय दृष्टियों तथा कारणों पर विचार करना उचित है।

यूनान के महापंडित अरस्तु ने कवि (आदिम मिथककार) तथा इतिहासकार की तुलना करते हुए कहा था "एक तो उसका वर्णन करता है जो घटित हो चुका है और दूसरा जो घटित हो सकता है। परिणामत: काव्य में दर्शन-तत्व अधिक होता है, उनका स्वरूप इतिहास में भव्यतर है क्योंकि काव्य सामान्य (सार्वभौम) की अभिव्यक्ति है और इतिहास विशेष की।"[1] अरस्तु ने अपने इस कथन में काव्य को इतिहास से भव्यतर माना है। इस कथन के सन्दर्भ में हम किंचित प्रकाश डालना चाहते। सत्य दो प्रकार का माना गया है एक जो घटित हो चुका, दूसरा जो घटित हो सकता है। प्रकारता से एक सत्य इतिहासकार और दूसरा कवि अथवा मिथक कार का। भारतीय इतिहास और काव्य परम्परा में उदाहरण लें तो दो व्यक्ति हैं : एक औरंगजेब दूसरे राम : एक इतिहास मान्य सम्राट और दूसरा पुराण पुरुष। इतिहास से पुष्टि प्राप्त औरंगजेब ने अपने पिता को बन्दी बनाकर मृतक घोषित कर दिया था और तीन भाइयों के रक्त से हाथ रंगे थे, दूसरी ओर पुरापुरुष राम ने पिता को धर्म संकट से उबारने के वलवत धारण कर वनवास अंगीकार किया और चाहा कि राज्य का भोग

---

1. नगेन्द्र अरस्तु का काव्यशास्त्र - अनुवाद खण्ड - पृ सं० 20

भरत को मिल भले ही राम का जीवन इतिहास सम्मत न हो, राम नाम का हाड़ मांस युक्त कोई इस वसुधरा पर हुआ ही न हो, किन्तु युग युगों से मानव जीवन का आदर्श है । प्रत्येक ऐतिहासिक सोपान के राम-रोम में राम रम गए । उनकी कल्पना और उदात्त चरित्र की प्रेरणा ने असंख्य इतिहास पुरुषों, शलाका पुरुषों को जन्म दिया । वे न होकर भी हुए और औरंगजेब अपने कृत्यों के कारण इतिहास में होकर भी न हुआ । इसी कारण राम भव्यवर है, भव्यतम । उनका सत्य है समग्र मानव जीवन का गरिमामय सत्य और औरंगजेब का सत्य है एक तथ्यात्मक ऐतिहासिक सत्य ।

इसके परभी कई बार ऐतिहासिक पुरुष पुराण पुरुष बनते हैं और इन स्थितियों में पुराण अथवा काव्य इतिहास के ऋणी रहते हैं । किन्हीं इतिहास नायकों के उदात्त चरित्र से प्रेरित होकर कवि मनीषा उन्हें पुरा-पुरुष बना देती है । महाभारत एवं अन्य पुराणों में इतिहास और पुराण अथवा मिथक समन्वय प्राप्त होता है ।

मिथक को इतिहास माना गया है क्योंकि ऐतिहासिक तथ्य शाश्वत सत्य नहीं होते, प्रत्येक उनका अवसान होता है इस अवसान का रूपांतर मिथक में अन्तर्विहित माना है क्योंकि कालांतर में मानव की सहज कल्पना शक्ति मनीषा इन ऐतिहासिक तथ्यों को अपने अनुरूप अपनी समष्टिगत मान्यताओं एवं वैयक्तिक संवेदनाओं द्वारा रूपायित करती है । यह मिथकीय परिणति ही इतिहास की अन्तिम परिणति है - दूसरे शब्दों में मानव जीवन की पूर्णता है । इस पूर्णत्व की प्राप्ति के अनन्तर इतिहासगत अस्तित्व समाप्त हो जाता है ।

2.4 <u>मिथकीय भूगोल</u> - मिथक में विभिन्न स्थलों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है - जैसे हिमालय, मानसरोवर, पुनीत कैलाश स्थल । इन मिथकीय स्थलों की बौद्धिक व्याख्या नये अर्थों को प्रकट करती है जैसे महाप्रस्थान में हिमालय, मानसरोवर, हिमालय का साधना पथ हो जाता है । धनुर्विद्या को जाने हुए कर्ण का अर्जुन से मिलन युद्ध भूमि में होता है ।

मिथक की मूलभूत प्रवृत्तियों के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं -

मिथक का धर्म से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । मिथक की रचना काल्पनिक होती है किन्तु उसकी प्रतीति सत्य रूप में होती है ये सत्य दो रूप में होता है मिथकीय सत्य ऐतिहासिक सत्य । मिथक आस्था पर आधारित होते हैं ।

मिथक के विलुप्त हो जाने पर उसकी विचार वस्तु की नवीन व्याख्या होती है । मिथक का प्रारूप (Model) प्रकृति न होकर समाज होता है इसलिए प्रकृति सामाजिक जगत का बिंब हो जाती है ।

अब तक के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हमारा मन अनेकानेक भावों का आगार है, जिसमें मौलिक भावों के साथ ही जातीयता से सम्बन्धित भाव भी उठते हैं । उदाहरण के लिए हमारे अनेक अनुभवों में प्रथमतः भय तत्पश्चात जिज्ञासा एवं अंत में प्रमोद उत्पन्न हो जाता है इन सभी भावों को एक दूसरे पृथक करना अत्यंत कठिन होता है । इस प्रकार अन्य भावों की भी उत्पत्ति होती है । कभी कभी इन मौलिक एवं सहायक भावों की सह उपस्थिति से हमारा व्यवहार भी बदल जाता है ।

3. <u>मानसिक संघर्ष के लिए अचेतन मन की कार्यविधि</u>

कभी कभी व्यक्ति में मानसिक व्याधियां उस समय उत्पन्न होती है जब मनुष्य उससे दुश्चिन्ता , अनुताप आदि का अनुभव करता है । ये भाव परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं, जिसके व्यक्ति का स्नायुतंत्र भी छिन्न होने लगता है । इन मौलिक भावों के उद्गम होने से सन्तुलन शक्ति क्षीण हो जाती है तथा उनसे उद्बुद्ध अनेक सशक्त भावों की शक्ति सबल तर होती है । इसके फलस्वरूप हमारे जीवन में भाव ~~संघर्ष~~ संघर्ष अथवा अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है । यह अन्तर्द्वन्द्व फ्रायड अथवा एडलर के द्वारा विवेचित काम-प्रवृत्ति अथवा आत्माभिव्यक्ति से ही उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत आत्म रक्षण, ज्ञान आदि की वृत्तियों के दमन से इसका जन्म

होता है और इससे ग्रस्त व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है ।

यह सत्य है कि मनुष्य अपनी अनेक मौलिक विशेषताओं के कारण अन्य प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ प्राणी है । इन्हीं विशेषताओं के बल पर मनुष्य आदिकाल से प्रप्रप्र प्राप्त करने तथा अस्तित्व को बनाये रखने के लिए परिस्थिति से संघर्ष कर रहा है ।

मनुष्य को जीने के लिए परिस्थिति से एक विशेष प्रकार का व्यवहार (Behaviour) करना पड़ता है । इस व्यवहार में संघर्ष का महत्वपूर्ण स्थान है । इस संदर्भ में जे.पी. गिलफोर्ड का यह मत है कि "संघर्ष से कोई मुक्त नहीं है ।"[1]

"व्यक्ति के इस व्यवहार में उसकी सामाजिक आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण योग रहता है यही स्थिति उसे समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने से रोकती है उसको व्याधित बना देती है समाज इस बात पर प्रत्यक्ष प्रकाश डालता है कि मानव की सामाजिक आर्थिक स्थिति से उसमें हीन भावनाओं का उदय होता है ।"[2] वह जीवन में चुनौतियों का सामना करने में असमर्थ होता है और प्रमुख सामाजिक गतिविधियों से वंचित हो जाता है ।

मनुष्य में जीने की प्रबल इच्छा होती है इस इच्छा को लेकर ही मनुष्य अपने जीवन के लिए क्रियाशील बन जाता है । इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए डोनाल्ड मारगन ने कहा है - The will to live often said to be the great living creatures is in human beings not simply the will to say alive but rather the will to live in an active relation with environment."3.

3. Donald G Margan's General psychology — P 35

---

1. J.P.Guilford - General psychology.
2. The socio economic condition of an individual determine the way he effilates himself with others differently placed in society, society reveal that the socio economic status people develop inferiority complex in themselves. Psychological studies with a special artical on measurement of Human motivation in India. Volume-29 November2,1984.

इससे व्यंजित होता है कि जीवन की इच्छा मनुष्य को क्रियाशील (Active) बनाती है अत: क्रियाशील मनुष्य "उद्देश्ययुक्त क्रिया" करने लगता है।

उद्देश्ययुक्त क्रिया" मनुष्य को संघर्ष प्रवृत्त कर देती है। भूखा मनुष्य अनुभव करता है कि यदि उसे जीवित रहना है तो भूख मिटाना आवश्यक है। वह यह भी अनुभव करता है कि भूख मिटाने के लिए कुछ खाने की आवश्यकता है इस आवश्यकता से भूखे मनुष्य में कुछ पाने की इच्छा उत्पन्न होती है इस इच्छा को लेकर मनुष्य सोचने विचारने लगता है। तदुपरांत वह कोई एक निर्णय कर लेता है और प्राप्य को पाने के लिए कार्य आरंभ कर देता है। यदि इस कार्य में प्रकृति अथवा जीव समूह के द्वारा बाधा के रूप में प्रतिकूल परिस्थिति का निर्माण किया गया, तो भूखे मनुष्य में असन्तोष उत्पन्न होता है इस असंतोष के कारण भूखा मनुष्य प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिबन्ध रूपी परिस्थिति से संघर्ष करता है।

मानव की सारी भावनात्मक स्थिति जैसे हर्ष, विषाद, घृणा, क्रोध और भय में सभी दूसरों की स्वीकृति और अस्वीकृति से सम्बद्ध है। व्यक्ति जब समाज द्वारा अस्वीकृत होता है तब उसमें आत्मसंघर्ष छिड़ जाता है और वह स्वयं को अपने मित्रों से पृथक और बेपरवाह महसूस करने लगता है उसमें समाज से अलग होने की इच्छा जागृत होती है।

मनुष्य के जीवन में कभी ऐसा क्षण भी आता है, उस समय मनुष्य कोई निर्णय नहीं कर पाता, एक ही समय क्षुधा और काम से व्याकुल मनुष्य निर्णय नहीं कर पाता कि क्षुधापूर्ति को प्राधान्यता दी जाए अथवा काम पूर्ति को इससे मनुष्य में आन्तरिक संघर्ष छिड़ता है निर्णय करने तक मनुष्य में असह्य वेदना तनाव उत्पन्न होता है इस तनाव से मुक्त होने के लिए मनुष्य अपनी अनिर्णयात्मक मन:स्थिति से संघर्ष करने लगता है और दोनों में से किसी को ~~xxxxxxxxxxx~~ चुनने का निर्णय कर लेता है।

संघर्ष का सम्बन्ध मनुष्य के समाज जीवन से नीति नियमों से वैयक्तिक चरित्र संस्कारों से, मान्यताओं से विचारों से, भाव संवेगों और

सौन्दर्याभिरुचि से है । इस संघर्ष के सन्दर्भ में मनुष्य का आचरण वैशिष्ट्यपूर्ण होता है इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही मैक्डूगल ने मनुष्य की पशु सदृश्य मूल प्रवृत्तियों (Instincts) का विस्तार पूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात अन्त में स्वीकार किया है कि "मनुष्य के उच्च स्तर का आचरण और संघर्ष उसकी सदाभिरुचि के अनुकूल होता है ।"[1]

3.1 फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्त के आधार पर मानसिक संघर्ष

फ्रायड ने मन की विभिन्न दशाओं का गहन अध्ययन किया था । इस गहन अध्ययन के आधार पर उसने मन को तीन भागों में बांटा है - "अचेतन, अवचेतन तथा चेतन ।"[2] मन के इन तीन भागों में उसने अचेतन अंश को प्रमुख माना है क्योंकि मन का अधिकांश भाग अचेतन है तथा अत्यल्प अंश चेतन है । अचेतन मन गतिशील है और समयानुसार चेतन मन को निर्देश करता रहता है ।

हाइड ब्रेडर का कथन है कि -"व्यक्ति के विचार, व्यवहार तथा रहन सहन की स्वाभाविक और अस्वाभाविक क्रियाओं को मूल कारण अचेतना मन ही है ।"[3]

यद्यपि अचेतन की समस्त क्रियाएं निष्क्रिय प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में यह निष्क्रिय न होकर सक्रिय होती है तथा विशेष प्रयत्न करने पर चेतन मन में अवतरित हो जाती है कुछ विचार तथा कार्य निन्दनीय तथा असामाजिक होने के कारण एवं अधिक कष्ट दायक होने के कारण हम याद करना नहीं चाहते क्योंकि व्यक्ति सामाजिक प्राणी है, वह समाज में प्रतिष्ठा

---

1. Conflict of the higher level is turned to kiax higher uses by subtle influence of organization society embodying a moral tradition.
   Mc.Dougall. An outline of psychology p-449.
2. Conscious, preconscious unconscious, Sigmund Preud, An outline of Psycho analysis - 16-17.
3. The uncious is through and through dynamic the whole psychick structure,whether conscious or unconscious in fundamentally a lessue of striving and desire. Heid Breder, seven psychology - p-388.

का अभिलाषी है, परन्तु ये विचार सामाजिक दृष्टि से अशोभनीय है, लज्जा स्पद तथा निराशाजनक है इसलिये इस प्रकार के विचारों को व्यक्ति अचेतन मन में जाने के लिए बाध्य करता है। इस प्रकार के विचार जब अचेतन में चले जाते हैं तब व्यक्ति उन्हें चेतन में आने से रोक लेता है विचारों के अवरोधन से व्यक्ति के मन में ग्रंथि पड़ जाती है और व्यक्ति मानसिक रोगी हो जाता है। किन्तु इन प्रवृत्तियों के द्वारा मानव चरित्र का निकास नहीं हो सकता अतः अहं की इन प्रवृत्तियों से बचने के लिए अनेक विध प्रतिक्रियाओं का अवलम्बन लेता है जिन्हें अहं की सुरक्षात्मक गतियां कहा जाता है इससे मानव को अचेतन रूप से स्वयं को दोष व ग्लानि से मुक्त करने में सहायता मिलती है। प्रतिक्रियाओं में अथवा अहं की सुरक्षात्मक गतियों में से प्रमुख क्रियाएँ इस प्रकार है - "दमन, विस्थापन, प्रतीकीकरण, दिवास्वप्न, प्रतिक्रिया निर्माण, प्रक्षेपण अंतः क्षेपण तादात्म्यीकरण औचित्य स्थापन क्षतिपूर्ति पलायन प्रतिगमन, उन्नयन, इन प्रतिक्रियाओं का विवरण Edmund S. Conklin ने विस्तृत रूप में किया है।"[1] दमन अप्रिय इच्छाओं आदि को चेतन से बहिष्कृत करके अचेतन मस्तिष्क में पहुँचा देता है। विस्थापन में सीधे प्रकाशन अवरुद्ध इच्छा से हटकर अन्य वस्तुतः निर्दोष आलम्बन के प्रति आकर्षित होता है। प्रतीकीकरण के द्वारा सादृश्य, समानता विरोध आदि के कारण एक वस्तु या विचार का प्रतिनिधित्व दूसरी वस्तु या विचार को प्राप्त हो जाता है। प्रत्यक्ष जगत में असमर्थ व्यक्ति कल्पनाओं में खोकर उनकी पूर्ति का काल्पनिक आनन्द लेता है तो उसकी स्थिति दिवास्वप्न की होती है। प्रतिक्रिया निर्माण में अवांछित इच्छाओं आदि को अस्वीकार करता अथवा उनके प्रतिकूल व्यवहार करना आता है। प्रक्षेपण में अपनी त्रुटियों का आरोपण अचेतन रूप से अन्यों पर करता है। अन्तःक्षेपण में किसी व्यक्ति विशेष के गुणों को अपने व्यक्तित्व का अंग बना लिया जाता है। तादात्म्यीकरण में अपने आदर्श के अनुसार व्यक्ति का स्वयं को समझना आता है। औचित्यस्थापन में असंतुष्टि के लिए अपने तर्क-शून्य कार्यों आदि को विभिन्न प्रकार के तर्क देकर युक्ति-संगत रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करता क्षतिपूर्ति के अन्तर्गत अपनी वास्तविक कमी को विशेष प्रयत्नों द्वारा अन्य रूप

---

1. Edmend S.Conklin, principles of Abnormal psychology p-28.

में पूर्ण करने का प्रयत्न करता है । असफलता या निन्दा आदि के भय से किसी कार्य को करने से स्वयं को आरंभ में पीछे हटा लेना पलायन है । वयस्क होने पर भी बाल्यावस्था जैसा आचरण करना प्रतिगमन कहलाता है । सामाजिक दृष्टि से प्रतिबन्धित काम, आक्रमण आदि दमित वृत्तियों का कला, साहित्य आदि में तृप्ति खोजना उन्नयन है । परिस्थितियों के साथ सामंजस्य में असफल व्यक्ति का जीवन दयनीय बन जाता है ।

3.2 एडलर एवं युंग के मनोविज्ञान के आधार पर मानसिक संघर्ष

एडलर प्रत्येक व्यक्ति को अन्य से भिन्न "अद्वितीय" मानते हैं, जो उनके व्यक्ति मनोविज्ञान की मूलभूत मान्यता है । एडलर के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति में जन्म जात विशिष्ट रचनात्मक शक्ति होती है जो आनुवांशिकता एवं उसके पर्यावरण के साथ मिलकर उसके विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण करती है ।"[1] इस गतिशील रचनात्मक शक्ति के द्वारा व्यक्ति अपनी जीवन समस्याओं को सुलझाने का अपने ढंग से प्रयास करता है और इस प्रकार अपनी निजी एवं अद्वितीय जीवन शैली के निर्माण का प्रयास मानव के शिशुकाल से ही प्रारंभ हो जाता है । जब भी शिशु अपने कष्टपूर्ण पर्यावरण के विरुद्ध आग्रधर्षी व्यवहार अपनाता है और अपनी विरोधी परिस्थितियों पर अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करता है । इसी के साथ एडलर की मान्यता यह है कि - "प्रत्येक मनुष्य में किसी न किसी प्रकार की हीनता पाई जाती है ।"[2]

यह हीनता आंगिक भी हो सकती है और मानसिक भी । इससे प्रेरित मनुष्य अपने अन्दर श्रेष्ठता का विकास करने में प्रयत्नशील रहता है, अर्थात वह श्रेष्ठता की भावना अपनाता है मनुष्य अपनी एवं समाज की सम्पूर्ण उन्नति वास्तव में एक हीनता की भावना से उत्पन्न श्रेष्ठ भावना का ही परिणाम है ।

---

1. Each individual is endowed with an creative power considered by Adler a factor besides heredity and environment. It is the way the individual arries at the solution of his problems. Benjamin W.Wolman, Contemporary theories and systems in psychology p-285.
2. Inferiority feelings are in some degree common to all of us. Alfred Adler, What life should mean to you p-51.

एडलर के अनुसार - "हीनता ग्रंथि से ग्रस्त व्यक्ति ही इसे दूर करने के प्रयत्न में अपने अन्दर श्रेष्ठता ग्रंथि विकसित करता है वह अपनी हीनता के छिपाने के लिए श्रेष्ठता का व्यवहार करता है और अपनी हीनता छिपाने के सब पर छा जाने का प्रयत्न करता है वह अपने को इस रूप में सर्वोपरि समझता है।"[1] यह हीनता से ग्रस्त भावना व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि कर देती है जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति अपनी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में असफल सिद्ध होता है। एडलर के मतानुसार -"यदि कोई व्यक्ति हीन भावनाओं का शिकार हो जाता है तब समाज के साथ उसका सम्पर्क टूट जाता है और उसका अपने प्रति भी सम्पर्क टूट जाता है और उसका अपने प्रति तथा पर्यावरण के प्रति संघर्ष प्रारंभ हो जाता है।"[2] मूलत: व्यक्ति हीनता की अनुभूति करता है उससे मुक्त होने के लिए श्रेष्ठता की भावना का प्रदर्शन करता है। यह संघर्ष बचपन से ही शिशु के अन्तस में होने लगता है, जिससे प्रेरित होकर वह अपनी शारीरिक क्रियात्मक हीनताओं को दूर करने के लिए स्वयं से एवं पर्यावरण से संघर्ष करता हुआ विकास के मार्ग में अग्रसर होता है। और श्रेष्ठता की भावना को अपनाता है। एडलर का कथन है कि "मुझे तो यहाँ तक जान पड़ता है कि हमारी सारी संस्कृतिहीन भावों की नींव पर टिकी है।"[3] श्रेष्ठता की ओर प्रगति हर सृजन के पीछे होती है और यही संस्कृति के संवर्धन का स्रोत भी होता है क्रियाशीलता की इसी दिशा की ओर समस्त मानवीय जीवन आगे-बढ़ता है - नीचे से ऊपर की ओर ऋण से धन की ओर, पराजय से विजय की ओर। जब यह हीनता अथवा

---

1. Depressed person suffering from anxiety to rule others for they must always have people whenever they go.
   Alfred Adler- The Science of living - p-81-82.
2. If a person show off it only because he feel inferior because he does not feel strong enough to complete with others that is why he stays on the useless side. He is not socially adjusted and he does not know how to solve the social problems of life and so he always struggle in him.
   Alfred Adler. The Science of living - p-84.
3. It seems to me that all our culture is based upon feelings of inferiority.
   Alfred Adler. What life should mean to you p-69.

श्रेष्ठता की भावना अत्यधिक विकसित हो जाती है । तब यह भावना मात्र न रहकर ग्रंथि का रूप ले लेती है । इस प्रकार हीनता एवं श्रेष्ठता ग्रंथि का विकास होता है । ये दोनों ग्रंथियां एक दूसरे के परस्पर पूरक है और व्यक्ति में प्राय: दोनों ग्रंथियां होती है ।

एडलर के अनुसार - "व्यक्ति जब कभी शक्ति हीनता का अनुभव करता है, तब वे अपनी श्रेष्ठता भावना को ऊँचा उठाते हुए सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगता है । जब व्यक्ति अधिक समय तक श्रेष्ठ भावना को बनाए रखता है तब सामाजिक कार्यों के प्रति उत्साह दिखाता है तब उसकी जीवन शैली उपयोगी सिद्ध होती है और वह सभ्य बन जाता है ।"[1]

जुंग ने "मन" शब्द के स्थान पर (psyche) (साइकी) शब्द माना है चेतन मन के विषय में जुंग की मान्यता है कि चेतन के पूर्व अचेतन चित्त का अस्तित्व और चेतना का उसी के आधार पर कार्य होता है साथ ही, जुंग ने अचेतन का द्वितीय विभाजन किया है - सामूहिक अचेतन वैयक्तिक अचेतन सामूहिक अचेतन मानव संस्कृति परम्परा एवं आनुवांशिकता से प्राप्त संस्कारों का द्योतक है और इसका प्रारंभ मानव जाति के आरंभ से ही माना गया है । वैयक्तिक अचेतन द्वारा व्यक्ति अपने जीवन में दमित अनुभवों के आधार पर विकसित होता है ।

इस प्रकार एक ओर व्यक्ति सम्पूर्ण मानव सभ्यता का प्रतिनिधि है और दूसरी ओर वह जीवन में अर्जित गुणों का प्रतिरूप है ।

जुंग ने चेतन एवं अचेतन रूप में मानव के मानसिक व्यक्तित्व का निर्माण होना स्वीकार किया है । व्यक्ति चेतन रूप में जो कुछ नहीं है, वह अचेतन रूप में है । इस दृष्टि से व्यक्तित्व के मूलत: दो प्रकार माने जा सकते हैं - अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी ।

---

1. When individual feel weak himself then he will interest socially and as long as if he strives superiority and tempers it with social interest then he is on the useful side of life and can accomplish good.
Alfred Adler - A science of living - p 85.

जुंग मानसिक एवं शारीरिक रोगों से आक्रान्त होने के हेतु समीकरण की प्रवृत्ति को सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि "बहुधा बहिर्मुखता के कारण धनार्जन करने में व्यस्त व्यक्ति अस्वस्थ हो जाता है। उसे मानसिक शक्ति पर केन्द्रित होना पड़ता है। इस ढंग से उसकी बहिर्मुखता प्रकृति द्वारा बाध्य होकर अन्तर्मुखी रूप में परिवर्तित हो जाती है।"1.

3.3 मनोविश्लेषण के कुछ नवीन सिद्धान्तों के आधार पर मानसिक संघर्ष

विलहेल्म राइक ने कुछ सीमा तक फ्रायड के काम सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए भी अन्तर्द्वन्द्व का सम्बन्ध केवल वैयक्तिकत्व से नहीं माना। राइक ने यह स्वीकार किया है कि - अधिकतर मानसिक तनावों की उत्पत्ति काम-वृत्ति की असन्तुष्टि एवं उसकी विषमताओं के कारण होती है। तनावों की सृष्टि में सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण का प्रमुख हाथ रहता है। सामाजिक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति अपने संवेगों एवं अपनी भावनाओं को स्वाभाविक रीति से व्यक्त नहीं करता एवं उसके सामाजिक पर्यावरण में सामंजस्य न रहकर विषमता उत्पन्न हो जाती है। इससे मानसिक तनावों एवं द्वन्द्व की सृष्टि हो जाती है।

राइक के विचारों का कैरन हार्नी एवं एरिक फ्रोम पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। हार्नी का कथन है कि "व्यक्ति न केवल आनन्द सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता है बल्कि दो और महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के अनुसार भी कार्य करता है सुरक्षा एवं आत्म सन्तुष्टि।"2 मनुष्य संतोष के परित्याग के साथ ही आहार, धन सम्पत्ति अनुराग और अपनी व्यक्तिगत स्थिति का परित्याग कर देता है।

---

1. Carl G.Jung - Psychology of the unconscious - p-199.
2. Otto Pank will theraphy truth and reality - p-134.
3. Man is ruled not by the pleasure principles alone but two guiding principles safety and satisfaction.
   Hormen, New ways in psychoi analysis p-50-73.

प्रत्येक व्यक्ति की कुछ मूलभूत आवश्यकताएं होती है जैसे आहार, निद्रा तथा लैंगिक आवश्यकता आदि इनकी सन्तुष्टि होना आवश्यक है ।

हमारी इन आवश्यकताओं के दो आधार स्तम्भ है भय और सुरक्षा । व्यक्ति सुरक्षा पाना चाहता है और भय को हटाना चाहता है । वह अपनी आवश्यकता का आनन्द तब तक नहीं उठा सकता जब तक कि वह स्वयं को सुरक्षित नहीं अनुभव करता । भय व्यक्ति के स्वास्थ्य और प्रसन्नता का घोर शत्रु है ।

"बाल्यावस्था की अस्वीकृतियां चिन्तित बना देती है इस भावना के अनुसार बालक न केवल समाज से दूर डरता है बल्कि उसका सम्पूर्ण विकास अवरुद्ध हो जाता है और उसकी इच्छाएं अनियंत्रित हो जाती है ।"[1]

संतोष की कमी व्यक्ति को व्याकुल बना देती है चिन्ता स्वाभाविक नहीं होती वह परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है । अस्वीकृत तथा अनचाहा बालक या परिवार द्वारा विरोध प्रकट किया हुआ असहाय बालक यह सोचता है वह दूसरों से पृथक किया हुआ है और अपने कार्य शक्तियों का विरोध करने वाली दुनिया में जी रहा है । इस प्रकार की दुःखद स्मृतियां बालक में असुरक्षा की भावना उत्पन्न करती है ।

"माता पिता द्वारा बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति सन्तोष जनक रूप में होनी चाहिए इससे बालक का मानसिक विकास होता है यदि बालक को माता-पिता से दण्ड प्राप्त होता है तो इस कुप्रभाव के परिणाम स्वरूप वह ईर्ष्यालु और निर्दयी बन जाता है ।"[2]

---

1. Lack of acceptance in child hood concept the basic anxiety is not innate. It is a result of environmental factors.
1. Horney, New ways in Psycho analysis p-85.
2. The childs needs can be dealt with a satisfaction way by the parents, who thus contributes to his mental health if he may be bullied about severally punished by his parents he may perceive his home environment as unfair and unjust be go grading and mersitess.
   Horney, Neurotic personality p.113.

हमारा समाज प्रतिस्पर्द्धा पर टिका हुआ है परस्पर सहयोग एवं प्रगतिशीलता पर टिका हुआ है । ऐसी स्थिति में यदि व्यक्ति स्वयं का असुरक्षित पाता है तब वह स्नायु विकारों से ग्रस्त हो जाता है एवं स्नायु विकार व्यक्ति में विभ्रांति, संशय, असंतोष, ईर्ष्या आदि को उत्पन्न करते हैं ।

स्नायु विकारों से ग्रस्त व्यक्ति तीन दिशाओं में मुड़ जाता है । हार्नी के अनुसार - "प्रथम तो लोगों की ओर मुड़ने पर वह स्वयं को असहाय स्वीकार करता है और दूसरों को विजित करने के बदले वह विछिन्न होकर उन पर आश्रित हो जाता है । केवल इसी रास्ते वह स्वयं को सुरक्षित अनुभव करता है, जब वह दूसरों के विरोध में मुड़ता है, तो स्वयं को चारों ओर से विरोध की स्थिति में घिरा हुआ पाता है और चेतन या अचेतन रूप से हानि पहुँचाने के लिए संघर्ष करता है वह स्वयं मजबूत बनना चाहता है और आंशिक रूप से उनका प्रतिरोधी बनकर उन्हें हराता है, स्नायु विकारों से ग्रस्त व्यक्ति कुछ स्थिर व्यक्तित्व सफलतापूर्वक सुरक्षित रखते हैं और व्यक्ति बनाये रखते है । मानसिक रूप से बाधित व्यक्ति में भय उत्पन्न होता है और भय की प्रतिरक्षा के बदले वह समझौता हल कर पाने का प्रयास करता है ।"[1]

स्नायु विकारों से ग्रस्त व्यक्ति अपने अन्तर्द्वन्द्व पर विजय प्राप्त करना चाहता है । हार्नी के मतानुसार "वह स्वयं को अपनी वास्तविक स्थिति से श्रेष्ठ समझने लगता है और मानसिक शक्तियों का प्रयोग आत्मज्ञान के बजाय वह व्यर्थ विजय की खोज में इन शक्तियों का दुरुपयोग करता है ।"[2]

---

1. Horney, Neurotic personality p-113.
2. He believes himself for superior to the man he is really is idealized image has for him the value of reality. Thus helping him avoid awareness of his inner conflicts instead of using his energies for self realization he wastes them in search for glory.
Karen Horney. Are you considering psycho analysis p-21.

एरिक फ्रोम भी मानव के मानसिक विकास पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण का बहुत अधिक प्रभाव स्वीकार करते हैं यह उचित नहीं है कि काम एवं तज्जन्य वृत्तियाँ ही मानव की सर्वाधिक शक्तिशाली वृत्तियाँ हैं और उनकी कुण्ठाएँ ही उसमें मानसिक असंतुलन उत्पन्न करती है इसके विपरीत सशक्ततम वृत्तियाँ उसकी चतुर्दिक मानवीय परिस्थितियों का परिणाम है । फ्रोम के अनुसार "सृष्टि का महत्वपूर्ण प्राणी होने के कारण व्यक्ति का स्वभाव मनोवेग उसका चिंतन आदि उसके सांस्कृतिक परिणाम है ।"[1]

फ्रोम ने व्यक्ति के पर्यावरण के साथ सामंजस्य के लिए उसका समाज के प्रति प्रेम को म महत्व दिया है " उसके अनुसार प्रेम, सौहार्द एवं क्रियात्मक शक्ति इन्हीं गुणों के द्वारा व्यक्तित्व का समुचित विकास होता है ।"[2] इस असामंजस्य में कभी कभी अस्वस्थ सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के भारी प्रभाव के परिणाम स्वरूप क्रूरता, अविश्वास दूसरों द्वारा शोषित किये जाने आदि की स्थितियां भी उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार जहां स्वस्थ समाज का निर्माणात्मक विकास करता है, वहां अस्वस्थ समाज उसमें ध्वंसात्मक गुणों को बढ़ा देता है ।

4. स्वप्न दृष्टि : फ्रायड, एडलर एवं युंग आदि

स्वप्नों की अगम-अजाती दुनिया सृष्टि के आरंभ से ही मानव को जिज्ञासा एवं कौतूहल का विषय बनी हुई है । आदिम मानव ने भी, अपने ढंग से, इस रहस्यमयी दुनियां को देखने और समझने की कोशिश की, तथा सपनों के विशिष्ट ि अर्थ निर्धारित किये । साठ वर्ष पूर्व तक, सभ्य जगत के अधिकांश निवासी यह मानते थे कि सपनों में जो कुछ दिखाई देता है, वह देवताओं, भूतप्रेतों, दानवों या जादूगरों की कृपा का फल है । भविष्य सूचक सपनों के बारे में ऐसी धारणा थी कि ऐसे सपने किसी अलौकिक शक्ति की देन हैं ।

---

1. Mans Nature, his passions and anxieties are a cultural pruet as a matter of a fact man himself is the most import creation E.C. From, Escape from Freedom p-13.
2. Erich Fromm, the same society - p.362.

पर फ्रायड तथा उसके अनुयायियों ने इस धारणा को चकित करने सपने के अध्ययन को एक वैज्ञानिक दर्जा प्रदान किया । इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी निर्धारित किया कि सपनों के मूल को समझकर तथा सही व्याख्या करके आदमी ऐसे अनेक शारीरिक और मानसिक व्याधियों से मुक्त हो सकता है, जिनका उपचार अन्य किसी साधन से संभव नहीं है । सपनों के अध्ययन द्वारा अन्य व्यक्तियों के स्वभाव को भी समझा जा सकता है ।

स्वप्न देखना उतनो ही स्वाभाविक क्रिया है, जितनी साँस लेना । वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति रोज स्वप्न अवश्य देखता है । ये पुरानी घटनाएं एवं मान्यताएं गलत साबित हो चुकी है कि स्वप्न किसी विशेष वस्तु के सेवन से दिखाई देते हैं । हकीकत यह है कि स्वप्न हमारी गुप्त इच्छाओं और भावनाओं के दर्पण होते हैं । फ्रायड का अनन्य ध्येय विशेष रूप से स्वप्नों की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करना था ।

फ्रायड के अनुसार – "शारीरिक तत्वों का स्वप्न निर्माण में कोई महत्व है भी, तो वह गौण एवं सहायक रूप में ही है ।"[1] मानसिक तत्वों को यदि अनुभव होता है कि अपने कार्य की पूर्ति में उनका कोई उपयोग हो सकता है तब उनका उपयोग कर लेते है अन्यथा उनकी उपेक्षा कर दी जाती है ।

4.1 <u>स्वप्न एक मानसिक प्रक्रिया</u> – फ्रायड के अनुसार स्वप्न एक कायिक घटना नहीं है बल्कि मानसिक घटना है । वास्तव में स्वप्न निद्राकाल का मानसिक जीवन है, जो हमारे जागृत से कुछ सादृश्य रखता हुआ भी अधिकांशत: उससे बहुत कुछ भिन्नता रखता है ।"[2]

---

1. Then can be n o doubt that physical the sia is among the internal somatic stumuls which can dicate the contents of dreams.
   S.Frend. The interpretation of Dreams.
2. The Dream is the life of mind during sleep and dreams are reaction to astermules disturbing sleep.
   S.Frend, A general introduction to Psycholagy p-82.

फ्रायड यह मानता है कि स्वप्न का जागृतावस्था से घनिष्ट सम्बन्ध होता है इस संदर्भ में (G. Murphy) का यह कथन है कि "फ्रायड इस मत से असहमत नहीं है कि स्वप्न में कई तत्व ऐसे होते हैं जो जागृतावस्था का स्मरण दिलाते हैं।"[1]

4.2 स्वप्नों का एक निश्चित अर्थ - फ्रायड स्वप्नों की सार्थकता को स्पष्ट करता हुआ कहता है - "स्वप्न अर्थहीन न होकर पूर्णत: सार्थक होते हैं, जिनकी व्याख्या वैज्ञानिक पद्धति पर भी की जा सकती है।"[2] फ्रायड की यह मान्यता है कि व्यक्ति में "काम भावना" प्रमुख है परन्तु सामाजिक नियंत्रण से व्यक्ति मानसिक वासनाओं को किसी अन्य माध्यम से व्यक्त करके संतोष कर लेता है इन माध्यमों स्वप्न भी एक प्रमुख माध्यम है उसके अनुसार "निद्रावस्था में चेतनमन का अंकुश शिथिल पड़ जाता है अत: यह भावनाएँ स्वप्नों के द्वारा स्वच्छंद होकर विचरण करते लगती है।"[3] फ्रायड के इस मत को पुष्ट करता हुआ कहता है कि - "स्वप्न के माध्यम से व्यक्ति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में स्वतंत्र रहता है।"[4]

4.3 स्वप्नों में सुदूर अतीत के अनुभवों की प्राप्ति - फ्रायड का कथन है कि अतीत कालीन अनुभवों को स्मृति या पुनराभिव्यक्ति होती है।"[5] फ्रायड ने स्वप्नावस्था में अपनी तुष्टि के प्रयत्नशील होने वाली इन दमित इच्छाओं को एक ओर सुदूर अतीत काल से अचेतन में अवस्थित मानता है और दूसरी

1. Many elements in dreams are recollection of recent waking events ; G.Murphy. Historical Introduction to Modern Psychology - p-317.
2. All dreams are one in a sense. S.P.Frend. The interpretation of Dreams p-233
3. A dream then is psychosis with all the absudities,delusions and illusions of a psychosis. S.Frend. Outline of psychoanalysis p 55.
4. The dream is essentially adisquised satisfaction for desires that have been repressed dur ing waking life. Heid Breder- Seven psychologies -p-393.
5. After a long internal,some fresh experience recalls the lost memory of events and the same time reveals the source of Dream. S.Frend. The interpretation of Dreams p-71-72.

और स्वप्नों को रात्रि के ठीक पूर्व दिन की अतृप्त कामनाओं के रूप में स्वीकार करता है । इस सम्बन्ध में उसका कथन है कि - "संभव है कि प्रत्येक स्वप्न में उपस्थित होने वाली वस्तु का सम्बन्ध पूर्व दिवस के अनुभवों के साथ जोड़ा जा सके ।"[1] इस परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली मान्यता का औचित्य स्थापित करते हुए वह कहता है कि "सुदूर अतीत के अनुभव के साथ सम्बद्ध होकर स्वप्न को सृष्टि करते हुए दोनों काल की इच्छाओं की एक साथ तृप्ति कर लेते हैं ।"[2]

4.4 <u>स्वप्न में एक से अधिक अर्थों की प्राप्ति</u> - फ्रायड यह भी बताता है कि स्वप्नों के प्राय: एक से अधिक अर्थ होते हैं यह नहीं होता कि उनमें अनेक इच्छाओं की पूर्ति साथ-साथ व्यक्त हो रही है, बल्कि यह भी होता है कि स्वप्नार्थों अथवा इच्छा पूर्तियों की श्रृंखला एक दूसरे पर आरोपित की जा सकती है जिनके मूल में सुदूर अतीत की इच्छापूर्ति क्रियाशील होती हुई उपलब्ध होगी ।"[3]

एल्फ्रेड एडलर ने स्वप्नों को एक प्रकार से प्रयोजन पूर्ण रूप में देखा ।

4.5 <u>स्वप्न सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति</u> - एडलर स्वप्न का सम्बन्ध व्यक्ति की जीवन शैली से मानता है । एडलर ने स्वप्न विश्लेषण को इस आधार पर प्रस्तुत किया कि स्वप्न विश्लेषण स्वयं को भविष्य के लिए योजना वह कर रहा है और स्वप्न इस संदर्भ में स्वप्नकर्ता के जीवन के प्रति दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं ।

---

1. Dreams are the events of the previous day which set it in the motion ; S.Frend, the Interpretation of Dreams p-165.
2. Many dreams had once again reach of our waking memory impressions of prèvious day.
   S.Frend, The Interpretation of Dreams p-178.
3. Dreams frequently seem to have more than one meaning not only as our examples have shown may indude several wests fulfilment one alonside. The other but a succession of meaning or wish fulfilments may be superimposed on one another.
   S.Frend, The interpretation of Dreams 9-219.

एडलर की मान्यता है कि - "केवल स्वप्न ही जीवन शैली को जानने के लिए अभिव्यक्त होते हैं और व्यक्ति के सम्पूर्ण मानसिक क्रियाओं का सम्पादन करते हैं ।"[1]

एडलर सीधे व्यक्तित्व की एकता पर बल देता है और कहता है "एकता की इस सम्पत्ति के गुण दोषों को स्वप्नों के माध्यम से देखा जा सकता है ।"[2] स्वप्न मानवीय व्यवहार के सभी पहलुओं के अतिरिक्त स्वप्न देखने वाले की जीवन शैली को प्रतिबिंबित करते हैं । स्वप्न का प्रत्येक पहलू व्यक्ति के गत्यात्मक कार्यों का सम्पादन करता है एवं उसके आत्मिक और सामाजिक दोनों रूपों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है साथ ही जीवनशैली के लक्ष्य को प्रस्तुत करता है - एडलर के मतानुसार - "स्वप्न का प्रमुख उद्देश्य स्वप्न देखने वाले को समस्याओं को हल करना है और विशेष रूप से उनको अन्तिम रूप देना है ।"[3]

4.6 <u>स्वप्न व्यक्ति को क्रियात्मक सृजनशीलता के अंग</u> - एडलर कहता है कि "स्वप्नकर्ता स्वयं कलाकार है उसके स्वप्न स्पष्ट रूप से उसकी सृजनात्मकता की प्रतिच्छाया प्रस्तुत करते हैं एवं जिना माध्यम प्रति दिन का अनुभव होता है ।"[4] स्वप्न में सृजन शक्ति की भावना अनिवार्य रूप से होती है इसी आधार पर स्वप्नकर्ता समस्याओं का हल करता है । इस सन्दर्भ में स्वप्न व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को भी विश्लेषित करते हैं । विश्लेषण के

---

1. The dream can this only be understanding as an expression of the life style and serves as an integral part if mental functioning of individual.
   Anas bacher H.L. Anas bacher R.R. The individual psychology of Alfred Adbe p-358.
2. The property of belonging to this unity must also characterse the dream. Anas bacher H.L., Anas bacher R.R. The Individual psychology of Alfred Adlm p-358.
3. The dream has a ward aim that it parts an edge' on the dreamer for the solution of the problem in his particular way. Adler Alfred. A Social enterest challenge to Mankind p-259.
4. As the dream is essence, is the artest himself, his dre clearly reflects the kind of creativity he brings to hi every day living.
   Adler Alfred, what life should mean to you p-93.

संदर्भ में एडलर यह कहता है कि – स्वप्न उत्साह व भावना युक्त विचारों की अपेक्षा करते हैं ।"[1]

एडलर के स्वप्न विश्लेषण के व्यावहारिक रूप को स्पष्ट करता Shulman का यह मत है कि – "स्वप्नकर्ता की चारित्रिक गतिविधियों को जानना और एक मन:चिकित्सक के रूप में स्वयं को सावधान रखना आवश्यक है एक मन:चिकित्सक के रूप में रोगी से अपना सम्बन्ध बनाए रखते हुए जीवन की गतिविधियों को जानने में सहायता करनी चाहिए[2]।"

एडलर की एक अन्य मान्यता है कि "जीवन के प्रति व्यक्ति की सामान्य मनोवृत्ति ही सारे स्वप्नों की जड़ में मौजूद रहती है ।"[3]

स्वप्न की व्याख्या में एडलर व्यक्ति के तुच्छ से तुच्छ आचरण और कार्यों को महत्व देता है क्योंकि उसकी जीवन शैली और व्यवहार गठन पर उससे प्रकाश पड़ता है उसके मतानुसार – "स्वप्न केवल यह प्रदर्शित नहीं करता कि स्वप्न दृष्टा इस सोचने में उसका रुख क्या है ।"[4] स्वप्न में सामाजिक भावना और शक्ति साधना प्रकट होती है जो विश्व की वास्तविकता के साथ दृष्टा के सम्बन्ध को बनाए रखती है ।

4.7 स्वप्नों में संघर्ष या कठिनाइयों पर विजय – स्वप्न का उद्देश्य मुख्यत: व्यक्ति की स्थिति का निर्णय करता है । यही कारण है कि वह स्वयं अपने व्यवहार को मजबूत बनाता है । एडलर के शब्दों में – "स्वप्न उद्देश्य के प्रति प्रेरित करता है साथ ही संवेदन शक्ति को उत्पन्न करता है ।"[5]

---

1. Dreams requires more artistic inspiration. Adler Alfred. A social interest challenge to the man kind.
2. Shulman. B.H.Contribution to the Individual psychology of Alfred Adler – p.71.
3. The general attitude to word life which is at the basis of Dreams; Adler A.understanding human nature p–109.
4. In the dream the life problem of an individual is expressed in simile we can see further how the dream in his utter need strikes an attitude toward his contemporary solution in life. Adler Alfred, understanding human nature p–110.
5. In a dream the individual goal of achievement remains,but a dream impels him toward that goal within increased emotional power. Anasbacher H.L. Ansbacher R.R. The individual psychology of Alfred Adler p.361.

4.8 <u>स्वप्न का वर्तमान समस्याओं से सम्बन्ध</u> – जुंग का मत है कि स्वप्नों के अंदर हमारी समस्याओं के हल का उपाय रहता है हम जो कुछ मांगते हैं उससे अधिक हम प्रदान करते हैं स्वप्न न्यूरोसिस के कारणों में हमें अंतदृष्टि ही नहीं देते, उपचार की दिशा भी निर्देशित करते हैं ।"[1] वे बतलाते हैं कि उपचार का आरंभ कहां से होना चाहिये ।

4.9 <u>स्वप्न सामूहिक अचेतन मन की भाषा</u> – जुंग स्वप्न का सम्बन्ध सामूहिक अचेतन से जोड़ता है साथ ही फ्रायड ने स्वप्नों में अतृप्त काम वासना को जो महत्व दिया है उसे जुंग स्वीकार नहीं करता क्योंकि काम एक वासना है और जुंग के अनुसार – "मनुष्य की यह वासना चेतन अनुभव की सीमा के अन्तर्गत है ।"[2]

स्वप्न के महत्व को स्वीकार करते हुए जुंग कहता है कि – "यदि हम स्वप्न का अधिक समय परीक्षण करें तो कुछ न कुछ वैज्ञानिक तथ्य निकल आते है । साथ ही यह महत्वपूर्ण सूचक है कि जो कि मरीज के अचेतन उद्देश्य को बताते है ।"[3]

---

1. It is the way of dreams to give us more than we ask they not only all owed us an insight into the causes of neurosis but afforded a progress as well what is more, they showed us at what point the treatment should begin.
   G.G.Jung, Modern man in Search of soul p-6.
2. The love episode is real experience really suffered and the same statement applied to the vision.
2. C.W.Jene, Modern man in search of soul p 87.
3. C.G.Jung collected work vol.16 p-42.

अपनी जीवनी Memories Dreams Reflections में जुंग यह लिखता है - "मैं फ्रायड के इस मत को स्वीकार करने में असहमत हूँ कि स्वप्न एक "बाह्य रूप है" जिस के पीछे अर्थ छिपा होता है ।"[1] जुंग स्वप्न को प्रकृति की देन मानता है । स्वप्न विश्लेषण में जुंग की "आर्किटाइप" पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है जो यह निर्णय करती है कि - "प्रत्येक व्यक्ति की समस्याएँ

4.10 स्वप्न भविष्य दर्शन के बोधक - यदि हम यह मानते कि व्यक्ति के समस्त व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होते हैं तब स्वप्न....उस लक्ष्य में सहयोग प्रदान करते हैं । उचित दिशाओं को स्पष्ट करने में दो तरह से सहायक होते हैं । स्वप्न सभी विचारों के समान भविष्य की प्राप्ति के लिए व्यावहारिक प्रणाली को प्रस्तुत करते हैं । एडलर इस बात की ओर इंगित करता है कि स्वप्न वास्तविक होते हैं क्योंकि इनका निर्माण व्यक्ति के कार्यों एवं उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए होता है । एडलर के इस मत को स्पष्ट करता हुए Shulman का कथन है कि - "स्वप्न का कार्य भविष्य के व्यवहार को योजनाबद्ध करना है ।"[2]

मानव मन में उच्चतर भावनाओं के विकास की असीम संभावनाएँ है । अत: उसकी अभिव्यक्ति केवल पृथक पृथक भावनाओं के माध्यम से ही नहीं होती बल्कि विकास की निरन्तर उर्ध्वमुखी प्रक्रिया में व्यक्ति एक ऐसी स्थिति में पहुँचता है जिसमें उसकी सारी समस्त भावनाएँ किसी एक ही उद्गम से नि:सृत होती हुई तथा पुन: उसी में विलीन होती हुई प्रतीत होती है ।

---

1. I was never able to agree with Frend that dream is 'fecade' behind which its meaning lies hidden. Memories,Dreams,Reflection p-101.
2. It is therefore one function of Dream to make plans for the future behaviour Ghulman, B.H. Contributions of Individual psychology p-62.

5. मानसिक सन्तुलन के लिए अचेतन मन की कार्य विधि - मानसिक विकास की अवस्था को प्राप्त व्यक्ति किसी अभाव से पीड़ित नहीं होता उसके चिन्तन एवं कार्यों में अपूर्व सामंजस्य आ जाता है। सुस्थिर व्यक्ति "लिबिडो" का प्रयोग मनोवैज्ञानिक कार्यों में स्थिरता के साथ करता है। सबल इच्छा शक्तिवाला इसी विशेषता के कारण मौलिक नैतिक, निर्णय लेता है और सहयोग को सर्वोपरि महत्व देता हुआ सम्पूर्ण मानव-जाति अथवा, उससे भी आगे बढ़कर सम्पूर्ण सृष्टि के साथ उसका होता है।

5.1 सुस्थिरता - व्यक्ति में होनेवाले परिवर्तन उसकी पुरातन प्रवृत्तियों के अनुरूप होते हैं। अत: सुस्थिर व्यक्ति से फ्रायड का तात्पर्य - "ऐसे व्यक्ति से है, जिसमें "लिबिडो" को मनोवैज्ञानिक कार्यों में न्यूनाधिक स्थायित्व अथवा स्थिरता के साथ लगाया जाता है। ऐसे व्यक्ति में इदं एवं पराहं का नियंत्रण एवं संतुलन अहं के यथार्थ सुस्थिर एवं संगठित आधार पर कर लिया जाता है।"[1] इसके परिणाम स्वरूप वरण एवं अवरण अथवा विरोधों के मध्य संतुलन स्थापित हो जाता है। व्यक्ति प्रेम के द्वारा ही घृणा को या तो विजित करने में सफल होता है अथवा उसे निष्प्राण कर देता है, उसमें विफलताएँ चिन्ताएँ एवं तनाव भी हो सकते हैं, किन्तु उन्हें सुलझाने की स्थिति का निर्माण भी हो जाता है फ्रायड का कथन है कि -"यथार्थ चिन्तन तर्क एवं सन्तोषपूर्ण ढंग से सुलझा लेता है यह उसकी शिक्षा एवं सांस्कृतिक वातावरण पर निर्भर है।"[2]

5.2 मौलिक नैतिक निर्णय - समाज द्वारा अनुमोदन, अनुमोदन की अधिक चिन्ता न करता हुआ व्यक्ति अपने निर्णय के अनुसार उच्चतर आचरण करने में समर्थ होता है, ऐसा व्यक्ति अपने समाज की नैतिक परम्पराओं की उपेक्षा

---

1. Each individual is component part of numerous groups, he is bond by ties of a identification in many direction, and he has built upon his ego - ideal upon the most various models.
   Frend, Group psychology and Analysis of Ego p-57.
2. Ether that man is good and noble or that he is evil, but those tendencies are eradicate the influence of education and civilization.
   Frend, On man and society p-58

नहीं करता ; प्रत्युत वह उन परम्पराओं को पूर्णता आत्मसात करके ही अपने नैतिक निर्णय प्रस्तुत करता है । ये निर्णय, न्याय, साहस, सत्य और आत्मत्याग के गुणों से परिपूर्ण रहते हैं और स्वार्थ प्रवंचना आदि से मुक्त होते हैं विलियम मैक्डूगल सन्तुलित, प्रौढ़ अथवा उच्चतर व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "सभ्य समाज के सामान्य नियम एवं उसकी परम्पराएं असभ्य समाज की अपेक्षा शिथिल एवं विभिन्न रूपात्मक रहती है । इससे जहां समाज में अनेक दोषों का जन्म होता है, वहीं उसके द्वारा उच्चतर व्यक्तित्व के विकास का अवसर भी प्राप्त होता है ।"[1]

5.2 सहयोग - एडलर सन्तुलित व्यक्तित्व के लिए सहयोग को सर्वोपरि महत्व देते हैं, जिसके आधार पर मानव प्रेम एवं कल्याण से सम्बन्धित कार्य होते हैं, उनके अनुसार जो इस सत्य से परिचित रहे हैं, जो यह जानते थे कि जीवन का अर्थ समस्त मानव-जाति में दिलचस्पी रखना है, और जो सामाजिक अनुभव और प्रेम को बढ़ाने की कोशिश किया करते हैं ।"[2] जब किसी मनुष्य के जीवन को दूसरे लोग अपने लिए महत्वपूर्ण और उपयोगी समझे तभी उसी मनुष्य को परम विवेकी कहा जाता है । मनुष्य सफलता पूर्वक यह जान लेता है कि जीवन का अर्थ दूसरों में दिलचस्पी लेना है वह जो कुछ भी करता है, मानव जीवन के हित की दृष्टि से प्रभावित होकर करता है कठिनाइयाँ सम्मुख आने पर भी वह उन्हें ऐसे साधनों से पार करने का प्रयत्न करता है जिनका कि मानव भलाई से सामंजस्य हो ।

उच्चतर आचरण के निर्माण की प्रक्रिया में मनुष्य समाज की प्रथाओं से ऊपर उठता है इसके साथ ही ऐसा आचरणशील व्यक्ति प्रत्यक्ष एवं साहित्यिक अध्ययन आदि के द्वारा, एक ओर समाज की नैतिक परम्पराओं का सात्मीकरण

---

1. Mc.Dougall, William. An introduction to social psychology p-194.
2. The man who meets, the problems of human life successfully acts as if he recognized fully and sponatateously, that the meaning of life is interest in others and cooperation. Alfred Adler, what life should mean to you p-7.

करता है और दूसरी ओर ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में भी आता है जो उसके अन्तर में न्याय, साहस, सत्य एवं त्याग आदि उत्कृष्ठ गुणों का निर्माण करते हैं उसके जीवन को एक नई दिशा प्रदान करते हैं इस अवसर पर व्यक्ति के सीमित भावों व्यक्तिगत प्रेम या आत्मज्ञान आदि के साथ इन उच्चतर भावों का संघर्ष भी हो सकता है, किन्तु यह संघर्ष शीघ्र ही विजित कर लिया जाता है और व्यक्ति आचरण के मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ चलता है । युंग का मत है कि "उच्चतर चरित्र वह है जो मजबूत हो हार्मोनि युक्त हो जो सीधे उच्चतर लक्ष्य को पाने में संलग्न हो ।"[1] साथ ही ऐसे व्यक्ति में आत्म निरीक्षण की सहज प्रवृत्ति भी होती है जो सशक्त आत्म-मान या आत्म गौरव के स्थायी भाव पर आधारित x रहती है । इस आत्म-निरीक्षण की वृत्ति के द्वारा वह अपने जीवन के पूर्ण विकास का लक्ष्य तो विशेष से उपलब्ध करता ही है, ऐसा समाज के जीवन के सामान्य विकास के लक्ष्य को भी पूर्ण कर लेता है । गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट प्रौढ़ व्यक्तित्व के तीन अनिवार्यतत्व मानता है । आत्मविस्तार,, आत्म निरीक्षण, संयोजनशील जीवन दर्शन ।

5.4 <u>आत्मविस्तार</u> - ऐसा व्यक्ति अपने सीमित अस्तित्व से ऊपर उठकर विविधात्मक स्वतंत्र रुचियों में संयुक्त होकर भय से हटता हुआ स्वयं को कार्य कार्य में, चिन्तन में मनोरंजन में एवं अन्यों की प्रतिष्ठा निष्ठा में तल्लीन होता है । वह अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होने वाले कार्य में उत्साह एवं शक्ति के साथ अनुरत हो जाता है । उसकी कार्य संलग्नता के मार्ग में आनेवाले सामयिक दुःख पराजय एवं आदि तत्व क्षीण शक्ति होकर उपेक्षणीय हो जाते हैं कि वे उसके निर्धारित लक्ष्यों से विमुख नहीं कर पाते । आलपोर्ट के अनुसार "इस भाव के विकास क्रम में व्यक्ति प्रथम निजी अस्तित्व से ऊपर उठता है और अपने कल्याण की अपेक्षा प्रिय का कल्याण उसके लिए अधिक

Moral conduct is essentially social conduct the character of finest type is that which is complex strongly and harmoniously organized and directed towards the realization of Higher goals and ideas.
J.C. Flugel, Man Morals and Society P-32.

महत्वपूर्ण होता है फिर मित्रों आदि सन्तति, अन्य शिशुओं, सांस्कृतिक रुचियों [न्याय, सत्य आदि] अमूर्त विचारों तथा राजनीति आदि में उसका भाव-विस्तार होता है। वह अपने जीवन के लिए किसी निश्चित असामान्य लक्ष्य का चयन करने उसकी प्राप्ति के लिए दृढ़ता एवं शक्ति के साथ क्रिया रत हो जाता है।"[1]

5.5 <u>आत्म निरीक्षण</u> - आत्म विस्तार का ही परिपूरक तत्व है इसमें "प्रौढ़ व्यक्ति अनासक्त भाव से अपनी योग्यताओं के सन्दर्भ में अपने महत्वाकांक्षाओं का अपने संभावित लक्ष्यों के सन्दर्भ में अपने वर्तमान उद्देश्यों का, अन्यों के साधनों की तुलना में अपने साधनों का, एवं स्वयं के विषय में अन्य व्यक्तियों की सम्मति की तुलना में अपनी सम्मति का सिंहावलोकन करता है।"[1] आत्मनिरीक्षण का यह सामर्थ्य अन्तरदर्शन कहलाता है इसका सूक्ष्म सम्बन्ध विनोदवृत्ति से भी रहता है जो किसी न किसी रूप में परिष्कृत एवं प्रौढ़ व्यक्तित्व का अनिवार्य गुण है। आत्मनिरीक्षण के द्वारा व्यक्ति अपने अतीत के त्रुटियों की पुनरावृत्ति का एवं अनावश्यक अवन्ताओं का निवारण करने में सफल होता है। वह अपने दोषों का आरोपण दूसरों पर नहीं करता। सच्ची विनोदवृत्ति के द्वारा वह अपने स्नेह की वस्तुओं पर ही नहीं, स्वयं अपने पर भी हँस सकता है और फिर भी उनसे स्नेह कर सकता है। वह महत्वाकांक्षी एवं तटस्थंधी प्रत्यक्ष क्रिया के अन्तर को समझता है और विश्व रंगमंच पर जीवन का नाटक अनासक्त एवं अनुद्विग्न भाव से खेल सकता है। आत्मनिरीक्षण एवं विनोद वृत्ति की प्राप्ति के लिए उच्चकोटि की बुद्धिमत्ता अपेक्षित रहती है। इनके द्वारा व्यक्ति अपनी त्रुटियों एवं असामाजिक इच्छाओं को जानकर उन पर विजय प्राप्त करने में सफल होता है। वह अपनी समस्याओं को अल्प एवं उपेक्षणीय मानता हुआ विरोधी या बाधक घटनाओं से निराश न हो कर उन्हीं में आनन्द लेने लगता है।

---

1. And all the still process goes on, possessions, friends, one's own children, other children cultural interest abstruct ideas, hobbies recreation and most. Ali park MxR. consciously of all.
   All port H.D. personality a psychological interpretation p-217.
2. Knowledge oneself is called in sight the term is an extension of psychialiatric usage according to which a mental

5.6 <u>संयोजनशील जीवन दर्शन</u> - इन दोनों परस्पर - विरोधी प्रतीत होनेवाले तत्वों में सामंजस्य स्थापित करने वाला तीसरा तत्व संयोजनशील जीवन दर्शन है । यह जीवन दर्शन प्राय: शब्दों में वर्णित नहीं हो पाता किन्तु आलपोर्ट का कथन है कि - "कर्मशील व्यक्ति का जीवन इसके आधार पर सफलता पूर्वक सक्रिय रहता है जीवन दर्शन में धर्मदृष्टि का भी महत्वपूर्ण स्थान है । धर्म दृष्टि से व्यक्ति अपनी समस्याओं में दैवी योजना के दर्शन करता हुआ उसके कष्ट की अनुभूति नहीं करता वह अपनी व्यापक दृष्टि के कारण अपनी वर्तमान कठिनाइयों को सरल बना देता है ।"[1] धर्म दर्शन के अतिरिक्त सौन्दर्य दर्शन अन्य जीवन दर्शन है और इस दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति वस्तुओं मूल्यों एवं घटनाओं का मूल्यांकन एवं महत्व स्थापन करता है । इन दोनों संयोजनशील जीवन दर्शनों के अतिरिक्त सत्य की खोज में अनुरत सिद्धान्त-चिन्तन को भी संयोजनशील जीवन दर्शन के अन्तर्गत ग्रहण किया जा सकता है ।

---

1. The highest value but the religious may called unity. Religious man is one whose mental structure is permanently directed to the creation of the highest and obsolutely satisfying value experience. A Faust with his zest and enthusiasm sees thing divine in every event.
1. Allport, Gordon W. Personality a psychological Interpretation p-217.

द्वितीय अध्याय

समकालीन नाट्य-काव्यों में मूल भावनाओं की व्यंजना :

1 विरागात्मक वृत्ति पर आधारित भावनाएँ - विकर्षण (घृणा)

2 आत्मरक्षावृत्ति पर आधारित भावनाएँ

2.1 पलायन

2.2 भय

2.3 युयुत्सा

2.4 शरणागति (दैन्य) एवं अधीनता (दासत्व)

2.5 जिज्ञासा अथवा कौतूहल वृत्ति

2.6 मातृ भावना अथवा वात्सल्य

1.5 स्वप्रतिष्ठापन अथवा अहंवृत्ति

3 व्युत्पन्न भावनाएँ

3.1 आशा

3.2 निराशा

3.3 अनुताप

3.4 श्रद्धा

3.5 ग्लानि

3.6 उद्वेग अथवा आवेश

3.7 विचार

3.8 क्षोभ

3.9 जड़ता

3.10 उन्माद

समकालीन नाट्य-काव्यों में मूल भावनाओं की व्यंजना :

समकालीन नाट्य-काव्यों में मौलिक भावों का व्यापकता के साथ चित्रण हुआ है। भावों के अंकन में कवियों की मनोवैज्ञानिक कुशलता अभिव्यक्त हुई है। मूल प्रवृत्तियों पर आधारित भावों का विवेचन करना प्रस्तुत अध्याय का ध्येय रहा है।

1. विरागात्मक वृत्ति पर आधारित भावनाएं - विकर्षण [घृणा]* :

मैकडूगल के अनुसार " दुर्गन्धित, अरुचिकर, हानिकर पदार्थों के द्वारा घृणा भाव उत्पन्न होता है। इस भाव को

---

* मैकडूगल सोशल साइकोलाजी : पृ. 47-49

अनुभूति घृणास्पद वस्तुओं के या व्यक्तियों के प्रत्यक्षीकरण द्वारा ही नहीं होती; बल्कि उनकी स्मृति से भी होती है । " [1]
समकालीन नाट्य-काव्यों में घृणा की अभिव्यक्ति विरलत: हुई है । " अग्निलीक " में राम की स्वार्थ लोलुपता देखकर सीता में विरागात्मक प्रवृत्ति उदित होती है । राम पत्नी को महत्त्व-हीन समझते हैं इसीलिए सीता कहती है :

" शास्त्रों का [illegible] तो वचन ही है कि भार्या पुत्रप्राप्ति
के लिए होती है
कि वे ऐसे विख्यात वंश की आँखों के तारे हैं
मैं तो उनके लिए अब केवल धर्म संकट हूँ । " [2]

" उत्तर प्रियदर्शी " में कलिंग युद्ध के पश्चात भिक्षु से भेंट होने पर अशोक में विरागात्मक प्रवृत्ति जागृत होती है और उसको दासत्व का बोध होता है :

" कलमष कलंक धुल गया । आह ।
युद्धान्त यहाँ यात्रान्त हुआ । " [3]

" अग्निलीक " में विरक्त सीता को आत्महत्या करते देख लव-कुश को अपने पिता के प्रति व्यामोह उत्पन्न होता है । गुरुदेव के समक्ष

---

* मैक्डूगल विलियम : एन आउटलाइन आफ साइकोलाजी पृ. 147-49
2 भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 137
3 अज्ञेय : उत्तर प्रियदर्शी : पृ. 79

कहे गए उनके ये वचन :

" हम सचमुच अभागे हैं
आजतक हम अपने पिता से दूर थे,
अब जैसे-तैसे पिता मिले
तो माँ छोड़कर चल गयी ।
कहा था न,
हम इस संसार में अकेले हैं
हम स्वयं ही अपने माता-पिता हैं
हमें कभी कोई सहारा नहीं मिलेगा । " *

" संशय की एक रात " में रावण द्वारा सीता का हरण किए जाने से राम में विरागात्मक प्रवृत्ति उदित होती है एवं रावण से युद्ध करने के लिए उद्यत राम के मन में सीता अप्रत्यक्ष रूप से समाहित है अत:

" प्रतिबार
रावण द्वार से
शान्ति के सब दूत
लौटे हार
सौ बार
और हम प्रति सांझ
सहाता आकाश

---

* भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 56

नैनों में लिए
भीगते बैठे रहे खारी हवाओं से । " *

" सूखा सरोवर " में छोटे राजा में सन्यास की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही विद्यमान है, और शासन का अधिकार सौंपे जाने पर यह प्रवृत्ति चरम सीमा को प्राप्त होती है :

" मैं तो कुछ भी नहीं हूं
सब कुछ पुजा है
पता नहीं किस निर्मम ने
किस मनोबल से
निर्मित किया था
सिंहासन को
जिस चेतन ने इस जड़ की
कल्पना की होगी
सचमुच वह घोर शत्रु था । " 2

आपका प्रतिरूप है यह सूखा सरोवर, स्वयं कवि कहता है -

" मुझे लगा तो यह सरोवर हमीं है
हममें वह सरोवर है
उड़ चला हंस आपने मुलुक को अब यहां
तुमरो कोई नहीं । " 3

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. 1
2 लक्ष्मीनारायणलाल : सूखा सरोवर : पृ. 53
3 वही : पृ. 5

कवि की दृष्टि में " सरोवर " जिसके नियन्ता और भोक्ता हम ही है ।

" एक कंठ विषपायी " में सती के देह त्याग से शंकर की दक्ष के प्रति विरागात्मक भावना उत्पन्न होती है, पत्नी सती के शोक में मग्न महादेव दक्ष से युद्ध करने में असमर्थ सिद्ध होते है ।

"प्रिया-हीन संसार
और मैं देख रहा हूं ।
अपने जीवन पर
तम का विस्तार
और मैं देख रहा हूं ।
मैं अपने से ही
अपने को हार
और मैं देख रहा हूं ।"

" एक कंठ विषपायी" में वीरिणी में पुत्री सती के वात्सल्य के कारण अपने पति दक्ष के प्रति विरागात्मक प्रवृत्ति उदित होती है । यज्ञ में शंकर को आमंत्रित न किये जाने की आशंका से वीरिणी कहती है -

" नाथ

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी पृ.:77

ऐसा अविवेकपूर्ण
कोई भी कार्य यदि यज्ञ में हुआ
तो शपथपूर्वक कहती हूं
आज
और अभी
मैं आत्मघात कर लूंगी
देखूंगी
कैसे करोगे यज्ञ?"*

"सूर्यपुत्र" में कुंती के द्वारा वीर-विरुद्ध आचरण करते हुए देख स्वयं कर्ण उसका तिरस्कार करते हुए कहते हैं, कि क्षत्रिय को सभी लड़ाई करनी चाहिए और तेरे पुत्र अर्जुन से तो मैंने साहसपूर्वक युद्ध निश्चित किया है। अपने पुत्र को आर्तभाव से रिझानेवाले तुम कायर कर्ण की माता को धिक्कार है--

" तुमने मां होकर भी दिया मात्र निर्वासन अंतहीन
तुमने दी यातना, बिना किसी कारण से हो गया नामहीन
पिता सूर्य देखते रहे मेरा निष्कासित भद्र जनसमूह में
आज भी बने हुए अनभिज्ञ, अनजान जैसे मेरा पिता होना
अक्षम अपराध हो।"[2]

घृणा का स्थूल शारीरिक चित्रण युद्ध नर-बलि के

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. : 30
2. जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. : 78

प्रसंग में मिलता है । विकलांग लाशों के अंबार, घूमते गिद्ध, बेदी की निर्मम प्रसन्नता आदि का वर्णन करते हुए कवि कहता है--

> * युद्ध की लपटें लील रही थी असंख्य सैनिक
> अजेय वीर, मदोन्मत गज और अनगिनत रथी ।
> हो रहा था नर्तन भयावह मृत्यु का
> विकलांग लाशों के लगे थे अंबार
> घूमते विकराल गिद्ध
> अंधेरी रात में करते थे चीत्कार ।" *

घृणा की सशक्त अभिव्यक्ति "इला और अमिताभ" नाट्य काव्य में हुई है । अमिताभ अपनी गर्भवती प्रेयसी इला को भगाकर अपनी एक दूर की विधवा बहन के घर ले जाता है, क्वांरी भतीजी के गर्भवती होने का समाचार सुनकर फुफेरे विवाह को प्रस्तुत रूप में दिखाना चाहता है । इला का संशय फुफेरे के मन में घृणा के बीज बो देता है, इला अपने चाचा से भयभीत किन्तु सशक्त होकर कहती है --

> * जीवन में संकटों का अन्त कहाँ
> जैसे ही एक कठिनाई हल होती है
> उठ जाते चार नये प्रश्न वहाँ
> तुम जो भगाकर प्रिय मुझको ले गये थे,

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ० : 104

चाचा की चित्त भूमि में मानो द्वेष दाह,
रोष घृणा के अनगिनत बीज बो गए थे । "[*]

" इला और अमिताभ " में इला अपने प्रिय को आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक पहुँचाना चाहती है इसलिए पत्नी बनकर बाधा पहुँचाने की अपेक्षा दूर से ही सूक्ष्म मनन-चिन्तन की गहराइयों को जानने की प्रेरणा देती है स्वयं को प्रेम के क्षेत्र में अपमानित पाकर वह सामाजिक नियमों को अस्वीकार करती हुई कहती है :

" सामाजिक रूढ़ियों का कैसा यह कठोर शासन
धर्म के प्रवक्ता हितैषियों में बैर क्रोध अग्नियों का
कैसा निर्धूम ज्वलंत ।
जान नहीं पड़ता है हमने बिगाड़ा क्या
कहाँ कहाँ किसी का
उत्सुक हमारे क्यों माथे पर आंकने को लगे हैं
मिथ्या पाप का टीका ?
वैसा ही परिणय की रस्म से हमारा सम्बन्ध अब । "[2]

2 आत्मरक्षा वृत्ति पर आधारित भावनाएं : .. ..

2.1 पलायन या भय :

भय मानव जीवन की महत्वपूर्ण भावना है । समकालीन नाट्य काव्यों में भय का चित्रण विस्तृत रूप में हुआ है ।

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 44
2 डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 47

मैक्डूगल के मतानुसार "स्मृति या भय इससे प्रेरित कुछ पात्र अपनी सुरक्षा के लिए शरीर की शक्तियों का अधिकतम प्रयोग करते हैं। कुछ पात्र भयोत्पादक की अनुभूति एवं रक्षा के लिए भयस्थल से पलायन करते हैं। नेत्र विस्फार, तीव्र श्वास प्रश्वास, शरीर की गति में अवरोध, जड़ता उन्मत्त शारीरिक चेष्टाएँ आदि भी कुछ पात्रों में मिलती है।" *

" सूखा सरोवर " में छोटा राजा सन्यासी और जनता के आह्वान पर एक बार सरोवर के देवता के समक्ष उपस्थित होता है, किन्तु ज्यों ही मन में भय उत्पन्न होता है त्यों ही प्राण रक्षा हेतु भाग खड़ा होता है।

" सूर्यपुत्र " में कर्ण जब अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध के लिए प्रस्ताव रखता है। कर्ण के शौर्य के प्रभाव से भयभीत होकर अर्जुन कर्ण के आदेश का उल्लंघन करते हुए कटु वचन कहने लगते हैं :

" अर्जुन के नयन हो गये लाल
तीव्र स्वर में कहा अपरिचित युवक से -
आये हो अनाहूत पहले बतलाओ
किसके हो पुत्र
गुरु कौन है तुम्हारा
क्या मंतव्य यहाँ इस तरह आने का।" 2

---

* विलियम मैक्डूगल : सोशल साइकोलाजी : एन आउटलाइन- आफ साइकोलाजी : पृ. 321-23 ; पृ. 43-47

2 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 47

कर्ण के मुख पर एक अद्भुत विश्वास, आँखों में अपूर्व ज्योति और विजय के उन्माद से उनके रग-रग में उठता शौर्य देखकर अर्जुन भयभीत हो जाता है और कहता है :

" हुआ क्षण भर को स्फुरण अर्जुन के मन में
कहा प्रकट में तो आओ, परीक्षा दो शौर्य की
पर पहले परिचय दो स्वयं का कुल का
कहीं ऐसा न हो बाद में मुझे हो कष्ट
किसी अनाम की
किसी अयोग्य की हत्या का भागी बनूं मैं । " *

अर्जुन को भयभीत हुआ जानकर कृपाचार्य कर्ण के प्रति कटु शब्द कहने लगते हैं :

" यह प्रश्न बहुत सामयिक है
युद्ध के सन्दर्भ में
वीरों के सन्दर्भ में
वीरों के साथ लड़ते है वीर
राजाओं के साथ राजपुरुष
प्यादों के साथ प्यादे
और शूद्र के साथ शूद्र जन । " 2

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 48

2 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 48

द्वन्द्व युद्ध में अर्जुन के द्वारा तिरस्कृत कर्ण के मलिन मुख को देखकर दुर्योधन आगे बढ़कर महाबली कर्ण का राजतिलक करते हैं और समस्त सभा जयघोष करती है ऐसी स्थिति में द्वेषी अर्जुन, कर्ण को अधिरथ के चरण को छूते देखता है तब पारस्परिक द्वेष के कारण वह कर्ण से कहता है :

" भाग जा सूत पुत्र ।
  घोड़ों को जाकर हांक
रथ को कर साफ, देख-भाल कर घोड़ों को
आया था करने मुकाबला मेरा तू । " *

" एक कंठ विषपायी " में सर्वहत युद्धभूमि से पलायन कर अपनी प्राण रक्षा के लिए नगर द्वार की गुफाओं में जा छिपता है । शिव के गण उसको पकड़ लेते है तथा उसके शरीर को घायल कर देते हैं जिससे वह अचेत हो जाता है । उसके शरीर की गति में कुछ समय के लिए अवरोध उत्पन्न हो जाता है जब उसकी आँखे खुलती है तो वह उन्मत्त चेष्टाएँ करने लगता है वह स्वयं कहता है :

" जाते जाते शिव के गणों ने
दक्षिण नगर द्वार की गुफाओं में छिपे हुए
मुझको भी पकड़ लिया
मेरे भी तन पर व्रण छोड़ दिए
और मैं अचेत हो गया था । " 2

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्य पुत्र : पृ. 51

2 दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. 53

" अग्निलीक " में घर से छूटी हुई सीता के मन में मृत्यु भय बराबर बना हुआ है । मृत्यु की घड़ी आने पर वह स्वयं को विमुख न कर बैठे, इस भय से सीता स्वयं कहती है -

" अपने आप से
मैं डरती हूँ
कहीं ऐसा न हो कि मैं जीवन से मोह लगा बैठूँ
और मरने से डर जाऊँ
जब मेरे चलने की घड़ी आये
तो कहीं यह न कह बैठूँ अभी नहीं कुछ दिन और । "*

" इला और अमिताभ " में अमिताभ में उसके जननेन्द्रिय के विच्छेद किये जाने से हीनता भावना जागृत होती है । उसने गुंडों के हाथों से घोर शारीरिक यातना सही थी अब उसे चारों ओर से अपमान की ज्यादातर यातना मिलने लगी । ईसाई धर्म के अनुसार स्वयं स्रष्टा भी षंढ को पसन्द नहीं करता । उसे जान पड़ता है दुनिया में कहीं ठौर नहीं है । लोक निंदा से और लोगों के से बचने के लिए वह स्थान परिवर्तन कर देता है । सर्वप्रथम सेन्ट डेविस के [मठ] में जाता है । वहाँ से वह शीघ्र ही निकाल दिया जाता है और कई जगहों से निराश होकर ग्राम के समीप, जहाँ उसकी कुछ जमीन थी, झोपड़ी डालकर रहने लगता है । इला को पूरा समाचार मिलता रहता है । अपने प्रिय को इस तरह पलायनवादी होते सुनकर वह अमिताभ को दोष देती है । वासनाजनित प्रेम ने उसे इस दारुण

---

* भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 22

स्थिति तक पहुँचाया है :

" तुमने शुरू से ही
मेरे हित अहित और भविष्य का
विशेष ध्यान न देते हुए
मुझे मात्र इच्छा पूर्ति का
साधन बनाया । " *

अमिताभ की पलायनवादिता से भयभीत होकर वह कहती है :

" मेरे शिक्षक और मित्र
जिन्दगी की जरूरतों और माँगों से
भागने में
उसकी सम्पूर्ति नहीं है
अपने सीमित बुद्धिबल-सामर्थ्यवाले
साथियों से कतराकर
आसमान की ओर ताकना
आत्मा की ऊँची अनुभूति नहीं है ।"[2]

अपने रूप रंग गंध से अमिताभ के चिन्तन-मनन सृजन का खेद वह कम करना चाहती है । अमिताभ के प्रति आशंकित हो उठती है :

---

* डा॰ देवराज : इला और अमिताभ : पृ॰ : 77

2॰ वही : वही : पृ॰ : 87

"अब तुम, बन्धु
कुछ और ही सोचने लग गये हो
अपनी बुद्धि-मन-देह-आत्मा को
अनुरक्त सहचरी
आराधिका, उपासिका को
छोड़कर
अकेले-अकेले
किसी अज्ञात हृदयहीन शून्य की
शरण खोजने लगे है।"*

2.3 युयुत्सा (क्रोध एवं योद्धिकता) :

समकालीन नाट्य-काव्यों में कुछ पागल क्रोध के कारण जड़ वस्तुओं को तोड़-फोड़ करते है मारते-पीटते है। मैक्डूगल के अनुसार - "योद्धिकता एवं क्रोध से प्रेरित क्रियाएं लक्ष्योन्मुख होती है। व्यक्ति प्रथम तो बाधक तत्व को अपने मार्ग से हटाने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु इसमें सफलता न मिलने पर उसे नष्ट कर डालने के लिए तत्पर हो जाता है, भौंहे सिकोड़ना, ओंठ ऊँचा होना, गर्जन-तर्जन करना, काटना, शरीरांगों का फूलना, रोमांस आदि इन भावों से प्रेरित क्रियाएं है।"[2] "एक कंठ विषपायी" में सती के देह त्याग से क्रोधित शंकर है भृत्य यज्ञ को खण्डित कर देते है तथा रक्त धाराएं बहाकर सारे नगर को निर्जन कर देते है, वृद्ध मुनियों के पाँव से प्रहार करते है :

---

* देवराज, कला और अमिताभ : पृ. 87

2. विलियम मैक्डूगल कै. सोशलसाइकोलाजी पृ.: 51-53
वही कं. एन आउटलाइन आफ साइकोलाजी पृ.: 139-42

"इस पर वे क्रूर-वृत्ति
वेदी पर टूट पड़े
वयोवृद्ध आंगिरस
कृशाश्व मुनि
दोनों के शीश पर
प्रहार किया पांवों से
यज्ञ किया खण्डित
कर रक्तपात
निर्जन कर दिया नगर ।"[1]

क्रोधित शंकर नगर की साज-सज्जा को अस्त-व्यस्त कर देते है, और नगर की सारी वस्तुओं को तोड़-फोड़ डालते है :

"जन संकुल राजमार्ग नीरव
जन हीन नगर
औरतनी हुई
वह आकृति क्रोध मग्न
पीड़ा से भरा हुआ नीलकंठ
पांचों मुख
दुःख की अभिव्यक्ति में निरत असफल
मस्तक में खौल रहा गंगाजल
"औ" त्रिनेत्र ज्वाला के स्फुलिंग बरसाते
विह्वल आवेश-युक्त चतुर्भुजा ।"[2]

---

1. दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. : 46
2. वही : वही : पृ. : 43

क्रोध से सिसकते हुए शंकर महाकाल का तांडव करने को उद्यत हो जाते है :

" यदि तुमसे यह विछोह चिर होगा
तो मैं सच कहता हूँ
महाकाल का तांडव फिर होगा
तो तीनों लोकों में
मज्जा दिखेगी नहीं
केवल रुधिर होगा ।"*

क्रोधित शंकर सीमाओं में घुस कर आ जाते है, और चिल्लाकर अपनी प्रतिहिंसा उद्घोषित करते हुए कहते है -

" मेरे विरुद्ध
इस देवलोक में दुरभि संधि है
सारे समाज को
भस्म करेंगे श्राप सती के
मेरी पत्नी को
जीवन दो या तांडव भोगो
सब देव और ऋषि
हन्ता है भगवती सती के ।"2

"आत्मजयी" में वाजश्रवा अपने पुत्र के मुख से अपनी निंदा सुनकर

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. : 98
2. वही : एक कंठविषपायी : पृ. : 113

क्रोधित हो जाते है । क्रोध से उनके हृदय की धड़कन तेज हो जाती है । और धड़कते हुए कटु शब्द कहने लगते है :

" मृत्यवेत्वा ददामि ! अकस्मात वज्रवाक्य ।
क्रुद्ध वाजश्रवा के वे क्रोध से धधकते शब्द,
नचिकेता के अन्तस पर
छाप-सी झुलस आयी-"मृत्यवेत्वा ददामि---।"*

"सूर्यपुत्र" में सूर्य द्वारा प्राप्त अंश की बात कहते हुए, जब कुंती युधिष्ठिर के समक्ष निवेदन करने लगती है, तो युधिष्ठिर उस पर क्रुद्ध हो उठते है और उसे शाप देते हुए कहते है -

" न हो भविष्य में
कभी ऐसा युद्ध
भाइयों के ईर्ष्या से ।"2

कुंती जब अपने किए अतीत कर्मों का स्मरण करके रूदन करने लगती है तब कटु उक्तियां करते हुए उस कर्ण कहते हैं :

" आज से न गुप्त कुछ रख पायेंगी नारियां
छिपा न सकेंगी कोई भयावह रहस्य ।"3

---

* कुंवर नारायण : आत्मजयी : पृ. : 14
2. जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. : 149
3. वही : वही : पृ. : 149

कुपित कर्ण कुन्ती से कहने लगते हैं कि इस नर संहार का कारण तुम स्वयं हो :

"प्रज्वलित की
मां । तुमने इतिहासाग्नि किया । इस युग का
तुम्हारे रहस्य से हुआ यह नरसंहार ।"*

कर्ण में यौगिकता एक भिन्न अप्रतिम साहस के रूप में चित्रित हुई है माता कुन्ती जब निर्भीक साहस के साथ अपने भाइयों को न मारने को कहती है, ताकि वह सब में एकता स्थापित कर सके । साहसी और "दानवीर कर्ण" "युद्ध में नहीं करूंगा हनन तुम्हारे किसी पुत्र का" कहकर उसे चुपकर देते है । अर्जुन द्वारा किए गए अत्याचारों को अस्वीकार करते हुए उत्तेजित कर्ण कुंती से पुन: कहते है :

" केवल अर्जुन को तुम मत करो इसमें सम्मिलित
मैं अपने ऊपर लांछन भी सहूंगा कायरता के
पर न लूंगा प्राण अन्य किसी पुत्र के ।"[2]

दुर्योधन जब शल्य को कर्ण का सारथी बनने के लिए कहते हैं तब वह क्रुद्ध हो जाता है । दुर्योधन की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए क्रोधित शल्य सूत पुत्र कर्ण का सारथी बनने से इन्कार कर देता है :

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. : 148

2. जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. : 78

"दासों का हाँकना है, अधर्म
यह तो प्रवंचना है, मृत्यु से भी बदतर ।"*

"इला और अमिताभ" इला का चाचा फुलवेरे समाज के ख्याति प्राप्त व्यक्तियों में से एक है । समाज में अपनी मानमर्यादा से वह गर्वित है, किन्तु अपनी भतीजी इला को ब्याह करने से इन्कार करने पर उसमें क्रोधजागृत होता है । उसके इस भय से दोनों विवाह को तैयार हो जाते हैं । किन्तु जब फुलवेरे को पता चलता है कि यह वैधानिक रूप से सम्पन्न विवाह नहीं, मात्र दिखावा है । तब फुलवेरे गुंडे लगाकर अमिताभ पर आक्रमण करके उसे शारीरिक कष्ट पहुँचाता है । इला अमिताभ की सहनशीलता के आघात से इला में एक कटु तनाव उत्पन्न हो जाता है :

" कुटिल, नीच कायरता करती और
सोंधती हूँ मैं जब वैसी तीक्ष्ण पीड़ा, यातना
निष्ठुर-क्रूर पशु मनुष्यों के
निमर्म चोटों की कुत्सित चोटों से
फूल जैसी काया को रौंदाती, कंपाती
हिंसा की भोंडी, क्रूर चोटों से
तुमने सही झेली ।"2

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. : 136

2. डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. : 55

इला में अपने प्रिय की क्षति से आक्रोश का भाव उत्पन्न होता है सामाजिक मान-मर्यादा, मोह को प्रधानता देने वाले पुरुषों को ललकारती हुई, उसकी मनःस्थिति इस बात की परिचायक है :

"मानव की धमनियों में आदिम कुठार पशु
अब तक भी क्यों इतना जीवित है?
बुद्धि का विवेक दोष अन्धमान्यताओं के
कुहरे से क्यों नित आच्छादित है?
इनसे परे कहीं है, सत्य स्नेह -शुचिता का
ज्योतित उन्मेष, आल्हाद निर्झर ।"*

2.1 शरणागति (दैन्य) एवं अधीनता (दासत्व) :

मैक्डूगल के अनुसार दैन्यभाव का लक्ष्य माता-पिता एवं अन्य व्यक्तियों से सहायता एवं सुख पाना है । इसमें स्वभावतः व्यक्ति को अपने अंदर अधीनता की भावना जगानी होगी । अश्रु, सिसकियां एवं भूमि पर लोटना आदि इसकी अन्य चेष्टाएं है ।[2] समकालीन नाट्यकाव्यों में दासता की अपेक्षा विभिन्न भावों से उत्पन्न दैन्य का ही अधिक चित्रण हुआ है । "उत्तर प्रियदर्शी" में अशोक धर्म दृष्टि के कारण बौद्ध भिक्षु की शरण में

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. : 56
2. विलियम मैक्डूगल : एन आउटलाइन आफ साइकोलोजी पृ. : 163

जाता है तथा भिक्षु के समक्ष गिर पड़ता है और वह मुक्ति रहस्य जानना चाहता है :

> " क्यों, कैसे, किस चमत्कार बल से
> तुम नरक - मुक्त हो । " *

भिक्षु के धर्मोपदेश से राजा के मन में करुणा जागती है । वह बन्धनमुक्त हो जाता है ।

" उर्वशी " में पुरुरवा एक आस्थावान व्यक्ति है । वह वृक्ष प्राप्ति का इच्छुक वह संभोगानंद को आध्यात्मिक प्रकृति के अन्वेषण करने के रूप में देखता है । अचेतावस्था में भी इसी तथ्य को उजागर करने की चेष्टा उसमें बनी रहती है, इसीलिये उसका निर्णय है :

> " सत्य स्यात केवल आत्मार्पण, केवल शरणागति है
> उसके पद पर जिसे प्रकृति तुम, मैं ईश्वर कहता हूँ ।"[2]

पुरुरवा प्रकृति (उर्वशी) से हटते ही उदास हो जाता है ।

> " चली गयी? सब शून्य हो गया ? मैं विमुक्त रही हूँ । "[3]

दुःखाग्नि से तप्त होकर उसका सारा धैर्य नष्ट होता सा प्रतीत

---

* अज्ञेय : उत्तर प्रियदर्शी : पृ. 79
2 दिनकर : उर्वशी : पृ. 84
3 वही : पृ. 139

होता है । उर्वशी के अतिरिक्त उसका अन्य कोई शरण नहीं है - किन्तु देवताओं की शक्ति को स्वीकृत कर वह आत्महीनता का अनुभव करता है -

" जहाँ क्रिया कामिनी नहीं, छाया है परम विभा की
जहाँ प्रेम कामना नहीं, प्रार्थना, निदिध्यासन है । " [1]

पुरुरवा दैन्य के समाज विरोधी भावों को स्वीकार करते हैं किन्तु सुख की कामना उसमें बराबर बनी है :

" अन्तरतम के रुदन, अभावों की अव्यक्त गिरा को
कितनी बार श्रवण करके भी मैंने नहीं सुना है । " [2]

अन्तर्मन का रुदन पूर्व स्मृतियों से जोड़ता है । जहाँ पर कि वह उर्वशी के हृदय की आवाज कई बार सुनकर भी नहीं सुन सका अत: :

" बिना चुकाये मूल्य जगत में किसने सुख भोगा है
तुझ पर भी पुरु ! शेष जो ऋण अपार जीवन का,
भाग नहीं सकता तू उससे किसी प्रकार मनाकर । " [3]

कर्म के प्रति आस्थावान पुरुरवा प्रजा के प्रति अनुत्तर दायित्व-हीनता का अनुभव करता है इसीलिए मंत्रियों के प्रति दैन्य भाव का प्रदर्शन करता हुआ कहता है :

---

1 दिनकर : उर्वशी : पृ. 139
2 वही : पृ. 145
3 वही : पृ. 144

" देख लिया । मंत्रियों एक क्षण भी समय नहीं है
कहो पुरोहितों करें सर्वस्व वाचन शुभ राजतिलक का। "*

आयु को राजमुकुट प्रदान करके निर्वेद की स्थिति को प्राप्त पुरूरवा के दैन्य में आत्मविकास समाहित है ।

" एक कंठ विषपायी " में सर्वहत सहायता का सुख पाने की दैन्यता से इन्द्र और वरुण के शरण में जाता है । वह स्वयं कहता है

" दो रोटी पाने की आशा में
इतना सब रक्त स्राव सहकर भी
यहाँ तक चला आया । " 2

"महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर धर्मदृष्टि के कारण हिमालय शरण में जाते हैं :

" यह त्रिपुण्ड सी खिंची
हिमालय के ललाट पर
उत्तर दिशि
स्वीकार जिसे केवल निर्माल्य
व्यक्ति का
चरैवेति !! " 3

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 145
2 दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. 53
3 नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृ. 48

" सूर्यपुत्र " में कर्ण के स्नेह में दैन्य की अभिव्यक्ति हुई है । सभी प्रदेशों पर विजय प्राप्त करने के बाद कर्ण दीनतापूर्वक दुर्योधन से अनुमति लेते हुए स्वराज्य लौटते हैं :

" सभी विजित किये राज्य सौंपकर सखा को
लेकर अनुमति तथा आवश्यक निर्देश
विदा ले दुर्योधन से
कर्ण चले विराजते सौरभ स्वराज्य
अंग देश में । " *

भीष्म पितामह द्वारा कर्ण अपने शौर्य की घोषणा करते हुए दीनता-पूर्वक युद्ध के लिए प्रस्थान करने से पूर्व यह कहते हैं :

" मेरा असंख्य युद्धों में अविचलित युद्ध
रहेगा समर्पित सदा
कौरव कुल की रक्षा और आपके आदेश को । " 2

" इला और अमिताभ " में अमिताभ जब इला को परमतत्वके प्रति भक्ति में डूबा देखता है तो उसे प्रसन्नता होती है किन्तु इला अपने प्रिय अमिताभ को ही अपना ईश्वर मानती है । अमिताभ के प्रति दैन्य भरा आत्म समर्पण करते हुए कामना उसके प्राणों में अधीरता भरती है :

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 56

2 वही : पृ. 84

" तुम मुझे झूठी प्रशस्ति की
लज्जा से ढँक रहे हो
लेकिन मैं इस स्थिति को, कि मैं अब भी
वह पुरानी इला हूँ - अपने अभिताभ की
उत्कट अनुरागिनी, प्रेमिका, उपासिका -
किसी तरह की लज्जा का कारण नहीं मानती
मैं - तुम्हारी प्रेयसी और पत्नी
किस तरह
बीते विनोदों, विलासों और सुखों की
यादों व कल्पनाओं से
बेतरह आक्रान्त और आकुल रही हूँ । " *

अमिताभ उसे अपने प्राण सत्ता के मनोहर केंद्र के समान प्रतीत होता है । उसकी मधुर छाया की प्राप्ति के लिए उसके प्राण दीनतापूर्वक याचना करते है :

अभिताभ के रूप में इला को अपनी जीवन साधनापूर्ण होती सी प्रतीत होती है, जिसे आत्मसमर्पण करके मानों वह पूर्ण हो उठेगी असीम दैन्य से प्रेरित उसकी अधीनता जनित दास्यभावना इन शब्दों में सकार हो उठती है :

" मेरी प्रार्थना है कि तुम

---

* डा. देवराज, इला और अमिताभ : पृ. : 72

किसी रहस्यमयी दैवी धरातल पर
मेरे साथ एकात्म होने की
कल्पना और संकेत न करो
बल्कि मुझे
साधारण प्रेमिका और पत्नी की
मानवीय भूमि में रखते हुए
मेरी वेदना और व्याकुलता के घावों पर
अपनी समवेदना और स्नेह का
शीत लेप धरो । " *

अतीत की स्मृतियाँ उसे व्याकुल बनाती है । विरहिणी के रूप में उसका दैन्य और भी बढ़ जाता है । समर्पण भरा प्रणय दासत्व उसके एकात्म्य, उसके अस्तित्व की करुण गाथा गाता है :

" मेरा यह अस्तित्व, ये मन प्राण
उस क्षण से जब मैंने तुम्हें
गहरे निजत्व के साथ
देखा और अपनाया
केवल तुम्हारी सम्पत्ति हो चुकी । " 2

अमिताभ के अभाव से उसे अपना भाग्य गगन धुंधला दिखाई पड़ता है । अपने अन्तर की वेदना के अंधकार के विनाश के लिए अमिताभ से प्रणय की दीन याचना करने लगती हैं :

---

* डा. देवराज, इला और अमिताभ : पृ. 73
2 डा. देवराज, " : पृ. 75

" भाग्यने, मेरे बन्धु, हम दोनों के बीच
गहरी खाई सी दूरी डाल दी है
ठीक है तुम दूर ही रहो
किन्तु उस दूरी से तुम अपनी मीठी वाणी की
अर्थवती अनुभूति
मनुहारें पुकारें,
जो कुछ भी भेज सकते हो भेज दो ।" •

इला का हृदय व्यग्र है । दुःख के सागर के पार पहुँचने के लिए उसे कोई किनारा नहीं सुझाई देता :

" ज्ञात के स्नेह और कृतज्ञता से
विमुख कर, तुम मुझे
अबूझ अज्ञात की ओर
क्यों ठेलना खदेड़ना चाहते हो ।" 2

इला में कुछ अन्य भावों के द्वारा प्रेरित दैन्य की भी अभिव्यक्ति हुई है । इला निराशा से भरकर स्वयं आत्मभर्त्सना करने लगती है :

" मेरे बन्धु
शुरू का तुम्हारा वह स्वार्थ गंधी लगाव
बाद के निर्मल, गहरे स्नेह को
रद्द नहीं कर सकता
तुमने जो मेरे कारण
अनेक अपमान और कष्ट सहे
उसका दर्दनाक नक्शा
अन्तर्मन के रक्त मांस में आंका हुआ

• डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 75 2 वही : पृ.83

स्मृति से
कभी नहीं उतर सकता ।" *

इला में अमिताभ को पुनः खो देने की पीड़ा से दैन्य के दर्शन उस समय होते हैं जब व्यथा पूर्ण शब्दों में वह कहती है =

" अपनी सारी बुद्धि और विभा के रहते
एक मनुष्य हूं और नारी भी,
कि मुझे
एक मामूली इन्सान के नाते
ढाढस और सान्त्वना की जरूरत है,
और सहानुभूति की भी ।" 2

इला अपनी असफलता और दैन्य को इस प्रकार प्रकट करती है :

" एक इन्सान होने के नाते
दूसरे इन्सान से,
और पत्नी होने के नाते
तुमसे अपने पति से - मैं
निःसंकोच
सहानुभूति और सहारा मांग सकती हूं ।"3

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 83
2 वही : पृ. 85
3 वही : पृ. 85

इला विवाह की घटना को गुप्त रखकर अभिताभ की दार्शनिकता को अक्षुण्ण रखना चाहती है इसीलिए अमिताभ के चरणों में नमन करती हुई वह आनन्द गद्‌गद् होकर स्वयं को अतीत में नासमझ एवं सबको बुलानेवाली स्वीकार करती है :

" प्रिय, मेरा लो प्रणाम
दूर से ही कल्पना में अवमुख छवि देखूँगी
बैठ गुनगुना लूँगी नाम ।
दूर से करती रहूँगी अब प्रार्थना
बन्धु । तेरे शुभ उस आगम की
दूर से ही आत्मा को आत्मा तक पहुँचेगी
याचना पुकार व्यथा सरगम सी
दूरसे ही देना और पाना
प्रेरणा और प्रोत्साहन खूब
दूर से ही दोनों को निभाना अब " *

2.5 जिज्ञासा अथवा कौतुहल (विस्मय) प्रवृत्ति :

जिज्ञासा अथवा कौतुहल प्रवृत्ति से सम्बद्ध भाव विस्मय है। मैक्डूगल के अनुसार " जिज्ञासा सहज प्रवृत्ति से सम्बन्धित भाव असामान्य वस्तु से उत्पन्न होता है । उस वस्तु का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न, कानों एवं नेत्रों को उसमें गड़ा देना, इससे उत्पन्न शारीरिक क्रियाएं है । "2 " आत्मजयी " में नचिकेता

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 86

2 विलियम मैक्डूगल : सोशल साइकोलोजी : पृ. 49-50

ज्ञान विज्ञान तथा प्रकृत्ति पर विजय प्राप्त करना चाहता है । अमर जीवन को जानने में उत्सुक नचिकेता असाधारण स्थिति को प्राप्त होना चाहता है :

" ले लो मुझसे अद्वितीय यह जीवन
दूना सुखमय वापस ।
ज्ञान कठिन जिम्मेदारी है
जी ले पहली नयी वयस
श्राप साधाना, अनिश्चय चिन्तन मनन खोज
जिज्ञासाओं में
अक्सर उदासीन जीवन व्यतीत हो जाता
खोज सत्य की करनेवाला
बहुधा उसमें ही खो जाता । " *

" उर्वशी " चित्रलेखा एक अकुंठ अप्सरा है किन्तु प्रेम सम्बन्धों को लेकर उसमें जिज्ञासा है । चित्रलेखा के महर्षि से सुकन्या के प्रेम सम्बन्ध के बारे में जिज्ञासा से पूर्ण शब्द पूछे जाने पर सुकन्या उत्कंठित होकर अपने प्रिय की महत्ता का कथन कहने लगी । उसने बताया कि समाधिस्थ ऋषि को देखकर मेरे मन में कौतुहल हुआ और मैंने उनकी पलकों को तनिक सा खींच लिया । उनके रन्ध्रयुगल नयनों से अग्नि प्रवाहित हो उठी । मैं भय स्तम्भ पीड़िता अंत मृगीसी उनके सामने खड़ी रही, किन्तु मैं जली नहीं और ऐसा प्रतीत होने लगा कि ज्वाला शीतलता में परिणत हो रही है । सहसा कवि के आनन पर स्मिति दिखाई दी । मैं लज्जा से लाल हो गई । ऋषि ने प्रश्न किया :

" सौम्ये हो कल्याण, कहाँ से इस वन में आई हो ?
सुर कुल की शुचि प्रभा या कि कोई और
कहाँ मिला यह रूप, देखते ही जिसको पावक की

---

* कुंवरनारायण, आत्मजयी : पृ. 66

तप की दारुकता मिट गई, स्थाणु में पत्ते निकल रहे है । "*

महर्षि अपने प्रश्नों के लिए रुके नहीं । शायद उत्तर आवश्यक भी नहीं था । उन्होंने तत्काल अपना प्रस्ताव सुकन्या के समक्ष उपस्थित किया :

" वरण करोगी मुझे ? तुम्हारे लिए जरा कौशल कर
शुभे । तपस्या के बल से मैं गृहण करुंगा
प्रौढ़ मेघ, पादप नवीन, मदकल किशोर कुंजरता । "[2]

अप्सराओं में प्रेम की व्यापक समस्या एवं जनन को लेकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है । रंभा, मेनका, सहजन्या परस्पर देव एवं मृत्यलोक को गुणावगुण पर छोड़ देती है और समाधान पाना चाहती है । नर-नारी के प्रेम को आधार बनाकर मेनका कहती है कि देवों के प्रेम की सीमा, गंध, श्रवण और दृश्य तक ही सीमित है । तृष्णा, क्षुधा, पीड़ा, वेदना के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। मर्त्य नर इतना सक्षम है कि वह अपने प्रेम को शरीर की इन्द्रियों के स्तर पर साकार रूप के आनन्द का भोग करता है । इस तरह वह मधुरस भोक्ता है । उससे प्रेम करने पर तृष्णा, क्षुधा, पीड़ा वेदना से मुक्ति मिलती है ।

" मृत्य जीवन पर ऐसा कोई बन्धन नहीं है,
रूके गन्ध तक, वहा प्रेम पर प्रतिबन्ध नहीं है । "[3]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 106

2 वही : पृ. 107

3 वही : पृ. 11

रंभा प्रेम में उन्मत्त स्वप्नों में विहार करती सभी के हृदयों में चाह पैदा करना चाहती है । प्रत्येक पुष्प के सौरभ से अपने आपको आनन्दित करना चाहती है । सब कुछ करते हुए भी तन के मिलन से बचना चाहती है । कभी कभी तन के मिलन को स्वीकार करने पर भी रचना [संतति] के झंझट से दूर रहना चाहती है क्यों कि उससे तन क्षीण होता है और उन्मुक्तता बाधित होती है । उसकी इस जिज्ञासा का समर्थन करती हुई मेनका मातृ पक्ष की महिमा का गुणगान करती है ।

" पर रंभे माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है ?
गलती हिमशिला, सत्य है गठन देह की खोकर
पर हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर? " *

पुरूरवा और उर्वशी में जब काम जन्म लेता है तब वह विस्मय में डूब जाता है । उसमें एक सिहरन किलक भर जाती है । पुरूरवा देवी नवीन सौन्दर्य की कल्पना में डूबा रहता है :

" जब से हम तुम मिले रूप के अगम फुल्ल कानन में
अनिमिष मेरी दृष्टि किसी विस्मय में डूब गयी है,
अर्थ नहीं सूझता मुझे अपने ही विकल गिरा का
शब्दों से बनती है जो मूर्तियाँ तुम्हारे दृग से
उठनेवाले क्षीर ज्वार में गलकर खो जाती है
खड़ा सिहरता रहता मैं आनन्द विकल उस तरु सा
जिसकी डालों पर प्रसन्न गिलहरियाँ किलक रही है । "2

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 19

2 वही : पृ. 42

उर्वशी की जिज्ञासा पुरुरवा से भिन्न है । वह केवल कामेच्छा से धरती पर आयी है । पुरुरवा से मिलन होतेही ही उसमें जिज्ञासा उत्पन्न होती है :

" जब से हम तुम मिले न जाने क्या हो गया समय को
लय होता जा रहा मरुद गति से अतीत गह्वर में । " *

" सूर्य पुत्र " में कुंती का सूर्य के प्रति आकर्षण एवं अनादि कामवृत्ति का सूचक है जो सूर्य के तेजस्वी मुखमंडल " अग्निपिंड " सी प्रज्वलित " नयन राशि " तथा वासन्ती उन्माद घोलनेवाले शलाका पुरुष के प्रति आत्म-समर्पण करने को उत्सुक है ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नारी के अन्दर एक और पुरुष " छाया " आँर्कीटाइप के रूप में रहती है जिसे " अमीनस " की संज्ञा दी जाती है और इसी प्रकार - पुरुष में जो नारी की "छाया" रहती है उसे काम या अमीना की संज्ञा दी गई है । पुरुष और नारी में ये " आदि रूप " अनादि काल से चले आ रहे हैं । "[2] सूर्य और कुंती का यह आकर्षण इसी तथ्य की ओर संकेत करता है । सूर्य का ताप पौरुष का ताप है । कुंती के असीम सौन्दर्य का दर्शन करने के द्वारा उनमें उद्बुद्ध होनेवाली भावना का चित्रण इस रूप में मिलता है ।

मन
" मिन होता था कि उस सौन्दर्य को जिसने एक
भयंकर दावानल धधकाया दुर्निवार

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 42

2 काक्स : मार्डर्न साइकोलोजी : पृ. 144

एक आग का गोला बनकर
लील जायें । " *

" इला और अमिताभ " में इला वय: सन्धि में स्थित नये परिणय की आकांक्षावाली, इला जब अमिताभ की ओर आकर्षित होती है तब अपने शिक्षक अमिताभ का सौन्दर्य दर्शन कर उसके मन में विभिन्न कौतूहल होते हैं :

" आज पहली बार मैंने माना
साधारण शिक्षक में और सच्चे गुरु में
होता है अन्तर क्या
सूने रटे सूत्र बोल एक चकित शिष्यों को
देता बस झिड़कियां
दूसरा स्वयं देख सत्यों के लोक की
खोल देता खिड़कियाँ । " [2]

इला में आत्म लघुता की अनुभूति के साथ समर्पण का भाव उमगने लगता है । उसके प्राण अधीर होते हैं ।

" युग के विख्यात वाग्मी, दार्शनिक, मनीषी
जब से तुम्हारी दीप्त छाँह पड़ी

---

* जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र : पृ. 3
2 डा. देवराज, इला और अमिताभ : पृ. 13

मेरी यह मुद्रित प्रज्ञा कली
निराबाध खुली, खिली विकसी ।" *

प्रिय का सान्निध्य इला को विस्मय में डाल देता है । वह कहती है : प्रतिभा प्रखर सूर्य वह जिनका दर्शन मात्र इन्द्रजाल सा हतचेतन में डाल रहा है :

" शुद्धवर्णा, अर्धदीप्त वाणी का संयमितवहाव
स्वरों का उतार और चढ़ाव
रेखांकित माथे के, भवों, आँखों, होठों के
नाजुक संकेत
मन पहले आश्रम को
कहो कैसे धरे टेक
कैसा रहस्य रे ये सीखना सिखाना
प्रेक्षण की क्रिया गहन
शिष्य की मनीषा के गूढ़ गुहा कक्षों में
गुरु के चैतन्य, बोध बुद्धि का प्रवेश ।"[2]

जिज्ञासा वृत्ति के माध्यम से आध्यात्मिक चिन्तन करती हुई इला कहती है :

" तुमने जो चाहा मेरे बोध गुरु । वह
अनचाहा न था,
तन का समर्पण जब कि मन

---

*डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. ।।
2 वही : पृ. 14

प्राण पूर्व अर्पित था
किन्तु किन्तु -
उच्छल ■■ ■ रस प्लावन के बीचोंबीच
संशय का मकर एक प्रज्वलित सा
दर्शन - आध्यात्म के रहस्यों के
विवरण औ विनिमय से गुम्फित एक तान ता में
कैसा विक्षिप्त संवेगवेग । " •
क्या कुछ अपेक्षित था, समुचित था?

इला में प्रेम की सुखद अनुभूति के साथ-साथ कौतूहल भी जागता है जिससे उसके चिन्तन का विकास होता है -

" सोचती हूँ कैसा अजीब है यह सृष्टि क्रम जीवों का,
सूक्ष्म कला-चिन्तन के वाहक व्यक्तित्व में
दुगना पनपता यह रक्त मांस बीजों का । " 2

2.6 मातृ भावना अथवा वात्सल्य : ....

संसार के अनेक मिथकों में कौमार्य माता का रूप प्राप्त होता है जो " महामाता " का रूपान्तर माना गया है । मरियम, कुंती, केडी और देवदासियों की भावनाओं में पवित्र कौमार्य का रूप प्राप्त होता है । नारी का यह रूप अपने में स्वतंत्र और निरपेक्ष है, वह किसी पुरुष पर आश्रित नहीं है, वह अपने में उर्वरा शक्ति लिए है । यह पवित्र कौमार्य मातृ सत्ता और पितृ सत्ता के मध्य की कड़ी है जो नायकों को जन्म देती है[3] । कर्ण को

• डा. देवराज/इला और अमिताभ / पृ. 15
2 वही 22
3 हार्डिंग/वोमेन मिस्ट्री : पृ. 25

इसी पवित्र कौमार्य से उत्पन्न वह तेजस्वी चरित्र है जो सूर्य की तेजस्विता और कुंती के आत्मार्पण का सृजन है । इस प्रणय में सृजनात्मकता है, काम का मंगल रूप है । कुंती के महिमामय मातृक भावना का प्रेरक मूलतः शिशु कर्ण ही है कर्ण को देखकर हर्षित होती कुंती कहती है :

> " मेरी आँखों में समा नहीं पा रहा यह लावण्य शिशु
> कितना वात्सल्य रोम-रोम में उमड़ रहा है
> और मैं देख रही हूँ यह मांस पिंड जो मेरे अवयवों के
> वैभवमय रेखांकन है । " [2]

सहज मातृक स्नेह की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में मिलती है जैसे :

> " सूर्य से शिशु की ओर से दृष्टि नहीं हटा पाई पृथा
> कितनी दीप्ति इसके मुख पर है, उनकी तरह
> कैसे दीपक करते नयन
> कैसा मुग्ध करनेवाला है मेरे अपने प्रेम का
> यह पहला उपहार । "[3]

सूर्य पुत्र प्राप्ति से पूर्व यह सोचते हैं कि प्रेमी के रूप में किया गया उनका अभिसार एक नये इतिहास का शुभारंभ करेगा । उनकी और कुंती की संतति एक नये वेद का निर्माण करेगी । इसीलिए वह विशाखा को पुत्र स्नेह के कारण कवच और कुण्डल प्रदान करते हैं । कुंती को सान्त्वना देते हुए वह सूर्य के द्वारा सौंपे गए कवच और कुंडल के बारे में बताती

---

* दी औरीयन एण्ड हिस्ट्री आफ अनकानशियस : पृ. 93
2 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 16
3 वही : पृ. 18

हुई कहती है :

" सूर्य ने दिया है यह अभेद्य कवच ये कुंडल
इनको अब मैं शिशु को पहनाती हूँ
ये करेंगे रक्षा शीत से, ताप से
इसे ले जाकर सौंप आती हूं पिता को । " *

शिशु के देदीप्यमान आनन, चमकते हुए कपोल, उन्नत तेजस्वी ललाट देखकर अधिरथ का वात्सल्य उमड़ पड़ता है :

" सोचने लगा अधिरथ
कौन यह राजपुत्र
मेरे अंधियारे गृह में लेकर आया प्रकाश
या देखता हूं मैं केवल एक दिवा स्वप्न । " 2

नवागत अनजाने शिशु को पाकर मृदुल अभिलाषा उसमें जागृत होती है :

" सहमकर, संजोयी शक्ति
धीरे से छुये डरते हुए शिशु के रक्तिम कपोल
पितृ वात्सल्य उमड उठा अंग अंग में
रोम रोम भीग गये
स्नेह के वारिधि में । " 3

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 7
2 वही : पृ. 34
3 वही : पृ. 34

अधिरथ अपने दाम्पत्य जीवन में नवागत शिशु के आगमन से प्रसन्न होता है । पूजागृह में पूजा का थाल लिये आरती करती हुई अपनी पत्नी को शुभ समाचार सुनाता है ।

[लो प्रसाद ! कहकर अधिरथ शिशु को अपनी पत्नी को दे देते हैं । अधिरथ की पत्नी में वात्सल्य भाव का उद्रेक उमड़ पड़ता है ।

" उमड़ पड़ा अमित स्नेह बाहों में, अवयवों में
मुख पर आ गया तेज
माँ का ममत्व उमड़ आया शरीर में
उतर आया दूध सहसा स्तनों में राधा के । "[1]

नवागम्य शिशु के स्वागत की तैयारी में वह गंगा तट पर अपने सम्बन्धी, मित्र तथा पुरजनों को आमंत्रित करता है । समारोह में गूंजती आवाज़ से अधिरथ के अन्तर की मीठी अभिलाषाएं मधुर मौन मंगल-गानों के रूप में उसके सूने घर के कोनों को चूमती हुई उसमें घूमती सी प्रतीत होती है :

" सारा सुर सरि तट सजा था रंग मंडप सा
बजते थे मृदंग, ढोल, रण सिंगे, तुरहीवाद्य
गूंजती थी शहनाई
पुत्र कामना के लिए । "[2]

अधिरथ का लघु जीवन आज के समान सूना न रहेगा, बल्कि हिन-हिनाते अश्वों के साथ क्रीड़ा करते हुए, शिशु की किलकारियों से

---

1 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 35
2 वही : पृ. 34

वह निनादित होता रहेगा ।

राजसी ठाठ-बाट से पुत्रोत्सव मनाते हुए अधिरथ आनन्द विभोर हो उठता है । आमंत्रित भीष्म, महाराज धृतराष्ट्र, विदुर और आमात्य सभी को आशीर्वचन देने के लिए अधिरथ गोदी में ले जाकर उस अपूर्व शिशु को दिखाते हैं :

" अधिरथ ने पाने को आशीर्वचन
गोदी में ले जाकर दिखाया शिशु अपूर्व
कहती थी राधा जिसे " कर्ण " नित्य प्रेम से । " *

विदुर शिशु को दुलराते हुए उसके दीप्तमान मुख को देखकर वीर प्रसूती होने की कल्पना से आनन्द-विभोर हो उठते हैं और आशीर्वाद देते हुए कहते हैं -

" नाम रखो वसुषेण
यह होगा अमित वीर
ओजस्वी
दानवीर जन्मा है सूर्यांश राधा की कोख से । "2

गुरु द्रोण की आज्ञा से जब कर्ण अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध करने के लिए आते हैं तब अचानक कुंती का मातृत्व भाव उमड़ पड़ता है :

" चौंक गई कुंती देख युवा आगंतुक
स्नेहसा उमड़ पड़ा अनायास अन्तस में
सोचने लगी - कौन है अपरिचित युवा

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्य पुत्र : पृ. 35
2 वही : पृ. 35

लगता है परिचित सा
मेरे अवयवों को । " *

जगदीश चतुर्वेदी ने वात्सल्य को जटिल एवं स्वतंत्र मौलिक भाव के रूप में ही प्रस्तुत किया है । अर्जुन अपमानित कर्ण के शौर्य रूप को देखकर दुर्योधन आगे बढ़कर कर्ण का सम्मान करता है । उसमें मित्र वात्सल्य उमड़ पड़ता है । वह कहता है :

" मैं तुमको देता हूँ संपदा राजपाट
मैं तुमको देता हूँ आश्वासन मित्रता का
मैं कद्र करता हूँ वीर भुजदंडों की । " 2

भीष्म पितामह के द्वारा उपहास उड़ाये जाने पर कि कर्ण पांडु-पुत्रों को हराने में असमर्थ है । यह जानकर कर्ण प्रतिहिंसा की आग में जलने लगता है ! दुर्योधन उन्हें समझाता है कि तुम हमेशा मेरे सहभागी बनकर रहना और मैं गुप्त मंत्रणाओं में तुम्हें अपने साथ रखूँगा । यह सुनकर कर्ण त्यागा हुआ आसन फिर से ग्रहण करता है । उसके मन में परम शांति के साथ ही दुर्योधन के प्रति स्नेह की भावना जागृत होती है :

" मैं तो सदैव ही प्रस्तुत रहा
बनने को सहयोगी अपने प्रिय मित्रका समर्पित हूँ तुम्हें । "3

युद्ध के दौरान जब अर्जुन की पराजय को रोकने के लिए इन्द्र वृद्ध का रूप धारण कर आते हैं और उनसे कवच और कुण्डल मांगते हैं ।

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 47
2 वही : पृ. 49
3 वही : पृ. 88

इसके पूर्व ही सूर्य का स्नेहातिरेक अपने पुत्र के प्रति उमड़ पड़ता है और कर्ण को इसकी पूर्व सूचना देते हुए कहते हैं कवच-कुण्डल दान देते समय कोई अमोघ वस्तु माँग लो जो जीवन रक्षा करने में समर्थ हो :

" कुंडल और कवच देते समय तुम भी
उनसे माँगना कोई दुर्लभ, अजेय वस्तु
शर्म मत करना
माँग लेना वज्र या अमोघ शक्ति अपने प्राण रक्षा को । "*

इन्द्र को कवच-कुण्डल दान देते समय कर्ण यह सोचकर परम शांति का अनुभव करते हैं :

" जीवित रहूँ यदि मैं इतिहास के पृष्ठों पर
दानवीर रूप में, तो यह प्राप्ति है अनन्य
नश्वर शरीर का विनाश तो निश्चित है
पर यह अजेय कीर्ति अक्षुण्ण, अलौकिक है
कीर्ति ही चिरस्थायी है
शेष सब नश्वर है । " 2

कर्ण का भावुक हृदय स्वदेश भूमि (अंगी देश) को माता के अत्यंत पवित्र उत्कृष्ठ एवं महिमामय रूप में देखता है :

" सौम्य लगती थी प्रजा अंग देश की
पुरु जन सभी थे साधुवृत्ति में रमे हुए । " 3

---

* जगदीश गुप्त : सूर्यपुत्र : पृ. 111 2 वही : पृ. 117
3 वही : पृ. 59

कर्ण का हृदय और देश की जनता को अनेक समर्पणमयी भावनाओं से उद्वेलित करता है । अनंत त्याग की उत्कट अभिलाषा से कर्ण का रोम रोम प्रदीप्त होता है ।

दीन दुःखियों को देखकर कर्ण का वेदना से बोझिल मन गर्व के साथ सर्वस्व दान देने के लिए तत्पर हो जाता है :

" फैला दूंगा सद्भाव सारे ही राज्य में
त्याग दूंगा वैभव, समृद्धि और राजपाट
मिथ्या है ये आकर्षण
अगर न दे सका शिशुओं को दुलार
दे न सका दुर्योधन को सुख
और निर्धनों को ऐश्वर्य । " *

कर्ण पूर्ण मनोयोग से निःस्वार्थ दान देते हैं । अपने आश्रित व्यक्तियों से कुशल क्षेम पूछते हैं । मधुर सम्बोधन करते हैं । करुणा मिश्रित मधुर बोल बोलते हैं :

बाँटते थे सस्मित सुख दीन दुःखियों को
स्नेह पूछते थे कुशल क्षेम
और अमूल्य रत्न लुटाते थे दोनों हाथों से धन
वस्त्राभूषण । " 2

कर्ण में स्थित मानवीय करुणा की प्रकृति उनके " स्व " की सीमाओं का असीम विस्तार कर देती है । स्व पर के बन्धनों से मुक्त होते

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्य पुत्र : पृ. 59
2 वही : पृ. 61

हुए उन्हें चरम शांति की अनुभूति होती है । कर्ण में सृष्टि-कल्याण के अधिकाधिक त्याग की भावना है । कर्ण की इसी त्याग भावना से प्रेरित होकर श्रीकृष्ण द्रुपद और दुर्योधन सभी आदर से उन्हें " दानवीर " कर्ण कहते हैं ।

1.5. स्वप्रतिष्ठापन अथवा अहं-वृत्ति :

अहं ग्रस्त व्यक्ति किसी न किसी रूप में स्वयं को श्रेष्ठ समझता है । मैक्डूगल के अनुसार इसकी अभिव्यक्ति आत्म प्रदर्शन करने, अकड़कर चलने, अपनी शक्ति, सम्पत्ति, सुन्दरता, अपने भाग्य आदि की अनावश्यक डींग मारने आदि के रूपों में होती है । ऐसा व्यक्तित्व पर हित वादी आवेगों से युक्त कोमल भावों अथवा दोनों के सम्मिलित प्रभाव से ही विनम्र बन सकता है । " *

" उत्तर प्रियदर्शी " में अशोक को एक अहंग्रस्त व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है । कलिंगयुद्ध के उपरांत भाट चारणों के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर उसे आनन्द का अनुभव होता है :

" गाओ नान्दी
भाटचारण गण
गगन गूंजने दो
प्रिय परमेश्वर
राजराजेश्वर के यश गान से । " 2

---

* विलियम मैक्डूगल : सोशल साइकोलोजी : पृ. 53-54

2 अज्ञेय : उत्तर प्रियदर्शी : पृ. 25

" संशय की एक रात " में लक्ष्मण स्वयं को किसी न किसी रूप में शक्ति सम्पन्न मानते हैं । निष्ठावान लक्ष्मण किसी अदृश्य अन्धे हाथों परिचालित यंत्र मात्र नहीं बनाना चाहते । वे कहते हैं :

" संकल्पित प्रज्ञा है
वर्चस्वी निष्ठा है
उत्सर्गित इच्छा है । " *

राम की चुनौती लक्ष्मण को स्वीकार है । लक्ष्मण अकेले लंका युद्ध के लिए जाने के लिए तैयार है और सीता को वापस लाने के लिए कृत संकल्प है । सीता को मुक्त कराने के लिए युद्ध की आवश्यकता पर जोर देते हैं :

" यदि नितान्त एकाकी भी जाना पड़े
जाऊँगा
बन्धु ! जाऊँगा
सीता को लाऊँगा
अपने पुरुषार्थ से
विश्वासों
अपने बन्धु मित्रों से
पौरुष को । " 2

" प्रवादपर्व " में लक्ष्मण एक अहं ग्रस्त व्यक्ति के रूप में आते हैं । सीता के प्रति लगाए गए कलंक से लक्ष्मण क्रोधित हो उठता है । वह नहीं

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. 15
2 वही : पृ. 18

चाहते कि कोई साधारण व्यक्ति अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के अर्थ पर राज्य और राष्ट्र गरिमा के शीर्षतम व्यक्तियों के चरित्र मर्यादा पर शंका उठाये अतः लक्ष्मण एक साधारण जन की तर्जनी को मूल्यहीन मानते हैं :

" इस अनुत्तर दायित्वपूर्ण आचरण की
उपेक्षा की जानी चाहिए
क्योंकि
यह न केवल अशोभनीय है
यह न केवल अन्यायपूर्ण है
यह न केवल असम्मानजनक है
बल्कि
यह एक विश्वासपूर्ण विद्रोह है
यह एक सुनियोजित अभिव्यक्ति है । " •

" उर्वशी " में पुरूरवा प्रतिष्ठानपुर का प्रतापी विक्रमी सम्राट था । उसने एक बार दानव द्वारा अपहृत उर्वशी को अपने बाहुबल से मुक्त कराया था । उर्वशी देवलोक और पुरूरवा मृत्युलोक चले गये थे परन्तु उर्वशी पुरूरवा के मन में घर कर चुकी थी । नीति-कुशल पुरूरवा अहं के दबाव को सहता हुआ उर्वशी का चित्र अपने नयनों में अंकित किए रहता है :

" एक मूर्ति में सिमट गई किस्तृष्टियां सारी
कब था ज्ञान मुझे इतनी सुन्दर होती है नारी? "2

• नरेश मेहता : प्रवादपर्व : पृ. 91
2 दिनकर : उर्वशी : पृ. 24

प्रत्यक्ष इच्छापूर्ति के मार्ग में नीति, इस नैतिकता के अहं ने उसका एक मध्यम मार्ग निर्मित किया :

> " दर्पण जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है
> वह सौन्दर्य कला जिसका सपना देखा करती है
> नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवनकी,
> रूप नहीं निष्कलुष कल्पना है स्त्रष्टा के मन की । " *

पुरूरवा उर्वशी संवाद में पुरूरवा का अहं बोलता है जो उसके सद्विवेक का प्रभाव है । हरण और भिक्षाटन को वह अयसमूल विकर्म कहता है।यह प्राणी की प्रवृत्ति नहीं है । इस प्रकार के विचार उसके सुसंस्कृत होने के प्रमाण है । वह नारी अपहरण को तथा भिक्षाटन को मानवीय विकृति { विकर्म } कहता है । पुरूरवा को अपने मित्र देवों की शांति एवं शीतलता का स्व के कष्ट से अधिक महत्व प्रतीत होता है :

> " अयशमूल दोनों विकर्म है हरण हो कि भिक्षाटन
> और हरण करता मैं किसका? उस सौन्दर्य सुधा का
> जो देवों की शांति, इन्द्र के दृग की शीतलता थी । " [2]

पुरूरवा की सांस्कृतिक चेतना, जो उसके अन्तर्यहं का सद्-विवेक है, निरन्तर नाक ऊँची उठाए चलती है । उसी सद् विवेक को प्रस्तुत करते हुए मानवीय वैशिष्ट्य का कथन करता है जो वस्तुत: उसीके भीतर का संकेत है :

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 24
2 वही : पृ. 44

" मैं मनुष्य कामना वायु मेरे भीतर बहती है
कभी मन्द गति से प्राणों में सिहरन पुलक जगाकर
कभी डालियों को मरोड़ झंझा की दारुण गति से
मन का दीपक बुझा, बना तिमिराच्छन्न हृदय को । "[1]

इन पंक्तियों में पुरूरवा की प्रकृति का कथन है । उसमें कामना उद्वेलित प्राणी है । किन्तु सांस्कृतिक साथ ही सांस्कृतिक प्राणी भी है ।

" किन्तु पुरुष क्या कभी मानता है तम के शासन को ?
फिर होता संघर्ष, तिमिर में दीपक फिर जलते हैं । "[2]

पुरूरवा की कामनाएं, उसकी सांस्कृतिक चेतना में निरन्तर संघर्ष चलता है । पुरूरवा को अपने पौरुष पर बड़ा भरोसा है, इसीलिए वह " दीपक जलाने " की बात कहता है । इससे भी आगे बढ़कर मन को स्थिर [illegible] करता है :

" पुण्डरीक के सदृश्य, मृत्तिका ही जिसका जीवन है
पर, तब भी रहता अलिप्त जो सलिल और कर्दम से । "[3]

पुरूरवा की दृष्टि में प्रणय पवित्र नहीं हुआ करता जब तक कि पुरुष में " स्थित प्रज्ञता " का उदय होकर उसके प्रणय का स्पर्श नहीं कर लेता । लोकपक्ष और सांस्कृतिक दबाव के कारण उसका साहस और पौरुष दोनों तटस्थ है । उसका अहं आध्यात्म और पौरुष

---

1 दिनकर : उर्वशी : पृ. 44
2 दिनकर : उर्वशी : पृ. 44
3 वही : पृ. 44

दोनों के आवरण के नीचे कामाध्यात्म का सर्जन करने की छूट देता है । कामोपभोग में पुरूरवा अपने [Superego] को नहीं पहचानता था, पर कामोदीप्ति में वह उसकी तीव्र तृषा और वेदना को समझ रहा था । इसीको संभवत: आध्यात्मिक प्रकृति का नाम दिया जाता है इसीलिए अनासक्त निर्लिप्त जैसे विशेषणों का प्रयोग भी किया जाता है । उसके अन्तर्द्वन्द्व का स्वरूप यह है :

" आग है कोई, नहीं जो शांत होती
और खुलकर खेलने से भी निरन्तर भींगती है । " *

पुरूरवा को यही अहं का संघर्ष जो उसके अचेतन स्तर पर चंचल बना उबलता रहता है और चेतना के धरातल पर आने के लिए प्रयत्नशील रहता है ।

3.6. व्युत्पन्न तथा मिश्र भावनाओं की व्यंजना : ....

3.6.1 विश्वास :

कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो लक्ष्य प्राप्ति को बाह्य घटनाओं तथा स्वचलित प्रक्रियाओं पर छोड़ देते हैं । मेक्डूगल के अनुसार - " व्यक्ति लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग पर पूर्ण आवेग के साथ बढ़ता है । " 2 समकालीन नाट्य काव्यों में विश्वास का चित्रण कुछ विरल हुआ है ।

" संशय की एक रात " में लक्ष्मण निरन्तर कर्मरत रहने में विश्वास रखते हैं और कहते हैं :

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 46
2 विलियम मेक्डूगल : सोशल साइकोलोजी : पृ. 170

" चलने पर
संभव है
तीर्थ मिले
कीर्ति मिले
चामर की छाँह मिले
संभव है—पसली में बाण फंसे । "
प्यासे ही दम तोड़े
चीलों से
आखिर तक
युद्ध करें जीवन हित । " *

" प्रवादपर्व " में सीता लक्ष्य प्राप्ति को बाह्य घटनाओं द्वारा स्वचालित प्रक्रियाओं पर छोड़ देती है । वे वनवास, पंचवटी, अशोक-वाटिका और मातृत्व इन सबको जिन्दगी के पड़ाव समझती है । उन्हें इस बात का विश्वास है कि राजभवनों में व्यक्ति नहीं, इतिहास पुरुष चला करता है और मार्गों में यज्ञों का रक्षक :

" वह वनवास
वह पंचवटी
वह अशोकवाटिका की प्रतीक्षा
वह युद्ध
वह साम्राज्ञी स्वरूप
मेरा आज का
यह आसन्न मातृत्व
सब मात्र पड़ाव है
यह नहीं लगता कि

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. 15

ये सारी घटनाएं
ये प्रसंग
हमारे दाम्पत्य जीवन के अविभाज्य अंग थे
बल्कि
किसी प्राचीन उपाख्यान के क्रमते हैं
जिनका हमें स्मरण है । " *

" एक पुरुष और " में मेनका यह विश्वास करती है कि सत्य को मानने के लिए कई बार गुनाहों के कोटरों से गुजरना पड़ता है । और रक्त को शरीर बताने से पहले अनेक प्रकार के प्रहार झेलने पड़ते हैं । सीधे रास्तों पर चलकर जिया भी जा सकता है और उन पर भवन भी खड़े किये जा सकते हैं, लेकिन गलते हुए हाथों से पत्थर उठाना और उन्हें अज्ञेय दिशाओं में फेंक देना, सचमुच कठिन ही नहीं सुख मिश्रित आनन्द की प्राप्ति भी है । उत्तेजना सारे सम्बन्धों को धूमिल कर देती है । आदर्श और परम्पराएँ- युग - सापेक्ष रहकर भी जीवित रह सकती है । सृजन-प्रक्रिया प्रवंचना ही नहीं वन्दना का विषय है क्यों सृजन की कोई प्रक्रिया अवैध नहीं होती । " एक पुरुष और " की मेनका गर्व के साथ उपर्युक्त विचारों को प्रस्तुत करती है और साथ ही व्यवस्था के ठेकेदारों से पूछती है :

" आखिर क्या दे सकते हैं हमें
महान ग्रंथ
मात्र रिरियाते हुए जीवन की प्रक्रिया
क्या दे सकते हैं किसी को --
महत्तम आदर्श

---

* विलियम मेक्डूगल : सोशल साइकोलाजी : पृ. 170
1* नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृ. 75

केवल अपना दम घोंट कर
जीने की आदत
यह सोचना गलत है कि
जीवन में कुछ अवैध होता है
अवैध होता है मात्र कोई अस्वीकृत
या कोई आत्महन्ता क्षण
सृजन की कोई प्रक्रिया
अवैध नहीं होती । " *

मेनका का विश्वास है कि बंधे बंधाये नियमों में बंधकर कुत्ते, बैल और भेड़ों का समूह तो चल सकता है लेकिन आदमी नहीं क्योंकि आदमी अपने वक्त से हमेशा आगे रहता है और जो वक्त से आगे रहता है उसके लिए कोई नियम नहीं होते । समाज नियमों का नियामक होता है । लेकिन सामाजिक नियम परम्पराएं और मान्यताएं यदि व्यक्ति की प्रगति में बाधक होती है तो हर युग में एक और पुरुष जन्म लेता है और साथ ही एक और नारी जन्म लेती है जो निर्भीकता के साथ कहती है :

" लेकिन - आज मैं हर्ष के साथ
उद्घोषित करती हूं कि मैं नारी हूं
स्मृतियों के उपदेश तुम्हारे लिए नहीं
मेरे लिये है ... ...
लेकिन मैं जला देना चाहती हूं तमाम
ग्रंथों को
जो षड्यंत्रों की उपज है

---

* डा. विनय : एक पुरुष और : पृ. 122

जिन्हें पुरुष ने मिलकर आकार दिये ब
पूत मंत्रों और श्लोकों में " •

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर इस बात में विश्वास करते हैं कि समाज राज्य के नियमों पर नहीं बल्कि धर्म के नियमों पर आधारित है । अतः राज्य पर अंकुश बने रहने के लिए धर्म और विचार को स्वतंत्र रहने देना उचित समझते हैं :

" राज्य के नहीं
धर्म के नियमों पर समाज आधारित है
राज्य पर अंकुश बने रहने के लिए
धर्म और विचार को
स्वतंत्र रहने दो पार्थ
अन्यथा यह समाज
रहने के योग्य नहीं रह जायगा । " 2

एक कंठ विषपायी में विष्णु सर्वहत की दीन नियति को देखकर उसे युद्धोपरांत उग आई संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का भग्न स्तूप मानते हैं । उनकी दृष्टि में वह एक मरणासन्न लौकिक परम्परा की विकृति का फल है । विष्णु के विचार से दक्ष ने यज्ञ के बहाने से युद्ध का ही आयोजन किया था :

" कृति यह नहीं है
एक विकृति का फल है

• डा. विनय, एक पुरुष और : पृ. 1234,8 124
2 नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृ. 110

एक ऐसी मरणासन्न लौकिक परम्परा का
जिसे जीवित रखने के लिए
प्रजापति दक्ष ने
युद्ध नहीं
युद्ध का आयोजन किया था । " *

" सूर्य पुत्र " में दुर्योधन के प्रेम पर दृढ़ आस्था रखता हुआ कर्ण अपनी दिव्य आस्था प्रकट करता है :

" मैं जीत सकता हूँ समस्त ब्रह्माण्ड को
केवल पाँच दिन में
पांडु के पाँचों पुत्र हो सकते हैं विजित
मात्र एक दिन में । " 2

सुकुमार कर्ण को धनुष बाण चलाते देख परशुराम चकित से खड़े हो जाते हैं । कर्ण की एकाग्रता, अनन्य, अंग संचालन देखकर ब्रह्मर्षि को विश्वास हो जाता है कि कर्ण स्वयं सूर्यांश है :

" अपूर्व बलशाली है
बनेगा स्वामी किसी अजेय भूमि खंड का
करेगा नायकत्व
दुर्धर समर में
किसी विराट सेना का । " 3

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. 56
2 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 40
3 वही : पृ. 39

कर्ण के शौर्य को देखकर परशुराम विश्वास के साथ उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं -

" अपने आश्रम पर ले गये परशुराम
सिखाने युद्ध कला, बनाते अजेय वीर समर का महारथी ।" *

प्रिय मिलन की आकांक्षा से सूर्य में विश्वास जागृत होता है । जीवन के हरित कुंजों में गा रही कोयल के मधुर गीत सी आशा की लहरें उनमें जागृत होती हैं । कोयल की मोहक ध्वनि क्षणिक ही क्यों न हो फिर भी प्रिय के साथ सुख की अनुभूति उनमें आल्हाद का संदेश लेकर आती है -

" हरियाले कुंजों में कहीं दूर गा उठी कोयल
और हिण्डोले पर झूलती पृथा की देह
सावन की झड़ी सी बरसने लगी
सुख के सागर !" [2]

"सूर्यपुत्र" में कुन्ती में भी आशा भरा अन्तस्थल जीवन की पुकार से गूंजता हुआ द्वन्द्व की कामना से चंचल हो उठता है -

"तुमने मेरे वरदान को प्रेम में बदल दिया है
मेरी कर्म शक्ति जिसने शैशव के अल्हड़ क्षणों में
मुझे एक प्रेरणा दी थी
कुछ कर गुजरने की
उसमें यह खलबली घोल दी है तुमने

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 4।
2 - वही - पृ. 4

और मुझे खिलौने के राजमहल से उठाकर
विचारों के राजप्रासाद में कैद कर दिया है ।" *

उर्वशी अप्सरा है किन्तु उसमें प्रेम में वासना की गन्ध अधिक है । आवेग की स्थिति उसे ऐसे कल्पना लोक में विचरण करने के लिए विवश कर देती है । चित्रलेखा उसकी स्थिति को व्यक्त करती हुई कहती है -

" यही चाहती हूँ कि गन्ध को तन हो, उसे धर में
उड़ते हुए अदेह स्वप्न को बाँहों में जकड़ूँ मैं ।"2

कल्पित रूप से प्रिय मिलन उसे आश्वस्त कर देता है । प्रेम का यह आवेग उसे निरन्तर पूर्व स्मृतियों से सम्बद्ध किए रहता है अत:

" लगता है कोई शोणित में स्वर्णतरी खेता है
रह रह मुझे उठा अपनी बाँहों में भर लेता है
कौन देवता है, जो यों छिप छिपकर खेल रहा है
प्राणों में रस की अरूप माधुरी उँडेल रहा है ।"3

पुरुरवा भी उर्वशी की प्राप्ति के लिए बराबर विकल है । उर्वशी के विश्वास आहों से खिंचकर पुरुरवा स्वयमेव गंधमादन पर्वत पर चला आता है ।

---

*	जगदीश चतुर्वेदी	: सूर्यपुत्र	: पृ. 2
2	दिनकर	: उर्वशी	: पृ. 21
3	दिनकर	: उर्वशी	: पृ. 21

औशीनरी निर्भोग समर्पण का प्रतिरूप है सर्वस्व दान करने के बाद वह पुत्र प्राप्ति के लिए उद्विग्न है । पुरूरवा और उर्वशी के मिलन को वह सहज रूप से स्वीकार करती है । औशीनरी के प्रेम में काम की तृप्ति नहीं है उन्मयन है । यही स्थिति उसे विध्वस्त किए रहती है । औशीनरी आयु को प्राप्त कर प्रसन्न होती है ।

सुकन्या अपने पति को ही अपना आराध्य और अंतिम लक्ष्य मानती है । उसका समस्त जीवन आत्मदान और लोककल्याण के लिए है । इस रूप में एक अनुकूल गृहणी के रूप में वह महर्षि च्यवन की पत्नी है । वह निश्चल रूप से समर्पित एक प्रेयसी भी है । वह आतंकित प्रेम की पुजारिन है । अपने बाह्य सौन्दर्य के विषय में वह स्वयं जानती है स्वयं च्यवन की प्रशस्ति का कारण बनकर उन्हें नये सुख का अनुभव दिलाती है -

सबको लगा, मोहिनी सी मुझमें कुछ भरी हुई है
पर, यह सम्मोहन-तरंग आती है उमड़ जहाँ से,
भीतर के उस महासिन्धु तक किसको दृष्टि गयी थी
देखा उसे महर्षि च्यवन ने और सुप्त महिमा को
जगा दिया आयास मुक्त, निश्चल प्रशस्ति गाकर
"हरि प्रसन्न यदि नहीं", सिद्धि बनकर तुम क्यों आयी?
लगा मुझे सर्वत्र देह की पपरी छूट रही है,
निकल रही है त्वचा तोड़कर, दीपित, नयी त्वचाएं ।"*

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 109

सुकन्या कर्तव्य निष्ठ है उसके हृदय में व्यक्ति के प्रति प्रेम भरा हुआ है तभी तो उर्वशी की विवशता जानते ही उसके पुत्र के लालन-पालन का भार अपने ऊपर ले लेती है साथ ही उसको यह पूर्ण विश्वास है कि वह आयु को सुयोग्य राजकुमार बनाने में समर्थ हो सकती है -

"शस्त्र शास्त्र निष्णात, अंग से बली, विभासित मन से
जब अपना आयु पूर्ण कैशोर्य को प्राप्त कर लेगा
पहुंचा दूंगी स्वयं इसे ले जाकर राज भवन में ।" *

"इला और अमिताभ" में अमिताभ प्रसिद्ध दार्शनिक है इनासे उसकी भेंट होने पर इला में उसके प्रति आसक्ति जागृत होती है । इला के प्रेममें वासना की गन्ध नहीं है । इसीलिए वह अमिताभ की कीर्ति का अनुकरण करते हुए आश्वस्त रहती है और नूतन सुख का अनुभव करती है -

"मीत मेरे, अपनी प्रशस्ति किसे भाती नहीं
रूप का बखान, सो भी प्रेमिका के प्रिय मुख से,
अटल प्रेम के वादे बांचती हूं मैं सुख से
प्रतिभा का देख नया रसमय उन्मेष यह
मैं मन में फूली समाती नहीं ।"[2]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 225

2 डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 25

3.6.2 अभिलाषा :

कुछ व्यक्तियों में बाधाओं के समाप्त होने पर उनमें लक्ष्य प्राप्ति की संभावना प्रतीत होती है । मैक्डूगल के अनुसार इसमें बाधाओं के कारण असफलता की संभावना लक्ष्य पर मानव के ध्यान को अधिकाधिक एकाग्र करती हुई उसके प्रयत्नों को तीव्र करती है और शक्तियों के अनावश्यक अपव्यय से उसे रोकती है ।" * समकालीन नाट्य-काव्यों में आशा का चित्रण यथेष्ट परिमाण में हुआ है ।

"संशय की एक रात" में एक बाधा के समाप्त होने पर आशा की किरण जागती है । मंत्री परिषद का निर्णय युद्ध के पक्ष में होता है जिसे राम स्वीकार करते हैं और संशय ग्रस्तता को त्यागकर उनका ध्यान युद्ध की ओर आकर्षित हो जाता है । युद्ध को आवश्यक जानकर राम सूर्योदय को वरण करने को आतुर रहते हैं । अब वे इस बात पर भी विचार नहीं करते कि युद्ध के बाद शांति होगी या युद्ध का उत्तर केवल युद्ध ही होगा ।

" अब यह प्रश्न नहीं रहा कि
युद्ध के बाद होगी
शान्ति ।" ¹

"जब कि संभव है
युद्ध ही युद्ध का उत्तर हो ।
या यह भी संभव है कि
शान्ति

---

* विलियम मैक्डूगल : सोशल साइकोलाजी :
पृ. 368-69

युद्ध के सत्य की एक चेष्टा हो ।
ओ मेरे विवेक ।
मुझसे मत प्रश्न करो
संशय की बेला अब नहीं रही ।
अन्तरीप जल में
सूर्योदय साक्षी है
संशय की बेला अब नहीं रही
अब मैं केवल
प्रतीक्षा हूँ
कवचित [redacted] कर्म हूँ
प्रतिश्रुत युद्ध हूँ ।" *

"शम्बूक" में नारद की मंत्रणा से चिन्तित राम में आशा की एक लहर दौड़ जाती है उनके कार्यों में गतिशीलता आ जाती है । और वह अकेले ही शूद्र मुनि की खोज करने का निश्चय करते हैं भले ही कितने रोज क्यों न लग जाए किन्तु सेवक, सचिव को साथ ले जाना उन्हें स्वीकार नहीं -

" राम ने निश्चय किया यह
वे अकेले ही करेंगे
शूद्र मुनि की खोज
सचिव, सेवक
साथ में कोई न होंगे
भले ही लग जाय
कितने रोज ।"2

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. 83
2 जगदीश गुप्त : शम्बूक : पृ. 14

"आत्मजयी" में नचिकेता अचेतावस्था में स्वयं को जल में डूबा हुआ पाता है किन्तु निराशा की चरम अवस्था तक आते-आते उसमें एक आशा की एक किरण उदित होती सी प्रतीत होती है । वह स्वयं को प्लावनकारी जल का आतंक पछेड़ता सा बाहर निकला हुआ पाता है साथ ही तट पर उसे एक टूटा-फूटा मन्दिर भी दृष्टिगोचर होता है जिसके भीतर से स्थित प्रतिमा से एक अप्रतिम प्रकाश आता रहा होता है -

"सहसा आशा की एक किरण पकड़कर
प्लावनकारी जल का आतंक पछेड़ता सा
बाहर निकला, कुछ दूरी पर
छोटा सा द्वीप - गरजती लहरों से लगता ।
तट पर दीखा नचिकेता को
कोई टूटा-फूटा मन्दिर,
अन्दर प्रतिमा-सी दिव्य
- एक तारा जैसे अँधियारे में
देता प्रकाश धीमा धीमा ।" *

नचिकेता प्रतिभा से प्रस्फुटित तेज से स्वयं को बंधा हुआ पाता है और इसी दिशा में आगे बढ़ता जाता है -

"पा नयी शक्ति
नचिकेता बरबस पढ़ा उधर,
लेकिन उससे भी तेजी से जल बढ़ता था ।
प्रतिमा से आती रही किन्तु

---

* कुंवरनारायण : आत्मजयी : पृ. 2।

वह क्षीण किरण
प्रतिक्षण
मानो भय बीच विसंगत करुणा से
रेखांकित करती हुई मरण ।
नीचे जल पर कांपती रही
उसकी लथपथ पीली छाया,
पर उसी एक इंगित से मानो बंधा हुआ
नचिकेता मन्दिर के नीचे तक नहीं आया ।" *

"एक पुरुष और" में विश्वामित्र को मेनका एक बाधा के सदृश्य प्रतीत होती है उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में सन्देह दिखाई देने लगता है किन्तु ध्यान को एकाग्र करके जब वे इस बात पर विचार करते हैं तो उनके सामने मेनका की उपस्थिति एक नया रूप अनुभव देता है और मेनका को भोगकर विश्वामित्र समाज के लिए हो जाने के लिए आतुर प्रतीत होते हैं -

"क्योंकि मैं तपके सम्पूर्ण संचय को
तुम्हारी आत्मा में उतार दूंगा
तुम्हारे आने से मेरी साधना की एकान्तता
केवल अपने लिए न होकर
एक पूरे युग को अर्पित होगी ।"2

---

* कुंवरनारायण : आत्मजयी : पृ. 22
2 डा. विनय : एक पुरुष और : पृ. 119

"उर्वशी" अप्सरा है वह जानती है कि अप्सराओं का जन्म इसलिए नहीं होता कि किसी एक की होकर रहें उसे तो रचना की वेदना जगा, जग में उमंग भरना है तथा कभी देवता की ओर आकर्षित और कभी व्यक्ति का आलिंगन करना है उसका आवास असंख्य व्यक्तियों की चाहों में हैं, फिर किसी नर को समर्पित होकर कैसे रह सकती है ।

कौन लोक, कौंधती नहीं द्युतिदिनी जहाँ पर?
कौन मेघ, जिसको न सेज मैं अपना बना चुकी हूँ ।" *

परिस्थितिवश पुरूरवा की उर्वशी को प्राप्त करने में असमर्थ है क्योंकि पुरूरवा शीलवान पुरूष है । उर्वशी के रूप पर मोहित हो जाने पर भूख, निद्रा को भूल सकता है पर उसे प्राप्त करने के लिए समर्थ होते हुए भी देवलोक नहीं जाना चाहता है । उसमें शक्ति है, किन्तु वह साम्राज्य विस्तार का विरोधी है -

" नहीं बढ़ाया हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर
न तो किया संघर्ष कभी पर की वसुधा हरने को,
तभी तो प्रतिष्ठानपुर वन्दित है सहस्त्र मुकुटों से
और राज्य सीमा दिन-दिन विस्तृत होती जाती है ।"[2]

दिनकर जी ने अभिलाषा का चित्रण प्रेम क्षेत्र में मुख्यत: किया है प्रेम छिपाये छिपता नहीं है उर्वशी की सखियों द्वारा

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 90

2 दिनकर : उर्वशी : पृ. 14

दोनों के वियोग का परिचय मिलता है -

"सखी उर्वशी भी कुछ दिन से खोयी-खोयी सी
तन से जगी, स्वप्न के कुंज में मन से सोयीसी ।
खड़ी खड़ी अनमनी तोड़ती हुई कुसुम पंखुड़ियाँ
किसी ध्यान में पड़ा गंवा देती घड़ियों पर घड़ियाँ
दृग से झरते अश्रु का ज्ञान नहीं होता है
आया गया कौन, इसका कुछ ध्यान नहीं होता है ।" *

चित्रलेखा राजा पुरुरवा की मिलनोत्कण्ठा को व्यक्त करती है यथा -

" मेरी मर्म पुकार मोहिनी । वृथा नहीं जायेगी
आज न तो कल तुझे इन्द्रपुर में वह तड़पायेगी
और वही लायेगी नीचे उतार तुझे गगन से
या फिर छोड़ मैं ही मिलने आऊँगा मन से ।"[2]

प्रेम स्वयं में व्यापक, विराट एवं शक्तिशाली अनुभूति है । इसके जागृत होते ही परमानन्द की अनुभूति हो जाती है । प्रेम की उदात्त अनुभूति के कारण जीवन के व प्रकृति के समस्त रहस्य स्वयमेव उद्घाटित हो जाते हैं । मानवीय प्रेम बड़ा ही महान और आकर्षक होता है । उर्वशी पुरुरवा के प्रेम को प्राप्त करने के लिए अकुलाने लगती है । स्वर्गलोक को छोड़ने के उपरान्त सहज मानवीय भाव उसमें जागृत हो जाते हैं । और वह स्वयं वेदना में छटपटाने लगती है -

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 25
2 दिनकर : उर्वशी : पृ. 25

किन्तु हाय, जब तुम्हें देख मैं सुरपुर को लौटी थी
यही काल अजगर – समान प्राणों पर बैठ गया था ।
उदित सूर्य नभ से जाने का नाम नहीं लेता था,
कल्प बिता ले बिना न हटती थीं वे काल निशाएं ।
काम द्रुम – तल पड़ी तड़पती रही तप्त फूलों पर;
पर, तुम आये नहीं कभी छिपकर भी सुधि लेने को ।" *

उर्वशी का हृदय प्रेमासिक्त है किन्तु सब कुछ भूलकर प्रेमी के अनवरत आलिंगन चुम्बन, दर्शन, स्पर्श की अभिलाषिणी है और पुरूरवा में भी उर्वशी से मिलने की उतनी ही आकुलता है अत: गन्धमादन पर्वत पर पुरूरवा और उर्वशी का सम्मिलन होता है । पुरूरवा भी एक भावुक प्रेमी है वह उर्वशी पर इतना आसक्त होता है कि –

"जिधर जिधर उर्वशी घूमती देव उधर चलते है
तनिक श्रान्त यदि हुई व्यंजन पल्लव से झलते हैं ।"[2]

पुरूरवा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से मिलनेवाले सुखों से उद्वेलित मनुष्य है इसीलिए वह सोचता है –

"रूप की आराधना का मार्ग
आलिंगन नहीं तो और क्या है
स्नेह का सौन्दर्य का उपहार
रस-चुम्बन नहीं तो क्या है?"[3]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ.43 2 – वही – पृ.32
3 – वही – पृ.47

उर्वशी को प्राप्त करने पर पुरूरवा अपना निवेदन प्रस्तुत करता हुआ कहता है -

" एक ही आशा, मरूस्थल की विजन में
ओ सजल कादम्बिनी सिर पर तुम्हारी छाँह है ।
एक ही सुख है, उर स्थल से लगा है
ग्रीव के नीचे तुम्हारी बाँह है ।" *

पुरूरवा का आशा भरा अन्तःस्तल जीवन की पुकार से गूँजता हुआ द्वन्द्व की कामना से चंचल तो है किन्तु पुरूरवा उर्वशी को प्राप्त करके भी आशान्वित नहीं होता दूसरे ही क्षण वह सोचता है -

"दृष्टि का जो पेय है वह रक्त का भोजन नहीं है
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है ।" [2]

व्यक्ति सुख की कामना भी करता है और उससे आगे निकलने का प्रयास भी । नारी नर को छूकर इक तृप्त नहीं और न नर नारी के आलिंगन में सन्तोष मानता है कोई शक्ति है जो नारी को नर तथा नर को नारी से अलग रहने नहीं देती और जब वे मिल जाते हैं तब भी उनके भीतर किसी तृषा का संचार होता है जिसको तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध है - इन्द्रियों के

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ॰ 47

2 - वही - पृ॰ 47

मार्ग से अतीन्द्रिय धरातल का स्पर्श यही प्रेम की आध्यात्मिक महिमा है पुरूरवा कहता है -

" रक्त की उत्तप्त लहरों की परिधि के पार
कोई सत्य हो तो
चाहता हूँ, भेद उसका जान लूँ
पथ हो सौन्दर्य की आराधना का व्योम में यदि
शून्य की उस रेख को पहचान लूँ ।" *

उर्वशी का हृदय प्रेमासिक्त है पर अपने प्रेमी में ईश्वर का रूप दिखाई देता है । पुरूष प्रकृति को वह अद्वैत भाव से निहारती है प्रकृति का कण-कण उसे प्रेम का संदेश देता हुआ दिखाई देता है -

" प्रकृति नित्य आनन्दमयी है जब भी भूल स्वयं को
हम निसर्ग के किसी रूप (नारी या फूलों) से,
एक तान होकर खो जाते हैं समाधि निस्तल में
खुल जाता है कमल, धार अश्रु की बहने लगती है
दैहिक जग को छोड़ कहीं हम और कहीं पहुँच जाते
मानो मायावरण एक क्षण मन से उतर गया हो ।"[2]

निराशा के अन्धकार से उदित होती हुई पुरूरवा-उर्वशी की अभिलाषा मानव के अन्तर और बाह्य को अपने मधुर आलोक से मण्डित कर देती है ।

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 83
2 - वही - पृ. 83

इला और अमिताभ में डा. देवराज का तादात्म्य नायिका के संवेदनशील व्यक्तित्व के साथ रहा है ।

सोलह-सत्रह वर्ष की इला से भेंट होते ही उन दोनों के मन में प्रेम उत्पन्न होता है । असाधारण प्रतिभाशालिनी होने के कारण वह इस छोटी अवस्था में चर्चा का विषय बन जाती है लेकिन प्रेम को लेकर दोनों में मन में सहजात दुर्बलता है इला उसकी विद्वता को और उज्ज्वल रूप देने के लिए इला के चाचा ने, जो उसका कानूनी अभिभावक है अमिताभ से प्रार्थना करता है कि वह दर्शन के बीहड़ क्षेत्र से उसकी भतीजी का पथ प्रदर्शन करें । अमिताभ यह स्वीकार कर लेता है । अमिताभ शिक्षक के रूप में इला के पास आने जाने लगता है । इला के अखण्डित समर्पण भाव के कारण अमिताभ उसे भीतर से प्यार करने लगता है । इला उसकी प्रस्तुति इस ढंग से करती है -

" यह तुम क्या करने लगे हो
दर्शन की पोथियाँ, प्रश्नों से मोड़ मुंह
लेखनी की तुली से
रूप कथा प्रीति - व्यथा के कम परचे
नये रंग भरने लगे ।" *

इला में प्रेम की आशा है । प्रख्यात मनीषी अमिताभ से सम्पर्क होते ही उसकी भावुकता जागृत होती है वह प्रकम्प, पुलक आदि सुखों का अनुभव करती हुई कहती है -

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 13

" युग के विख्यात वाग्मी, दार्शनिक मनीषी ।
जब से तुम्हारी दीप्त छाँह पड़ी
मेरी यह मुद्रित प्रज्ञा पली
निराबाध खुली, खिली विकसी ।
कैसे दूं धन्यवाद
देख सुन अपूर्व तुम्हें सूत्रकार ऋषि प्राक्तन
आ जाते याद
प्रतिभा का प्रखर सूर्य ज्ञान रश्मियाँ अपनी
सारी बटोर, संजों तमा छन्न चिति के झरोखोसे
झांक रहा, औ री सावधान हो
अद्भुत प्रकम्प पुलक
मूर्तिमान दर्शन का चिन्तन के तेज का ।" *

इला का प्रेम सम्पूर्ण रूप से अबाधित है अत: अमिताभ के प्रेम को अद्वैत भाव से निहारती हुई स्वयं भी अभिलषित होती है -

" वय मेरी दो कम बीस और" तुम चालीस
पर इससे क्या?
देखते नहीं हो - कितनी तेज से
मन मेरा, चित्त मेरा, वपु मेरा बढ़ रहा ।
प्रिय, मेरी बुद्धि नहीं तुमसे बूझने को, तर्कों से जूझने
को, शक्ति मेरी बढ़ रही दिन दूनी ।
अंग-अंग मेरे विकास-प्रवण
लाड़भरी चावभरी प्रियतम की प्रणय केलि

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 16

वृत्तियों का कर रहे मूक मधुर आवाहन ।
तेरे ही लिए मीत । तन मन की बुद्धि की
सारी ये सम्पदाएं
आँखों का नीहार सकल, प्राणों की घोर सारी
शोणित, वासनाएं ।" *

3.6.3 निराशा :

आलोच्य नाट्य-काव्यों में कुछ पात्रों में साधनों की अनुपयुक्तता पर सोचने से निराशा की उत्पत्ति हुई है । निराशा के जागृत होने पर इन पात्रों का साहस गिरता है । निराशा के अत्यधिक बढ़ जाने पर कुछ पात्र निष्क्रिय हो दुष्परिणाम की प्रतीक्षा करते हैं ।

मैकडूगल के अनुसार " निराशा असफलता से उत्पन्न संवेदना है । " [2]

" संशय की एक रात " युद्ध की अनुपयुक्तता को सोचकर राम निराश हो जाते हैं । युद्ध के दौरान नर-संहार के प्रति वितृष्णा से भर उठते हैं वे ऐसी विजय को नहीं चाहते हैं । जिसमें भीषण नरसंहार हो :

" धनुष बाण खड्ग और शिरस्त्राण
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
बाण बिद्ध पारवीसा बिलखता
साम्राज्य नहीं चाहिए

---

* डा. देवराज, इला और अमिताभ : पृ.:10
2. विलियम मैकडूगल : सोशल साइकोलाजी : पृ.:371-75

मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए ।
सीता भी नहीं ।" *

"अग्निलोक" में सीता अपने अस्तित्व की निरर्थकता को सोचकर निराश हो जाती है । वह जान जाती है कि भार्या केवल पुत्र प्राप्ति के लिए की जाती है । राम को एक-एक छोड़ कर दो आधार मिल गये इसलिए वह स्वयं को व्यर्थ समझती है :

"मैं तो उनके लिए अब केवल धर्म संकट हूँ
अब मेरा यहाँ क्या काम है "[2]

सीता में इतनी निराशा बढ़ जाती है कि वह आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है:

"अब मुझे अपने अस्तित्व का एक-एक पल
नरक भोग लगता है
इस विशाल विश्व में अब मुझे कहीं ठौर नहीं है ।"[3]

"एक कंठ विषपायी" में पार्वती प्रजापति दक्ष द्वारा आयोजित यज्ञ में अपने पति का स्थान न देखकर उनकी अनुपस्थिति का कारण जान जाती है और अपने पिता के द्वारा शिव के प्रति कहे गये मान हानि पूर्ण अशुभ वाक्यों के पाप से निवृत्ति हेतु वह भस्म हो जाती है :

---

*- भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक : पृ : -54

1 *- नरेश मेहता, संशय की एक रात : पृ.:32

3. भारत भूषण अग्रवाल : अग्निलोक : पृ. 54

" सहज योग धारण
नाभिचक्र से सयत्न
प्राण अपान वायु को समान कर
उदान को उठाकर
तन का लौकिक प्रकार भस्म कर दिया सती ने।"*

"आत्मजयी" में नचिकेता आपने पिता वाजश्रवा को जब बूढ़ी गायों को दान में देते हुए देखता है तो निराश हो जाता है और निराशा की स्थिति में वह सोचता है कि यह दान है या पाखण्ड :

" यह दान, या अज्ञात बधिकों से कोई अशुभ समझ बैठा
पिता,
ये सब कैसे संकेत है, जो आश्वस्त नहीं करते -
ये कैसी स्तुतियां है जिनसे
पाखण्ड की गन्ध आती है ।"2

पिता के अनुष्ठान के बीच "एक टेढ़े सवाल सा" नचिकेता उठ खड़ा होता है जिन परिस्थिति में वह जिंदा है, उन्हें समझना चाहता है और पिता से कहता है :

" मुझे भी त्याग
मुझसे बेहतर कुछ मांगो ।"3

---

* दुष्यंतकुमार : एक कण्ठ विषपायी : पृ. 45

2. कुंवरनारायण : आत्मजयी : पृ. : 6

3. कुंवर नारायण : आत्मजयी : पृ. 13

4. कुंवर नारायण : आत्मजयी : पृ. :17

नचिकेता का बार-बार आग्रह करना वाजश्रवा के क्रोध को भड़का देता है । विषाद के चरम क्षण में नचिकेता वह वाग्र वाक्य सुनता है " मृत्यवे त्वा ददामि ।"

निराशा के इस एकाकी क्षण में नचिकेता "आत्मा को व्यय करके रीत जाने" के बोझिल एहसास से ग्रस्त हो उठता है । विश्वासी आँखों में मिथ्या सपने बिखर जाने के बाद नचिकेता को भान होता है जैसे रिक्त राहों की बाहें बुलाती हो :

"लक्ष्य नहीं-साधन पहुंचने के
प्रेरक है गति के संकेत-
रिक्त राहों की बाहें बुलाती है ।"*

"उर्वशी" में लग्न महत्त्वपूर्ण रूप में दिखाई देती है । समय में वह अपनी समस्त इच्छाओं और आकांक्षाओं को पूर्ति कर सकती है । तपस्वी का संचित तप, ज्ञानी का ज्ञान, मानशील का मान, गर्वीलि का गर्व और अभिमान सभी कुछ नारी के चरणों में भेंट हो जाता है । परिरंभ पाश में बंधे हुए प्रेमी को वायवीय लोक में प्रविष्ट विचरण करते देख उर्वशी पुरूरवा को टोकती है कि दृढ़ आलिंगन में कसे पुरूरवा मन से किन्तु विचक्षण दूर तुम कहाँ चले जाते हो तो ऐसी स्थिति में उसे निराशा की प्राप्ति होती है। धरती पर आकर उसने अनुभव किया पुरूरवा एक जटिल व्यक्तित्त्व है पुरूरवा से जिस उन्मुक्त रमण का विचार लेकर वह स्वर्ग से धरती पर आई थी, उसकी पूर्ति में बाधा प्रतीत होने लगी, द्विधाग्रस्त उर्वशी कामानन्द को न

---

* कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृष्ठ : 17

झुककर भोग सकती है न किसी के भोगने में सहायक बन सकती है । उसने पुरुरवा को अन्तर्द्वन्द्व में फँसा हुआ पाकर निराशा का अनुभव किया कामोद्दीप्त उसकी तीव्र तृषा और वेदना को पुरुरवा समझ रहा था सत्ता, शासन और अधिकार की प्राप्ति और सर्वोपरि बन पाने की आदिम भावना सहज सशक्त होकर तादात्म्य की इस स्थिति [कामेच्छा] से वंचित करती है । अतः पुरुरवा की भी निराशाजनक स्थिति है ।

उर्वशी का उन्मुक्त नारी स्वभाव [जननी] अपने काम कौशल से पुरुरवा की चेतना के धरातल पर स्थित कर पुरुरवा की रुचि को अपने लिए प्रतिपादित करता है । उसने प्रस्तावित किया कि भोग के माध्यम से यश की ऊँचाइयों तक पहुँचा जा सकता है इसे निःस्वार्थ भाव से ग्रहण करना चाहिए इसी धारणा से काम और यश दोनों की प्राप्ति सम्भव हो सकती है । नैराश्य पुरुरवा को उर्वशी बड़ी कौशलता के साथ लक्ष्य प्राप्ति की ओर इंगित करती है ।

औशीनरी अपने पति पुरुरवा को सर्वस्व समर्पण कर नैराश्य की स्थिति को प्राप्त होती है वह पुरुरवा की स्वेच्छाचारिता से अवगत है । अपने आचरणों से राजा को विमुग्ध करके, अतृप्त बनाये रखने में वह असफल सिद्ध होती है । इसलिए पुत्र कामना तो औशीनरी के लिये मृग मरीचिका ही सिद्ध होती है वह माता कभी नहीं बन पाती और न ही राजा के प्रेम को ही सम्पादित कर पाती है । इसके लिए वह चन्द्रायन व्रत भी करती है जब उर्वशी से अपनी तुलना करती है तब वह समझ पाती है कि उसमें और उर्वशी में क्या अन्तर है -

" गृहिणी जाती हार दाम सम्पूर्ण करके
जयिनी रहती बनी अप्सरा ललक पुरुष में भरके
पर, क्या जाने ललक जगाना नर में गृहिणी नारी
जीत गयी अप्सरा, सखी मैं रानी बनकर हारी ।" *

एक वर्ष पर्यन्त पुरुरवा उर्वशी के साथ गन्धमादन पर व्यतीत करता है और राजधानी लौटकर राज महिषी के साथ पुत्रेष्टि यज्ञ करता है वह यज्ञ एक वर्ष तक चलता रहता है और राजा विशिष्ट यज्ञिय जीवन यापन करता है । उर्वशी उसी काल में महर्षि च्यवन के आश्रम में "आयु" को जन्म देती है तथा एक वर्ष बाद लौटकर पुनः राजा के पास आ जाती है । यज्ञ अनुष्ठान का फल राजमहिषी औशीनरी को नहीं मिलता न ही पुरुरवा को मिलता है, क्योंकि यज्ञ से पूर्व उर्वशी के गर्भ में "आयु" आ चुका था । इससे भी औशीनरी में तनिक वेदना की अनुभूति हो जाती है । राजमाता औशीनरी की सबसे आकांक्षा पुत्र प्राप्ति है और औशीनरी लक्ष्य को प्राप्त कर प्रसन्न हो जाती है । औशीनरी अपना दुःख भूलकर आयु को पाकर सान्त्वना को प्राप्त होती है । "पिता गये बन अरे किन्तु, माता तो यहीं खड़ी है ।" [2] और अपने सुख और आनन्द को वह इस प्रकार व्यक्त करती है -

" किन्तु प्राप्त कर तुझे आज बस यही भान होता है
शस्य भार से मेरी सब डालियाँ झुकी जाती है

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 35

2 दिनकर : उर्वशी : पृ. 148

हाय पुत्र । मैं भी जीवन भर बहुत प्यासी थी ।
शीतल जल का पात्र अधर से पहले पहल लगा है ।*

माँ को बेटा और बेटे को माँ मिल गयी पुत्र प्राप्ति के बाद वह संतुलित अवस्था को प्राप्त होती है ।

उर्वशी एक अभिशाप्त अप्सरा है इसलिए पुरूरवा को प्राप्त करने में असमर्थ सिद्ध होती है । पुरूरवा को प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा हेतु वह अपने पुत्र आयु को सुकन्या को सौंप देती है आयु उसे बाधाजनक प्रतीत होता है किन्तु जब नैमीषेय यज्ञ में वह पुरूरवा को देखने के लिए जाती है तो स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर वह वेदना ग्रस्त हो जाती है क्योंकि उसका उद्देश्य मात्र, प्रकृत भाव से लीलामय की सहज, शान्त, आनन्दमयी धारा में प्रवाहित होते रहना है । नैमिषेय यज्ञ में आकर भी वह पुरूरवा को प्राप्त करने में असमर्थ होती है । अत: वह अदृश्य हो जाती है ।

पुरूरवा सनातन पुरूष है । उर्वशी के सौन्दर्य से वशीभूत होकर उससे संभोग के लिए तत्पर होता है किन्तु नैमिषेय यज्ञ के समय उर्वशी को अपने समक्ष यश की चाह, उर्वशी के त्याग पुत्र के प्रति दायित्व-हीनता निभाने में स्वयं को असमर्थ जानकर पुरूरवा क्षणिक निराश हो जाता है ।

'सूर्यपुत्र' में अपने को द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारने के बाद स्वयं को अपमानित होने से कर्ण का हृदय व्यथित हो उठता है ।

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 148

अर्जुन के कटु शब्द उसके हृदय कुसुम को मसल देते है । उसके अन्तर में प्रचण्ड अग्नि की लहरें उठती है और भग्न अंत:करण लेकर वह सहमा चल देता हैं -

> "खीझ गया कर्ण
> धधक उठी प्रचण्ड अग्नि अंतर में अनायास
> रख लिया तना धनुष उतारकर कंधो पर
> चल दिया सहमा सा, अपमान से भरा हुआ ।" *

"सूर्यपुत्र" में कर्ण अपने माता-पिता के प्रेम से वंचित होकर असफलता से पीड़ित होकर रह-रहकर प्यार न मिलने की पुकार से भर उठता है किन्तु युद्ध के लिए तत्पर कर्ण को जब कुन्ती यह समाचार देती है कि वह स्वयं उनको है तथा सृष्टि में आच्छादित उषा का राग उनके अन्तस्तल में प्रवंचना, पीड़ा, घृणा एवं मोह का सघन द्वन्द्व बिखेर देता है -

> " निकला एक निश्वास कर्ण के मुख से
> सहरन एक देखी कुन्ती ने उसमें
> बोले बहुत धीरे पर अत्यन्त दृढ़ शब्दों में
> पर एक प्रवंचना ने घेरा है मुझे आजन्म
> कितना कठोर निर्वासिन दिया गया माँ द्वारा
> कितनी अवहेलना मिली है वीर पितासे
> ये न तुम समझ सकोगी कभी
> और न आज इस समय तुम्हें मैं समझा पाऊँगा ।"[2]

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 49

2 - वही - पृ. 77

"सूर्यपुत्र" में युद्ध से उद्वेलित कर्ण का हृदय अपनी अभिलाषाओं के अपूर्ण रह जाने से निराश हो जाता है । भीष्म पितामह के तीखे शब्दों से उनका अन्तस्तल भग्न निःश्वासों से प्रवाहित होने लगता है -

" एक वज्रमय आघात सहन करता हुआ
स्वयं अपनी प्रतिज्ञा से पा गया निर्वासन
चुभती सी बात जब पुनः सुनी भीष्म की
चुपचाप चलने को गया तत्पर ।" *

"इला और अमिताभ" में अमिताभ से संभोग के पश्चात इला निराश हो जाती है कामेच्छा से अतृप्त व्यक्ति की स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है -

" पग पग पर द्विधा, संशय, शंकाएं
सोचती हूँ मानव के भाग्य में क्यों इतनी
तीखी अन्तर्व्यथाएं
पाप? पुण्य? आह । कोई ठीक ठीक बतलाये
काम तृप्ति, स्नेह संतोष सुख मानस के
क्यों वर्जित?

आत्म दमन, ताप क्लेश वांछनीय क्यों हो जाते ।"2

इला अपने प्रतिभाशाली प्रेमी को लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 8
2 डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 15

कराती है -

" दर्शन के ख्यात महाशिक्षक ही नहीं, तुम हो
धर्म गुरु भी सम्मानित
लोक में विवाह नहीं ऐसों का भाग्य आहत
दर्शन की चिन्ता ही स्वाभाविक तत्वदर्शी बंधते
अर्थ और काम में ।" *

3.6.4 <u>अनुताप :</u>

निराशा से पीड़ित व्यक्ति अपने कर्मों का चिन्तन करके अनेक प्रकार से पछताते हैं, जिसे अनुताप या पश्चाताप के रूप में देखा जा सकता है । मैक्डूगल खेद के मूल लक्ष्य प्राप्ति की एषणा का अस्तित्व स्वीकार करते हैं । जिसकी पूर्ति में असफल होने के कारण ही हम अपने अतीत कर्मों की त्रुटियों पर दु:खी होते हैं । इस दु:खानुभूति के साथ ही आत्मभर्त्सना का योग होने पर खेद की परिणति अनुताप में हो जाती है ।[2]

"संशय की एक रात" में राम अपने पूर्व कर्मों को याद करके अनेक प्रकार से रोते पछताते है उनका पश्चाताप इस रूप में प्रकट होता है कि वे जानते हुए भी स्वर्ण मृग के पीछे क्यों गये । उस छलिये के पैरों में लक्ष्मण रेखा सर्प बनकर क्यों नहीं लिपटी ।

" जानकी
जानते भी क्यों गये हम
स्वर्ण मृग हित?

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 29

क्यों गये पथ भूल?"

उस वर्चक के पदों में
सर्प बनकर सौमित्र रेखा
क्यों नहीं लिपटी?"[2]

"अग्निलीक" में राम अपनी भूलों पर प्रायश्चित करते हुए कहते हैं -

" कहीं गहरे, बहुत गहरे
मेरे जीवन में कोई बड़ी भूल की थी
कि मेरे सारे मन्तव्य, उलट गये
मैंने सीता को त्यागा था
मानों अपने को ही बांटा हो
केवल इसलिए कि वह लोक चिन्ता का प्रमाण हो
मैंने कब जाना कि वह प्रजा के विरुद्ध है?"[3]
मैंने सोचा था
कि सीता अपने को समझा लेगी
जब मैंने शम्बूक का वध किया
तब क्या मन के किसी कोने में कोई हिचक थी
पर अब मुझे लगता है कि मैं निपट हत्यारा हूं
मेरा सारा नियम-संयम आडम्बर बन गया है ।"[3]

"प्रवाद पर्व" में राम सीता निर्वासन के समय निराशा से पीड़ित हो अपने अतीत कर्मों आदि का चिन्तन करके अनेक प्रकार से पछताते हैं उन्हें इस बात का पश्चाताप होता है कि प्रथम निर्वासन के

---

* नरेश : संशय की एक रात : पृ. 6

2 भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 58

समय सीता उनके संग थी लेकिन सीता को आज पुनः निर्वासित करते समय वह नहीं जा रहे हैं । राम आत्म भर्त्सना करते हुए सोचने लगते हैं कि सीता आसन्न मातृत्व की स्थिति में है और ऐसी स्थिति में उन्हें निर्वासित किया जा रहा है -

"प्रथम निर्वासन के समय
तुम थे
लक्ष्मण का और
था एक प्रति विश्वास
पर आज?
आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में
प्रिया को
किस प्राप्ति के लिए निर्वासित किया गया
ऐसा अमानुषी आचरण तो
कोई वधिक भी नहीं करता ।" *

"महाप्रस्थान" में भीम अपनी भूलों पर प्रायश्चित करते हैं । आहत तन अपमानित मन से भीम विचार करते हुए कहते हैं मैंने दुःशासन के छद्म का रक्तपान कर क्या पाया? वे प्रतिशोध लेकर भी शान्त नहीं हो पाये । कौरवों को समाप्त कर भी उनकी विरोध की अग्नि शान्त नहीं हुई उन्हें राज्यप्राप्ति केवल मुट्ठी में कसने जैसा लगता है -

"दुर्योधन, दुःशासन के ये सारे छल बल …

---

* नरेश मेहता, : प्रवाद पर्व : पृ. 58

सब व्यर्थ गये
विरोधी की अग्नि
प्राप्त कर बन्धु बान्धवों वाली
समिधा
युद्ध युद्ध
प्रतिपग केवल युद्ध
और प्रत्युत्तर, द्वन्द्व
वैर का यह दावानल
अब भी सुलग पड़ता ।"*

"उर्वशी" में पुरूरवा विवेकशील पुरुष है प्रेम के क्षेत्र में अपने अभिमान के कारण अपनी असफलता पर पीड़ित होता है वह काम की ओर कभी यशु को ओर खिंचने लगता है । "मनुष्य की कल्पना का देवता वह है जो जल में उतरने से नहीं भीगता, जिसकी गरदन समुद्र की ऊँची से ऊँची लहरों से भी हाथ भर ऊँची दिखाई देती है ।"[2] कवि के इस कथन द्वारा पुरूरवा के ज्ञान को स्वीकृति मिली है क्योंकि संयमित तथा संतुलित जीवन जीने वाला व्यक्ति जलमें उतरने पर भी जल से नहीं भीगता अर्थात शरीर की मांग काम की सम्पूर्ति करने पर उसीको जीवन का सार समझ उसी के लिप्त नहीं रहेगा । संयम और सन्तुलन से ही गरदन हाथ भर ऊँची रह सकेगी कहना पड़ेगा एक सीमा तक नहीं क्यों कि व्यक्ति कभी तरंगों से लड़ते-लड़ते भी उनसे भीग जाता है और बहुधा लहरें उसे बहाकर औघट धार में फेंक देती है भंवर जाल बनाकर उसे नीचे

---

*। नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृ. 47-48

2. दिनकर : उर्वशी : पृ. 6.

पाताल में गाड़ देती है । यही पुरूरवा की स्थिति है । प्रतिष्ठानपुर लौटने पर वह उन्मुक्त बंधनहीन कामाचार का स्मरण करके दु:खी होता है वह समाज से तालमेल बिठाने में असमर्थ सिद्ध होता है । औशीनरी को धोखा देकर सामायिक चेतना से उत्पन्न दायित्व का वहन करने में पुरूरवा असमर्थ सिद्ध होता है औशीनरी को मुक्त न कर और उर्वशी को उन्मुक्त कर वह सामायिक अराजकता उत्पन्न करता है । समाज के साथ असामंजस्य की स्थिति में सन्यास ग्रहण करता है ।

"सूर्यपुत्र" में कर्ण युद्ध में प्रदर्शित अपने कठोर कर्मों की स्वयं आलोचना करता हुआ वह कहता है :

"पांडवों के प्रति द्वेष मेरी ही कुण्ठा है
मैं क्यों चाहता हूँ हननवीर अर्जुन का
मेरी तरह बलिष्ठ, मेरी तरह वीर
और मेरी तरह ही पुत्र वीर माता कुंती का ।"*

कर्ण सोचते हैं कि भौतिक तृष्णाओं से संचालित होकर मैंने अनल-शिखा बनकर अपने हिंसक भाव की मुक्त अभिव्यक्ति की है । क्यों करूं यह तो सच्चा सुख नहीं है । सच्चा सुख तो अपने सद्गुणों से मानव हृदय को जीतने में है :

" क्यों मैं चाहता हूँ पांडु पुत्रों का विनाश

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. : 90

घृणा, द्वेष दुर्बलताएं है निर्बल व्यक्तित्व की
देती है यन्त्रणा अगाध मानसिक रूप में
बदलती है मानवीय ~~सम्बन्ध~~ सम्बन्ध
मन को करती है द्वेषपूर्ण नारकीय यातना से ।"*

"कला और अमिताभ" में अमिताभ का विचार है कि कला के कष्टपूर्ण जीवन का सच्चा और समूचा दायित्व उस पर है । तब कला खेद की सशक्त अभिव्यक्ति करती है :

" तुमने मुझे और मैंने तुम्हें
जो प्यार किया
वह निश्चय ही पाप नहीं था ।
तुम्हारा और मेरा
उस तरह चाव के साथ
हंसना-बोलना, रूठना झगड़ना
जीवन के नाटक का
सहज स्वाभाविक अंग था,
और वह वासना का
आदिम उन्मादक रूप
प्रेम के सूक्ष्म अभिनय का
आवश्यक पूर्ण रंग था ।"2

जीवन के उद्गम का चिन्तन करने के माध्यम से अमिताभ की ~~अमिताभ की~~ अतीत पीड़क क्रियाओं की आलोचना करती हुई वह कहती है :

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. : 90
2. डा. देवराज, : कला और अमिताभ : पृ. 88

" तुम्हारा ख्याल कि ईश्वर ने तुम्हें
तुम्हारे भौतिक व्यक्तित्व को
ठीक वहाँ दण्डित किया जहाँ
उसने
वासना से प्रेरित हो पापाचार किया था
भय छाये चित्त को
भीरत कल्पना भर है
यह सच कि उस कुत्सित प्रतिशोध का
सारा दायित्व रूढ़ोबद्ध समाज पर है ।"*

3.8.5 शोक :

आलोच्य नाट्य - काव्यों में कुछ पात्र व्यक्ति की जीवन रक्षा के लिए उपाय न करने पर दुःख सह रुदन, विलाप करते है । कुछ पात्र अश्रु मोचन, दैव पर दोषारोपण करते है । "मैक्डूगल ने लक्ष्य प्राप्ति की हमारी विफलता एवं तत् सम्बन्धी निराशा व अनुताप आदि के पश्चात संबंधित प्रिय वस्तु के विनाश से शोक की स्थिति उपस्थित की है ।"2. आलोच्य नाट्य काव्यों प्रस्तुत घटनाओं के सन्दर्भ में मैक्डूगल के इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है ।

"एक कंठ विषपायी" में शिव अपनी प्रिया सती के भस्म हो जाने पर शोकाकुल हो जाते है । अपने कंधों पर सती का अधजला शव लटकाए बिलखते हुए शिव हिममण्डित शिखरों पर व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगते है :

---

* डा. देवराज : कला और अमिताभ : पृ. 88
2. मैक्डूगल ; सोशल साइकोलोजी ; पृ. 377-87

"अपने स्कन्धों पर
भगवती सती का अधझुलसा शव लटकाए
गहन मन स्ताप की विषमता से भरमाए
रह रह कर अब तक भी वीरिणीसुता का मुख
देखते बिलखते है ।"*

शौक मग्न विभ्रान्त से महादेव शंकर अपने कंधों पर अपनी पत्नी का शव रखे स्वयं कहने लगते है :

"महाशून्य के अंतराल में, निपट अकेला छोड़ दिया
प्रियाहीन व्यक्तित्व विखंडित, जगह-जगह से तोड़ दिया ।"2

महादेव को इस बात का दुःख है कि उन्होंने प्रेयसी वियोग को ही पाया । उन्हें देवत्वों और आदर्शों का परिधान व्यर्थ प्रतीत होता है :

"निर्वासित ।
प्रेयसी वियोग ।।"3

महादेव शंकर कंधे पर पीछे की ओर झुका हुआ सती का मुख अपने सामने कर लेते है, और उसे देखकर अपने प्रति कुपित और क्षुब्ध हो कहने लगते है :

"धिक मेरा देवत्व
कि जिसकी गाथा
धिक मेरा सामर्थ्य
कि जिसने टेका माथ,

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. : 58
2. वही : वही : पृ. 77
3. वही : वही : पृ. 83

धिक मेरा पुंसत्व
कि जिसका बोध अधूरा
धिक मेरा जीवन!
जिसका प्रतिशोध अधूरा ।"*

"अग्निलोक में राम सीता की आत्महत्या से शोकाभिभूत हो जाते है और सीता को न बचा सकने के कारण अश्रुमोचन करने लगते है :

" एक बार फिर
स्वर्ग मेरे हाथ में आकर निकल गया
और मैं देखता रह गया ।
जैसे एक करका कहीं लपकी
और मुझे पत्थर बना गयी
क्यों मैं रो रहा हूं ।"[2]

शोकाकुल राम को अपना जीवन अरुद्ध सहब्य प्रतीत होता है । राम भीतर से स्वंय को टूटा हुआ महसूस करते है :

" मैं रो नहीं रहा हूं
भीतर ही भीतर टूट रहा हूं
मेरे प्राणों के टुकड़े हो रहे है ।"[3]

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. 82
2. भारतभूषण अग्रवाल, अग्निलोक : पृ. : 57
3. भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलोक : पृ. : 57

"और मैं उन्हें पूरे मनोयोग से कसे रहा हूँ
क्यों कि ये सचमुच ही टूट गये
तो मेरा जीवन ही अवरुद्ध बन जाएगा ।"*

"शम्बूक" में ब्राह्मण अपने पुत्र की मृत्युपर शोकाकुल होकर राम के दरबार में जाता है उसका करुण चीत्कार चेतना के पार पैठा देने वाला होता है तब राम के समक्ष रुदन करता हुआ कहता है :

" बुझा मेरा कुल दीपक आज
राम यह कैसा तुम्हारा राज
शोक से ब्राह्मण हुआ निःशब्द
डर गये ज्यों आयु से सब अब्द ।" 2

"सूर्यपुत्र" में अतीत जीवन में युद्ध की दारुण अनुभूति स्मृति में कौंधती हुई पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण, रानियों और कौरव सेना के ध्वस्त हुए क्षत-विक्षत अजेय योद्धाओं को शोकातुर बना देती है :

" मृत्यु तोलती रही नीति और अनीति से
कौरव और पाण्डवों के सभी रणरथी वीर
भोग रहे युद्ध की विभीषिकाओं को ।"3

---

* भारत भूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 57

1. जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. :145

2. जगदीश गुप्त : शम्बूक : पृ. : 19

3. जगदीश चतुर्वेदी सूर्यपुत्र : पृ. :1445

महाराज युधिष्ठिर बन्धुजन की मृत्यु पर विलाप करते हुए सभी का वर्णन करते हैं -

> शोक में संतप्त युधिष्ठिर दे रहे थे
> जलांजलि
> सभी सम्बन्धियों, पिछले पुत्र, पौत्रों तथा आर्य वीरों को ।*

युधिष्ठिर जब माता कुंती के मुख से सुनते हैं कि कर्ण उनके ही भाई है और रोती हुई अपने कर्ण का तर्पण करने के लिए याचना करती है। कुंती को देखकर युधिष्ठिर में अतीत की युद्ध स्मृतियाँ वर्तमान की शोकोत्थित पीड़ा को और भी प्रदीप्त कर देती है । अब तो उन्हें जीवन, रिक्त एवं नीरस प्रतीत होता है -

> " इस महायुद्ध ने लील लिया कुरुवंश
> लील लिये सूर्य से योद्धा देदीप्यमान
> लील लिया शौर्य सारे भूखंड का,
> लील लिया वैभव,
> लील लिया कांचन शरीर
> मेरे बंधु कर्ण का ।"[2]

कर्ण के लघु जीवन की सफलता की स्मृति भी युधिष्ठिर की शोकाग्नि की ज्वालाओं को और भड़का देती है । युधिष्ठिर को दानवीर, पराक्रमी, विनयशील कहते हुए उनके प्राण आकुल हो उठते है -

---

* जगदीश गुप्त : शम्बूक : पृ. 15

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 145

2. वही : वही : पृ. 145

" थे दानवीर पराक्रमी, विनयशील
नवे कभी चाह सकते थे
नर संहार
न उनका लक्ष्य था जीवन का सर्व नाश ।" *

अतीत में किए हुए युद्ध में कर्ण के पराक्रम का स्मरण करते हुए युधिष्ठिर का हृदय वेदना से भर उठता है -

"कर्ण के स्नेह में होकर सराबोर
करते रहे विलाप धर्मराज बार-बार ।"[2]

दिवंगत कर्ण के अभावों से पीड़ित कृष्ण अपने जीवन में वेदना की ही व्याप्ति का अनुभव करते हैं । उनके नेत्रों से प्रवाहित होती अश्रुधाराएं अन्तर में ज्वालाएं जगाती हुई अपनी सांसे को निरर्थक करती हुई प्रतीत होती है । उनका हृदय कर्ण के स्नेह में जलता हुआ धूम-रेखा में परिणत हो जाता है -

" आँखों में छलकते अश्रु रोक रहे थे - श्री कृष्ण
एक असह्य वेदना व्याप्त थी मुख मंडल पर
रहे थे शांत और कर्मठ सारे महायुद्ध में
रोते से बोल पड़े कर्ण के वियोग में ।"[3]

कृष्ण को चारों ओर बिखरा हुआ मौन, नाश, विध्वंस एवं अंधकार ही जीवन का सत्य दिखाई देता है । सृष्टि के प्राणों के

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 148
2 - वही - : पृ. 148
3 - वही - : पृ. 148

स्पन्दनों को अन्तिम सीमा मृत्यु भी भासित होती है -

" कर्ण के निधन से डूब गया एक सूर्य
 - नक्षत्र देदीप्यमान ।" *

कर्ण के बाहुबल एवं उनकी उदार वाणी की शान्ति उन्हें जीवन की आशामयी अनुभूति से पूर्ण कर देती है । कर्ण का स्वागत करते हुए कृष्ण कहते हैं कि वे स्वयं जीवन मरण का सही अर्थ समझनेवाले इस सच्चे वीर के दाह को वहन करने के लिए तैयार है -

" कर्ण के अवसान का दाह मैं सहता हूँ
 गुम हो गये समय को बांधनेवाले
 प्रज्वलित सूर्य से नयन
 विस्तृत नीलाकाश में ।"2

3.6.6 हर्ष :

समकालीन नाट्यकाव्य में कुछ पात्र प्रतिशोध से हर्ष प्राप्त करते हैं कुछ पात्र अपनी शक्ति सम्पन्नता पर हर्ष प्रकट करते हैं । मैक्डूगल के अनुसार, "प्रेमोत्पन्न प्रसन्नता हर्ष का सुन्दर उदाहरण है, जिसमें प्रिय से सम्बन्धित हमारे कोमल प्रयत्नों की सफलता कारण-रूप में बसी रहती है । प्रेम की सफलता के अतिरिक्त घृणा-जन्य प्रतिशोध की सफलता से भी हर्ष की उत्पत्ति होती है ।

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 150
2 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 151

पुत्र आदि आलम्बन के सौन्दर्य से उत्पन्न सुख एवं मुस्कान आदि से उत्पन्न सुख भी इसमें रहता है ।" * समकालीन नाट्य हर्ष सम्बन्धी निम्नलिखित सभी तथ्य उपलब्ध होते हैं ।

"एक कंठ विषपायी" में दक्ष शिव को यज्ञ में आमंत्रित न करके अपने प्रतिशोध से हर्षित होते हैं -

" बहिष्कृत करके छोड़ूंगा मैं"
उन दोनों न केवल मेरी
वाक्य प्रतिष्ठा खण्डित की है
उनकी आत्मप्रतिष्ठा का भ्रम तोड़ूंगा मैं
यह यज्ञायोजन विराट
उनके अभाव का श्री गणेश है
हर अवसर पर
हर आयोजन पर
अपनी अवहेलना देखकर
शंकर का देवत्व स्वयं ही झुलस उठेगा
इतनी बड़ी उपेक्षा उसको सहन न होगी ।"[2]

"शम्बूक" में अयोध्या नगरी के राजद्वार के प्रहरी और दण्डधारी राम की शक्ति सम्पन्नता के कारण हर्ष मग्न दिखाये गए है । क्योंकि वे जानते है कि अयोध्या नगरी के समकक्ष कोई नहीं है -

---

* मैक्डूगल विलियम : सोशल साइकोलोजी : पृ. 129-30
2 दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. 15

" सजग प्रहरी
दण्डधारी हर प्रहर
हर दिशा
उल्लास की उठती लहर ।" *

"उर्वशी" में हर्ष के विविध रूप प्रकट होते हैं । उर्वशी सच्चे अर्थों में ममतामयी माँ के रूप में दिखलाई पड़ती है । शापवश वह अपने मातृकर्तव्य का पालन नहीं कर पाती, किन्तु उसके हृदय में मातृत्व की स्वच्छ पीयूषधारा प्रवाहित होती है । इस अवस्था में उसे पुत्र, पति से अधिक प्रिय होता है -

" जब होगा यह भूप प्रचुर धन धान्यवती भू होगी
रोग, शोक, परिताप, पाप वसुधा के घट जाएंगे
सब होंगे सुसम्पूर्ण जगत में सबकी आयु बढ़ेगी
इसीलिए तो सखी अभी से उसे आयु कहती हूँ ।"2

माता के गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर उर्वशी के नारित्व का पूर्ण विकास होता है । सुकन्या से अपने पुत्र प्राप्ति का समाचार सुनकर महाराज पुत्र स्नेह में आकण्ठ निमग्न और विह्वल हैं । सुकन्या उन्हें बताती है कि आज सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर उसके पुत्र आयु को च्यवन के आदेशानुसार उन्हें लौटाने आयी है -

" पुत्र देवि । मैं पुत्रवान हूँ? यह अपत्य मेरा है,
जनम चुका है मेरा भी त्राता पुं नाम नरक से ।"3

---

* जगदीश गुप्त : शम्बूक : पृ. 3
2 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 116
3 दिनकर : उर्वशी : पृ. 135

पुत्र प्राप्ति से पुरुरवा एक दम रोमांचित हो जाता है उसके नेत्रों में हर्ष छा जाता है -

" अकस्मात हो उठा उदित यह संचित पुण्य कहां का?
अमृत - अभ्र कैसे अनभ्र ही मुझ पर बरस पड़ा है ।"[1]

पुत्र प्राप्ति के बाद पुरुरवा राज्य के उत्तरदायित्व से विमुक्त होकर प्रसन्न हो जाता है -

" द्वार खोल दो कोष भवन का, कह दो पौरर जनों से,
जितना भी चाहे सुवर्ण आकर ले जा सकते है ।"[2]

पुत्र प्राप्ति से गदगद होकर पुरुरवा सभासदों को आज्ञा देता है -

" पुत्र अरे । मैं पुत्रवान हूं घोषित करो नगर में
जो हो जहां, वहीं से मेरे निकट उसे आने दो ।"[3]

हर्षित हृदय से पुरुरवा अपने पुत्र को आशीर्वाद देता है उसे कान्तिमान सूर्य कहते हुए -

" ऐल वंश के महा मंच पर नया सूर्य निकला है ।
पुत्र प्राप्ति का लग्न, आज अनुपम, अबाध उत्सव है ।"[4]

---

*	दिनकर	: उर्वशी	: पृ. 135
2		- वही -	पृ. 135
3		- वही -	पृ. 135
4		- वही -	पृ. 135

स्नेहासिक्त होता हुआ पुरूरवा अपने तन की सुधि भूल जाता है -

" पुत्र । अरे, कोई संभाल रखो मेरी संज्ञा को
न तो हर्ष से अभी विकल विक्षिप्त हुआ जाता हूँ ।" *

सुकन्या के मुख से यह सुनकर कि "शिशु के स्वप्न में ईश्वर ही आते है ।"[2] तभी तो वह अपनी सखी चित्रलेखा के समक्ष गौरवान्वित होती हुई कहती है -

"कौन कहे, जो तेज दमकता है इसके आनन पर
प्राप्त हुआ हो इसे और वह जननी नहीं, जनक से?"[3]

उर्वशी आनंद से उमंगित होती हुई चित्रलेखा से कहती है -

" अरी, देखती नहीं, लाल की नन्हीं सी आँखों में
अब भी तो सुस्पष्ट स्वर्ग के सपने झलक रहे हैं
टुकुर-टुकुर संतुष्ट भाव से कैसे ताक रहा है?
मानो, हो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, समर्थ देवों सा ।"[4]

हर्ष विभोर होकर अपने पुत्र को आशीर्वाद देती हुई -

" वह सब होगा सत्य", लाल मेरा यही कभी उगेगा
पिता सदृश्य ही अपर सूर्य नभ अखण्ड भूतल में ।
और करेगा पुण्यवान यह माता का गुण लेकर
उर अन्तर अनुरक्त प्रजा का शीतल हरियाली से ।"[5]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 135   2 - वही - पृ. 112
3 -वही - पृ. 113   4 - वही - पृ. 114
5 - वही - पृ. 115

शिशु को बार-बार चूमते हुए उसे अंक से लगाते हुए उर्वशी में वात्सल्य की अनुभूति होती है ।

" कितनी मृदुल ऊर्मि प्राणों में अकथ अपार सुखों की ।
दुग्ध धवल यह दृष्टि मनोरम कितनी अमृत सरस है
और स्पर्श में यह तरंग-सी क्या है सोम सुधा की
अंक लगाते ही आँखों की पलकें झुक जाती है ।" *

औशीनरी के हृदय में वात्सल्य का स्त्रोत बहता आयु को अपनाते हुए आदर्श गृहिणी की भाँति सोचती है कि आयु ऐलवंश का कुलदीप और पुरुरवा का पुत्र है आयु को हृदय से लगाती हुई कहती है -

" कितना भव्य स्वरूप । नयन नासिका, ललाट चिबुक में
महाराज की आकृतियों का पूरा बिंब पड़ा है ।
हाय, पालती कितने सुख, कितनी उमंग आशा से,
मुझे मिला होता यदि मेरा तनय कहीं बचपन में ।"[2]

शस्त्र शास्त्र निष्णात आयु को प्राप्त कर हर्षित होती हुई औशीनरी स्वयं को सौभाग्यशाली समझती है -

" पर तब भी क्या बात? मनस्वी जन महान पुरुष को
नयी कीर्ति की ध्वजा गाड़ती है उत्तुंग शिखर पर
बहुधा उन्हें भाग्य गढ़ता है तपा-तपा पावक में
पाषाणों पर सुला, सिंह जननी का क्षीर पिलाकर ।"[3]

---

* दिनकर:उर्वशी : पृ. 115
2 - वही - पृ. 147
3 - वही - पृ. 147

दिनकर जी ने अपने काव्य में वात्सल्य का भाव मुख्यत: नारी के पक्ष में ही चित्रित किया है । मेनका अप्सरा है वह भी धरती पर पलनेवाले प्रेम और उससे जन्य पीड़ा का आनन्द निहारती है उसके अनुसार व्यक्ति जीवन के ज्वलंत आवेगों के समक्ष देवताओं के जीवन की शांति तुच्छ है ।

मेनका मातृत्व को नारी-जीवन का महान गुण मानती है -

" माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है
गलती है हिमशिला, सत्य है, गठन देहकी खोकर
पर, हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर ।" *

चित्र लेखा उमंगित स्नेह से उसे हृदय को लगाकर उस पर चुम्बनों की वर्षा करने लगती है । चित्रलेखा शिशु के भविष्य को लेकर चिन्तित है । इस पर सुकन्या उसकी दोहरी मानसिकता ﴾रस भोगी एवं गन्ध भोगी﴿ की कल्पना करती है किन्तु चित्रलेखा उसके भ्रम का निवारण करती हुई दोनों को एक बताती है और प्रमाण में सुकन्या और ऋषि च्यवन को ही प्रस्तुत करती है ।

उर्वशी में भरत शाप का भय समाया हुआ है । शिशु की रक्षा के लिए उसके प्राण आकुल है । च्यवन पत्नी द्वारा उसकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा सुनकर ही वह निश्चित होती है -

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 19

"मैं निश्चिंत ही रही सुकन्ये । इस अबोध बालक की
तुम्हें छोड़कर निखिल लोक में और कौन माता है?
केवल भ्रूण वहन, केवल प्रजनन मातृत्व नहीं है
माता वही, पालती है जो शिशु को हृदय लगा कर"।

उर्वशी में शील का अथाह सागर तरंगित है । वह प्रेयसी के रूप में प्रेम भाव से ओतप्रोत है और प्रेम के समक्ष पुरुरवा को अपना सर्वस्व समर्पण कर वह हर्षित होती है -

"उफ्फ़ री यह माधुरी । और ये मधुर अधर विकच फूलों से
ये नवीन पाटल के दल आनन पर जब फिरते हैं
रोम कूप जाने, भर जाते किन पीयूष कणों से
और समेटते ही कठोर बाँहों के आलिंगन में
चहल एक पर एक उष्ण उर्मियाँ तुम्हारे तन की
मुझमें कर संक्रमण प्राण उन्मत्त बना देती है ।"[2]

उनका यह प्रेम शरीर के धरातल पर नहीं रुकता वह शरीर से जन्म लेकर मन और प्राण के गहन मुक्त लोकों में प्रवेश करता, जब कभी नर नारी तन को अतिक्रान्ति कर मन के उच्च शिखर में समाधि सुख को प्राप्त होते है तभी प्रकृति रोमांचित होकर थरथराने लगती है -

"जब भी तन की परिधि को पारकर मन के उच्च निलय में
नर नारी मिलते समाधि सुख के निश्चित शिखर पर
तब प्रहर्ष की अति से यों ही प्रकृति काँप उठती है ।"[3]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 118 2 - वही - पृ.73
3 - वही - पृ. ।

प्रेम की ज्वालामुखी विस्फोट के उपरान्त उदात्त प्रेम की शीतलता का सुख उर्वशी को प्राप्त होता है हर्षित होती हुई उर्वशी कहती है -

" जिस मधुर भूमिका में जन को ऊर्मि तरंग पहुँचाती है
उस दिव्य लोक तक हमें प्रेम की नाव सहज ले जाती है ।" *

सुकन्या को जो सम्मान ऋषि च्यवन से प्राप्त हुआ उसे प्राप्त कर हर्षित होती हुई उसके अन्तर में नारी भावना ~~का~~ जागृत होती है । महर्षि के एक वाक्य पर उसने अपने को न्योछावर कर दिया -

" हरि प्रसन्न यदि नहीं, सिद्धि बनकर तुम क्यों आई हो ।"[2]

सुकन्या ऋषि की इस प्रशस्ति को सुनकर अपने जीवन की सार्थकता पा लेती है क्योंकि पुरुष की तपस्या की सिद्धि बनकर वह स्वर्ग से श्रेष्ठ हो गई महर्षि की वाणी सत्य हुआ करती है उस वाणी ने सुकन्या के नारित्व को सर्वोपरि करार दे दिया आनन्द विभोर होकर वह कहती है -

" प्रणय-पुण्यशीला स्वतन्त्र मैं केवल उसे वरूँगी
जिसमें होगी ज्योति किसी दारुण तपश्चर्या की ।"[3]

सुकन्या तभी से च्यवन को पति के रूप में स्वीकार कर लेती है । "सूर्यपुत्र" में अधिरथ जब महाबली पुत्र कर्ण के राजतिलक का समाचार सुनता है तब उसे अपने जीवन की सार्थकता भान होता है ।

---

*	दिनकर	: उर्वशी	: पृ. 94
2		-वही -	पृ. 107
3		-वही-	पृ. 109

वह हर्षित होता हुआ कर्ण को देखता है -

" दूर खड़ा अधिरथ मग्न था हर्षोत्फुल
लिपट गया आकर वीर पुत्र से
पाया था धन धान्य अमित शौर्य बल से
पाया था राजपाट
पायी थी सान्त्वना
कौरव कुल शिरोमणि से ।" *

"इला और अमिताभ" में इला का परित्याग कर आप के समीप झोपड़ी डालकर रहते हुए अमिताभ जब सुनते हैं कि इला भी भिक्षुणी बन गयी है तब अमिताभ अपनी एक मात्र सम्पत्ति शांति कुंज को - इला को अर्पित करने के विचार से हर्षित होते है इला की आध्यात्मिक प्रकृति से हर्षित होते हुए अमिताभ उसे संदेश भेजते हैं - जिसकी अभिव्यक्ति इला इस रूप में करती है -

" तुमने इस बात पर खुशी जाहिर की है ।
कि मैं, पिछले वर्षों में
व्रत उपासना में
अपनी सारी साधिनों व शिष्याओं से
बढ़ी चढ़ी रही
और यह आशा प्रकट की है कि मैं
अधिकाधिक शान्ति की उपलब्धि कर सकूंगी ।"[2]

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 50
2 डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 7।

इला में हर्ष की अभिव्यक्ति प्रिय के मिलन से हुई है । यह प्रेमी कहीं भौतिक कहीं आध्यात्मिक कहीं वात्सल्य का आलम्बन है -

" कल की विनीत छात्री देहमन बुद्धि का
सार सँभार लिये
प्रेयसी की भूमिका में उतरी प्रगल्भमनी
अकस्मात गले पड़ी
मुझको सन्तोष मगर
केवल बोधात्मा नहीं, पूरे तुम
मेरे हो गये सुधर ।" *

इला पुत्र आगमन का समाचार देते हुए अपने प्रेमी में पुत्र के प्रति वात्सल्य उदीप्त करती हुई कहती है -

" आज तुम्हें देने ब जा रही हूँ मैं एक नयी खबर
दर्शन के देवता ने अनजाने सौंप दी है
अपनी इला को एक कीमती धरोहर
अंग अंग में अभिनव आलस्य, अवसादता
कितनी संवेदनाएँ देह मन को करती आह्लाद सा ।"[2]

3.6.7 कृतज्ञता :

समकालीन नाट्य काव्यों में उपकार परक कार्यों के कारण कुछ पात्र श्रेष्ठतर व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं । मैक्डूगल के अनुसार - "कृतज्ञता भाव के मूल में कोमल भाव एवं आत्म-लघुता की

---

* डा. देवराज : इला और अमिताभ : पृ. 16

2 - वही - पृ. 22

भावनाओं का मिश्रण रहता है ।"[1] इस भाव की अभिव्यक्ति समकालीन नाट्यकाव्यों में कुछ स्थलों पर हुई है -

"शम्बूक" में शम्बूक राम के उपकार परक कार्य के कारण कृतज्ञ हो जाता है और नमन करता हुआ कहता है -

" ज्वाला में जलते हुए
हाथ का संस्पर्श एक
अपने सदियों से ठंडे पड़े
माथे पर
शिव के तीसरे नेत्र की तरह
वह रक्त तिलक
प्रज्वलित होते ही
कर देगा भस्मसात
झूठे अहंकार को
पूरी वासना देह
निःसंदेह ।"[2]

3.6.8 निर्वेद :

आलोच्य नाट्य काव्यों में कुछ पात्र संसार का मिथ्यात्व जानकर उसमें अपने उलझने पर निराशाजनक दिखलाए गए हैं । जन्म मृत्यु के दोषों का ज्ञान आत्म-अनात्म का भेद जानने के लिए कुछ पात्र निर्वेद की स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं । शेण्ड के अनुसार - "यह भाव हमारे मनोरथों की अतृप्ति से उत्पन्न होता है ।"[3]

---

1 मैक्डूगल : सोशल साइकोलाजी : पृ. 114
2 जगदीश गुप्त : शम्बूक : पृ. 101-102
3 एलेक्जेंडर शेण्ड : रिपगेन्स के वर्णन में : पृ. 4

इस विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप निर्वेद की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर हुई है ।

"आत्मजयी" में नचिकेता को सुख, सुविधा, विश्राम नहीं, उसका कुछ और ध्येय है । वह उस "विमूढ़ व्यर्थ जीवन" और पागल संसार को दूसरी बार नहीं अपनाना चाहता -

" सुख सुविधा, विश्राम नहीं
कुछ और ध्येय है
कभी-कभी लगता
यह जीवन अपरिमेय है
समा नहीं पाता जो दैहिक स्वप्न परिधि में ।
जागकर जाग पड़ता अकुलाकर
अपनी मांदी तृष्णाओं को
झूठे जग से धोखा खाकर
बार-बार वरदान न दोवे
जो मुझको स्वीकार नहीं
वही विमूढ़ व्यर्थ जीवन फिर
वह पागल संसार, नहीं ।" *

"छीना झपटी", "दुनियादारी" "आपाधापी" दबावों के बीच नचिकेता नहीं रहना चाहता उसकी आकांक्षा है -

" मिल सके अगर तो एक दृष्टि चाहिए मुझे
जीवन बच सके अंधेरा हो जाने से बस ।"[2]

---

* कुंवरनारायण : आत्मजयी : पृ. 67

2 - वही - पृ. 25

नचिकेता आत्मा को विचारता हुआ अडिग ज्ञान का वरण करता है :

" छा गयी उसी क्षण मानो गहरी शांति
जिस समय नचिकेता ने अडिग
ज्ञान का वरण किया
जिस पल शरीर की मांगों को स्थगित किया
माना -
जीवन केवल सुख की साधना नहीं
वह दिव्य शक्ति
अनवरत खोज
अनथक प्रयास
वह मुक्ति बोध
उसको पशु सा-केवल तन से बांधना नहीं
जो केवल तन से जिया
मूर्ख वह
तन के मरते मरता है ।"*

"दिव्य शक्ति" अनवरत खोज अनथक प्रयासकरता हुआ नचिकेता मुक्ति की ओर बढ़ता है नचिकेता अनुभव करता है केवल शरीर के लिए नहीं शरीर के बावजूद जिया जा सकता है :

" केवल शरीर के लिए नहीं

---

* कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ. : 69

शरीर के बावजूद जीना होगा ।"*

आश्रय जीवन की ललक नचिकेता को यह सामर्थ्य देती है कि अब वह जीवन भर पीड़ाओं में जी सकता है :

"तु वह चिन्तक उपवासी जो एकाकी रह सकता
वह निश्चय जो ✗
की जीवन भर
पीड़ाओं में जी सकता ।
वह उद्वेलित सागर जो
भरपूर भरा जीवन से
पर सूना-सूना लगता है"[2]

'महाप्रस्थान' में युधिष्ठिर महाभारत युद्ध के उपरांत सांसारिक विषयों से विरक्त होकर हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं :

" अन्तिम यात्रा के हित
काल पक्षि सा
लीन हो गया अंधकार में
शब्दहीन ।
अब केवल हिम की
उजाड़, दुर्दम्य, पाथरी एकान्तिकता

---

* कुंवरनारायण : आत्मजयी : पृ. : ~~74~~ 73

2. कुंवरनारायण : आत्मजयी : पृ. : 74

जिस पर
पतली, पिपीलिका रेखा सा चलता
मतवार बन्दी सा
पाण्डव दल ।" *

युधिष्ठिर राजपाट, कुलवंश, बन्धु बान्धवता किसी के प्रति भी उनमें आसक्ति नहीं रहती -

" राजपाट, कुलवंश, बन्धु बान्धवता के प्रति
नहीं रही आसक्ति ।"2

वे राज्य को मिथ्या मानकर सब बुराइयों की जड़ समझता है । क्योंकि राज्य व्यवस्था में साधारण जन का हनन होता है । राजनीति उन्हें कुचक्र नीति प्रतीत होती है अत: वे इतिहासहीन होकर मृत्युवरण करना चाहते हैं पर सम्राट बनना नहीं -

" मैं इस षड्यंत्र का
भागी नहीं बनना चाहता था
इसीलिए
एक नितान्त साधारण जन बनकर
अपने अमानवीय कृत्यों के लिए
हिम में गलकर
इतिहासहीन मृत्यु स्वीकार लेना
उचित समझा पार्थ ।
परन्तु

---

* नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृ. 74
2 - वही - पृ. 44

सम्राट बनकर
वैभवपूर्ण; सम्मानित
किन्तु ग्रास मृत्यु
मुझे स्वीकार नहीं हुई ।" *

युधिष्ठिर सब कुछ त्यागकर "प्रज्ञा" हो जाते है उन्हें अंतप्रेरणा होती है कि हिमयातना का अनुभव करनेवाले शरीर को इस विराट अग्नि में समर्पित कर देना ही श्रेष्ठ है वे जान जाते है कि जब पृथ्वी देह का बोध त्याग देती है तब वह शिव के कालजयी ललाटसी शुभ्र हो जाती है । हिमालय की यात्रा में चीड़ और देवदारू के वृक्षों की सीमा के बाद उन्हें विशाल निर्वेद हिमक्षास्थल में सुपर्ण भोजपत्रों की स्वाहा यात्रा दृष्टिगोचर होती है । युधिष्ठिर स्वयं को इसी धर्मचक्र का साक्षात करने के लिए शेष समझते है और सब कुछ त्यागकर निर्वेद की स्थिति को प्राप्त करते है -

"एक कथा
नहीं, अनन्त आसन्न घटनाओंवाला
रक्तरंजित एक इतिहास
बल्कि अनन्त त्रासदियोंवाली
एक महागाथा सम्पन्न हुई
मैं
इस धर्मचक्र का साक्षात करने को
शेष हूँ
निर्वेद के
इस प्रशान्त बिन्दु की नींव में
इतिहास और गाथाओं का वह कोलाहल
अब शान्त हो चुका है ।"[2]

---

* नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृ. 113
2 - वही - पृ. 141

"उत्तरप्रियदर्शी" में अशोक जन्म मृत्यु के दोषों का ज्ञान और आत्म अनात्म का भेद जानने के लिए भिक्षु की शरण में जाता है। भिक्षु की अलौकिक शक्तियों को देखकर वह स्वयं ही उससे प्रश्न कर बैठता है -

"तुम कौन, काषाय वस्त्रधारी?
कैसे तुम यहाँ?
तुम्हारे चारों ओर
शान्ति यह कैसे?
वे सब क्या सच ही कहते थे -
स्खलित हो गया शासन?
भंग हुई मर्यादा?
क्यों ज्वालाएँ नहीं छू रही तुमको?
कशाघात यम के? क्यों एक सुगन्धित शीतल
बलराती सी साँस
तुम्हारे चारों ओर वह रही है
जीवन्त स्वप्न सी?
क्यों कैसे, किस चमत्कार बल से
तुम नरक-मुक्त हो?" *

"सुखसरोवर" में राजा धर्म दृष्टि के कारण सन्यास ग्रहण करता है जन्म मृत्यु जरा के दोषों का ज्ञान प्राप्त होने के कारण 'वह जा मैंने अभिषिक्त किया तुमको?' कहकर सन्यास ग्रहण कर लेता है।

---

* अज्ञेय : उत्तरप्रियदर्शी : पृ. 44

"उर्वशी" में पुरूरवा का अहं उसे निर्वेद की स्थिति को प्राप्त करने के लिए विवश कर देता है । पुरूरवा यश प्राप्ति का इच्छुक अरूप (औशीनरी) से रूप (उर्वशी) की ओर आकर्षित होता है । यश प्राप्ति की इच्छा आध्यात्मिक (Metaphisical) इसको वह चेतन रूप से स्वीकार करता है किन्तु अचेतन रूप से उर्वशी को प्राप्त करते ही उसके मन की चंचलता तीव्र हो उठती है । ज्यों ही चेतनावस्था को प्राप्त होता है उसे पुन: फिर औशनरी को लौटना पडता है । रूप से अरूप की ओर लौटना बाधक सिद्ध होता है क्योंकि उसके उन्मुक्त संभोग को समाज स्वीकार नहीं करता । पुरूरवा संभोग से समाधि तक नहीं पहुँचता है इसीलिए तो सन्यास की आवश्यकता प्रतीत होती है । दूसरे आयोजन में औशीनरी के गौरवपूर्ण मधुदान को अपने अन्तर में संचित न रख पाने की उनकी वेदना अत्यंत तीव्र हो उठती है -

" बना नहीं क्यों वह अखंड आलोक-पुंज जीवन का ।
जिसे लिये तू और व्योम में ऊपर उठ सकता था ।" *

पुरूरवा अतीत की विलासिता का स्मरण करते हुए उर्वशी के परित्याग से निराशा, अनुताप, उद्वेग आदि विभिन्न भावनाओं से प्रेरित होकर विरक्त हो उठता है । और कहने लगता है -

" विपद व्याधिनी भी जीवन में मुझको कहीं मिली थी?
पूछा जब तूने भविष्य, उसने क्या बतलाया था?
मिथ्या । हाय, छलना मनोज्ञ वह । पुरूष मान हँसता है
जब चाहिए उसे रो उठना कंठ फाड चिल्लाकर ।"[2]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 143

2 - वही - पृ. 144

इसी भावना के उद्वेग में पुरूरवा जीवन के सुख के स्थान पर विकट पहेली मानते हैं और उससे मुक्ति पाने के लिए व्याकुल होतेहैं । पुरूरवा सन्यास ग्रहण करते समय सन्यास के कर्तव्य कर्मों की उपेक्षा नहीं करते और घोषणा करते हैं -

" अब तो केवल प्रजा-धर्म है, सो उसको पालूंगा ।
जहाँ रहूँगा, वहीं महाभूत का अभ्युदय मानकर ।" *

पुरूरवा की सारी आकांक्षाएँ चिरविलास की कामना और वरण सभी स्थितियों का पर्यवसान सन्यास एक और महत भटकन अथवा चिरद्वन्द्व में करना पडता है । इस सन्दर्भ में डा.विनयकुमार का यह मत कि, "पुरूरवा ने निराश होकर जीवन छोड़ा नहीं मार्ग मात्र का परिवर्तन किया ।"[2] सार्थक सिद्ध होता है ।

3.6.9 ग्लानि :

समकालीन नाट्य-काव्यों में कुछ पात्र बुराई, मूर्खता एवं तुच्छता का एकान्त अनुभव करके ग्लानि का अनुभव करते हैं । इस अवस्था में कुछ पात्र आत्मभर्त्सना करते हैं जिससे उनके कार्यों में मन्दता आयी है । कुछ पात्र अतीत कार्यों पर वेदानुभुति प्रकट करते हैं । जिसमें सुधार नहीं किया जा सकता । मैक्डूगाल के अनुसार - "यह स्थिति अन्य किसी के नहीं, व्यक्ति के अपने ही कार्य द्वारा उत्पन्न होती है और इसी कारण, कार्य दोष से उत्पन्न क्रोध स्वयं को भर्त्सना एवं आत्म-पीड़न के रूप में व्यक्त होता है ।"[3] समकालीन नाट्यों में

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 144
2 डा. वचनदेव कुमार : उर्वशी विचार और विश्लेषण : पृ.10
3 मैक्डूगाल : सोशिल साइकोलोजी : पृ. 136

इस ग्लानि की अभिव्यक्ति अनेक प्रसंगों में हुई है ।

"संशय की एक रात" में राम एकान्त में निस्सार जीवन की विडम्बना पर सोचते हैं कि उनकी पात्रता बालू में छोटे शंख के समान खो गयी है -

" क्या हो
क्या न हो कि बालू में
किसी पाँवों से टूटे हुए
सन्दर्भ खण्डित
निष्प्रयोजित ।" *

रामको इस बात का अनुभव होता है कि हम सन्धियों से युद्ध से निष्पति पाना चाहते हैं लेकिन इस सन्दर्भ में हमारी पात्रता तो शव चुभे बाण के टूटे फलक के समान है इसलिए इस पात्रता के होते इतिहास के हाथों बाण बनने की अपेक्षा अँधेरों में यात्रा करते हुए खो जाने को श्रेष्ठ समझते हैं -

" शव चुभे बाण के टूटे फलक से
अधिक अपनी पात्रता
क्या है?
इतिहास के हाथों
बाण बनने से अधिक अच्छा है
स्वयं हम
अँधेरों में यात्रा करते हुए
खो जाए ।"[2]

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ० 9

2 - वही -

"प्रवादपर्व" में राम को सीता निर्वासन के समय अपनी सामर्थ्यहीनता से ग्लानि होती है उन्हें सीता का कथन स्मरण हो आता है कि व्यक्ति जब इतिहास को समर्पित हो जाता है तब उसके व्यक्तिगत जीवन का कोई महत्व नहीं रह जाता उसे अपनी तथा परिवार की चिन्ताओं को त्यागना होना होता है -

" जीवन भर इतिहास का सन्धान करनेवाला
यह भूल जाता है
वह व्यक्ति भी है, और
उसके पार्श्व में
कोई एकान्त कारिणी प्रिया खड़ी है
न कि
इतिहास पुरुष के पार्श्व में
खड़े होनेवाली
कोई प्रतिमा ।" *

राम को इस बात का दु:ख होता है कि वे पूर्ण रूप से इतिहास पुरुष बन चुके हैं अत: सीता निर्वासन को किसी प्रकार भी टाला नहीं जा सकता ।

"सूर्यपुत्र" में कुन्ती अपने अतीत पाप कर्मों पर ग्लानि की ईषत अभिव्यक्ति करती हुई कहती है -

" कैसे मैं स्वयं जाकर कहूँ पुत्र से राज
कैसे बतलाऊं उसे अपना ज्येष्ठ प्रेम

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. 110

जो कि वर्षों के दीर्घ अन्तराल पर भी
उतना ही निश्चल पवित्र और जीवन्त
जितना वैध लगता मुझे पांडु आज्ञा से किया गया
धर्मराज, वायुदेव और देवराज इन्द्र का ।" *

कर्ण अपनी माता कुंती के विश्वासघात छलपूर्ण आह्वान से आहत होकर ग्लानि ग्रस्त होते हुए अपने झूठे अभिमान को धिक्कारते है और अपनी भौतिक भावनाओं से प्रेरित होकर कुन्ती को आश्वासन देते हुए कहते हैं –

" फिर भी मैं अपनी माँ को देता हूं आश्वासन
साक्षी कर पिता को, निर्लिप्त सूर्य को
युद्ध मैं नहीं करूंगा हनन तुम्हारे किसी पुत्र का
केवल अर्जुन को तुम मत करो इसमें सम्मिलित
मैं हूं अपने ऊपर लांछन भी सहूंगा कायरता के
पर न लूंगा प्राण अन्य किसी पुत्र के ।" 2

कर्ण का मन मानसिक वेदना से आकुल हो उठता है ।

3.6.10 ईर्ष्या :

आलोच्य नाट्य काव्यों में कुछ पात्र अपने राग को पूरा पाना चाहते हैं कोई अन्य व्यक्ति के अधिकारों को छीने तो ईर्ष्या की भावनाओं का उदय होता है । मैक्डूगल के अनुसार – "ईर्ष्या किसी

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 72
2 – वही – पृ. 78

सुसंगठित भाव पर आधारित मिश्रित भाव है यह स्थायी भाव किसी वस्तु के प्रति हमारा राग या प्रेम एवं हमारा आत्मज्ञान या अहं होता है ।" * समकालीन नाट्यकाव्यों में ईर्ष्या का अधिक विस्तृत चित्रण हुआ है ।

"उत्तरप्रियदर्शी" में अशोक प्रेम शत्रुओं को अपने नगर सीमाओं की ओर बढ़ता देखता है तो ईर्ष्या से भर उठता है उन्हें दण्डित करने के लिए नरक का निर्माण करने की आज्ञा देता है उसका कहना है -

यंत्रणा दूंगा मैं, जो प्रेत-शत्रु मेरे तन में
एक फुरहरी जगा रहे हैं ।" [2]

"शम्बूक" में शम्बूक अपने तप को भंग होते देख राम के प्रति ईर्ष्या से भर उठता है और कहता है -

"कौन शासक भूल अपनी मानता
सदा अपराधी प्रजा को जानता
राम तुम राजा बने किस हेतु हो?
व्यष्टि और समष्टि के सेतु हो?
शूद्रघाती बने, करके क्रोध
क्या तुम्हारा यही समताबोध? [3]

"एक पुरुष और" में इन्द्र अपने एक छत्र साम्राज्य पर आंच नहीं आने देना चाहता अत: मेनका को विश्वामित्र की साधना भंग करने के लिए

---

* मैक्डूगल : सोशल साइकोलोजी : पृ. 7।
2 अज्ञेय : उत्तर प्रियदर्शी : पृ.
3 जगदीश गुप्त : शम्बूक : पृ.

धरती पर भेजता है ।

"उर्वशी" में पुरुरवा उर्वशी के सुखद आकर्षण से वंचित होकर क्रोधित हो उठता है । उर्वशी के अन्तर्धान होने पर पुरुरवा में विनाशकारी वृत्तियाँ जागृत होती है । उर्वशी के अप्राप्ति का कारण भरत-शाप जानकर पुरुरवा क्रोध से भर उठते हैं -

"लाओ मेरा धनुष - सजाओ गगन ज्यों स्यंदन को
सखा नहीं, बन शत्रु स्वर्गपुर मुझे आज जाना है ।" *

पुरुरवा में देवताओं के प्रति असूया जागृत होती है -

"फेंक प्रखर, प्रज्वलित, वह्निमय विशिख दृप्त मघवा को
देता हूँ नैवेद्य मनुजता के विरुद्ध संगर का ।"[2]

यहाँ पर पुरुरवा के अन्तर की आत्मलघुता देवताओं की सापेक्षिक श्रेष्ठता से उत्पन्न हुई है । पुरुरवा सोचता है -

"भीति इन्द्र के निठुर वज्र की, देवों की माया की;
किन्तु उसे तुम छिपा रहे हो सचिव । ओढ़ ऊपर से
मिथ्या वसन दनुज संगति-कल्पना जन्य दूषण का ।"[3]

यश प्राप्ति का इच्छुक पुरुरवा उर्वशी को खोकर अपनी स्थिति से खिन्न होता है जिसमें क्रोध के स्थान पर हल्का सा विषाद भी मिश्रित होता है ।

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 141 2 - वही - पृ. 139

3 - वही - पृ. 141

अप्सराओं के वार्तालाप में भी वेदनानुभूति है इसीलिए मृत्युलोक के प्राणियों के प्रति उनमें ईर्ष्या की भावना जागृत होती है । अहं का वेदनात्मक अवरोध उनमें आत्मलघुता और क्रोध, घृणा या भय की भावनायें जागृत करता है । मेनका में अहं के वेदनात्मक अवरोध से ईर्ष्या की भावना उत्पन्न होती है -

" जब कोई ज्वार रूप को देखकर उमड़ आता है,
किसी अनिर्वचनीय क्षुधा में जीवन पड़ जाता है,
उस पीड़ा से बचने की तब राह नहीं मिलती है,
उठती वेदना यहाँ जो, खुल न कभी खिलती है ।" *

रंभा में भी अहं के वेदनात्मक अवरोध से ईर्ष्या उत्पन्न होती है अपनी सखी उर्वशी को मृत्य लोक के पुरुष से आकर्षित हुआ जानकर उसमें भय और क्रोध की भावना जागृत होती है कुछ क्षणों के लिए रंभा में आत्मलघुता से ईर्ष्या की भावना उदित है उसके अनुसार -

"प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो क्रीडा है,
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीड़ा है ।"[2]

रंभा के अनुसार अप्सरियों का प्रेम बहता हुआ कभी देवता को तो कभी मनुज को कंठ से लगाता है ।

पर, परि रंभण प्रकाश का मन रश्मि रमण है
गंधों के जग में दो प्राणों का निर्मुक्त भ्रमण है ।"[3]

---

*	दिनकर	: उर्वशी	: पृ. 11
2		- वही -	पृ. 15
3		- वही -	पृ. 15

यहाँ पर रंभा जिस गंध के जग दो प्राणों के निर्मुक्त रमण की बात करती है । उसमें तन के मिलन को लेकर उसमें क्षणिक वेदनानुभूति जागृत होती है ।

औशीनरी में नारी का दर्द समाहित है । अपने पति पुरूरवा को औशीनरी जब उर्वशी के साथ स्नेह क्रीड़ा करते देखती है तो उसका हृदय ईर्ष्या से भर उठता है निपुणिका पुरूरवा और उर्वशी के मिलन संवादों को प्रस्तुत करते हुए जब यह व्यक्त करती है -

" प्राणेश्वरी । मिलन सुख को नित होकर संगवरे हम
मधुमय हरियाले निकुंज में आजीवन विचरें हम ।" *

रानी इसे सुनकर विचलित हो जाती है और कहती है -

" आजीवन वे साथ रहेंगे? तो अब क्या करना है
जीते जी यह मरण झेलने से अच्छा मरना ।"[2]

औशीनरी को प्रतीत होता है कि पुरूरवा पर उसके प्रेम के एकाधिकार में उर्वशी स्वयं उसका अंश लेकर उसे प्रवंचित कर रही है - आत्मलघुता की भावना से प्रेरित हो कहती है -

" जाल फेंकती फिरती अपने रूप और यौवन का,
हंसी हंसी में करती हैं आखेट नर के मन का ।
किन्तु, बाण इन व्याधिनियों के किसे कष्ट देते हैं?
पुरुषों को दे मोद, प्राण वे वधुओं के लेते हैं ।"[3]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 15 2 - वही - पृ.30
3 - वही - पृ. 31

प्रेम, अहं की वेदनात्मक कुण्ठा या आत्मलघुता एवं क्रोध चारों भावों से परिपूर्ण यह स्पर्द्धात्मक ईर्ष्या की भावना है ।

उर्वशी अप्सरा है । वह पुरूरवा के साथ मुक्त विहार करने के लिए भू लोक पर आती है किन्तु जब उसे सूचना प्राप्त होती है कि पुरूरवा मैमेषेय यज्ञ कर रहे हैं तब भरत मुनि के शाप का स्मरण कर उसमें अपने पति के प्रति भय तथा पुत्र के प्रति घृणा की भावना जागृत होती है पुत्र उसे बाधा सदृश्य प्रतीत होता है और शीघ्र ही पुरूरवा से मिलना चाहती है । प्रिय मिलन भी उसमें आत्मलघुता जनित ईर्ष्या को जागृत करता है ।

" दिन भर रचना संग संग प्रियतम के, जहाँ रहे वे
और बिताना समग्र रजनी उस प्रणय कथा में
जिसका कहीं न आदि, न मध्यावसान होता है
तभी भी जावे, विरह आयु का कैसे झेल सकूँगी ?
हाय पुत्र । तू क्यों आया था उसके बन्ध्य उदर में?" *

3.6.11 <u>विषाद :</u>

समकालीन नाट्य-काव्यों में कुछ पात्र अतीत की स्मृति और वर्तमान की वेदना से विषाद मग्न हो जाते हैं । फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक "रिबो-"विषाद को शोक का ही एक रूप मानते हैं । इन दोनों में से एक के भी दमन से विषाद की समाप्ति हो जाएगी । यदि सुखद स्मृति को निकाल डालें, तो शुद्ध शोक रहेगा । इन दोनों तत्वों में से विषाद में कभी एक प्रधान हो उठता है,

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 118

कभी दूसरा ।" * समकालीन नाट्य-काव्यों में विषाद का प्रचुर चित्रण हुआ है ।

"संशय की एक रात" में राम अतीत की स्मृति एवं वर्तमान की वेदना से विषाद मग्न हो जाते हैं, उन्हें इस बात का दु:ख होता है कि -

"क्या सोचते होंगे जनक जी
बन्धु-बांधव और
पुरवासी सभी क्या कह रहे होंगे?
स्वयं सीता भी सोचती होंगी, क्या?"[2]

"प्रवाद पर्व" में राम सीता के निर्वासन के विषादमग्न हो जाते हैं । उन्हें अतीत की स्मृति हो आती है । प्रथम निर्वासन के समय उनके साथ सीता थी और आज सीता को निर्वासित करते राम शोक मग्न हो जाते हैं ।

" आंसुओं के आवरण में
पुतलियाँ थी लीन
दृश्य धुंधला पड़ गया
आकार हुए विलीन
प्रिया निर्वासन समय की
रही मुद्रा शेष

---

* रिवो, द साइकोलोजी आफ इमोशंस : पृ. 270
2 नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. 11

पान जैसी पीत काया
स्याह बिखरे केश
जानकी दु:ख से
यों राम का मन म्लान ।" *

"सूर्यपुत्र" में कर्ण का जीवन अनंत संघर्षों को भोगनेवाले निरासक्त योद्धा का यातनामय जीवन है । शैशव की कड़ुवाहट तथा वितृष्णा ने उसे एक अडिग और अजेय व्यक्तित्व प्रदान किया है । वह अवैध संतान है और भारतीय जीवन के उस सामंतकालीन परिवेश में एक आत्मनिर्वासित व्यक्ति जीवन जीने के लिए अभिशप्त है नितांत अकेलेपन का अहसास उसे सदैव कचोटता है और उसका व्यक्तित्व अधिक प्रखर कर्मठ और दुर्द्धष बनता जाता है अर्जुन के द्वारा स्वयं कर्ण के परिवार के प्रति कटूक्तियाँ सुनकर कर्ण का हृदय वेदना से भर उठता है ।

" लगने लगा कि सभी करते है आक्षेप
कौन है मेरा पिता यह न बता सकता मैं
केवल यह सच है कि मैं हूँ एक सारथिपुत्र
मेरी नसों में मात्र शूद्रों का खून है ।"[2]

युद्ध से पूर्व जब कुन्ती कर्ण के पास जाकर निवेदन करती है अपने भाइयों का वध न करें तब कर्ण का शौर्य और विस्तेजित हो जाता है किन्तु रणक्षेत्र में अर्जुन के ब वध की पूर्व स्मृति उन्हें शोकातुर बना देती है " -

---

* नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृ. 19

2 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 51

" कुन्ती की आँखों से बरस पड़ी जलधार
मुख हुआ कर्ण का शोकमय, कांतिहीन
- विह्वल हो उठे कर्ण ।" *

6.12 जड़ता :

आलोच्य नाट्यकाव्यों में कुछ पात्रों में जड़ता की अनुभूति से बुद्धि कुछ समय के लिए अवरुद्ध हो गयी है । रिबो ने भी जड़ता को, व्यक्ति-चरित्र को संवेदनशील, क्रियाशील एवं जड़ तीन रूपों में विभक्त किया है और गतिहीनता अथवा निश्चलता को जड़त्व का शुद्ध रूप बताया है ।"2

"संशय की एक रात" में युद्ध की आशंका से राम में जड़ता आ जाती है और राम स्वयं की असमर्थता को महसूस करते हुए कहते हैं -

किन्तु अपनी दृष्टि में ही
क्यों इतने प्रश्न
शंका और कुशंकाएँ
मुझे घेरे हैं ।"3

"अग्निलीक" में राम सीता की आत्महत्या से जड़ता का अनुभव करते हैं । सीता को आत्महत्या करने से न रोककर राम एकटक देखते रह जाते हैं ।

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 79
2 रिबो, द साइकोलोजी आफ दि इमोशन्स : पृ.389 एवं 397
3 नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ.21

" एक बार फिर
स्वर्ग मेरे हाथ से निकल गया
और मैं देखता रह गया
जैसे एक करका कहीं लपकी
और मुझमें समा गई ।" *

"प्रवाद पर्व" में सीता को निर्वासित करते समय में एक प्रकार की जड़ता राम समाहित होती है और राम आकुलों के मध्य प्रविष्ठ होते हुए रथ को एकटक देखते रह जाते है -

"प्रिया का यह राज रथ
और यात्रा को अस्वीकारती
तुम्हारी ओर
उड़ जाने को आकुल
उसकी यह प्रकम्पिता पता का ।
{ क्या यह सीता का मन संभव है }
दूरियों के जल में डूब जाने के लिए
तुम्हारे ही आदेशपर
अनुज के सारथ्य में चला जा रहा है
क्या किसी दिन
इसी प्रकार गवाक्ष में खड़े होकर
इस रथ का लौटना देख सकोगे राम ।"2

---

* भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 21
2 नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृ. 107

3.6.13 उन्माद :

हैडफील्ड ने उन्माद के स्थान पर 'हिस्टीरिया' का वर्णन किया है। जिसकी उत्पत्ति मानसिक संघर्ष से होती है।* समकालीन नाट्य काव्यों में कुछ पात्र इष्टजन वियोग, विभव नाश, शोकाश, भय इत्यादि के के कारण उन्माद ग्रस्त हो गए हैं।

समकालीन नाट्य-काव्यों में उन्माद का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। "एक कंठ विषपायी" में सर्वहत को एक उन्मादग्रस्त व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। सर्वहत भूख के कारण वह उन्मादग्रस्त हो जाती है और कुछ पाने की आशा में भागकर सर्वहत इन्द्र और वरुण की शरण में जाता है और उनसे कहता है -

" दो रोटी पाने की आशा में
इतना सब रक्तपात सहकर भी
यहाँ तक चला आया
बोलो -
तुम मुझको रोटी दे सकते हो?
अच्छा न सही रोटी?
बराबर मदिरा का एक घूंट।" 1

सर्वहत इन्द्र और वरुण से रोटी व मदिरा न मिल पाने के कारण विक्षिप्त सा हो जाता है और उन्हें डाँटते हुए कहता है -

" तुम क्यों आए हो
बोलो क्यों आए हो?
जमे हुए रक्त पर
अपनी संवेदना का अमृत छिड़कने

---

* हैडफील्ड : साइकोलोजी एण्ड मारल्स : पृ. 17

1. दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. 53

या केवल दृष्य परिवर्तन के लिए
बोलो,
उत्तर दो
- जाओ
मेरे राजमहल से निकल जाओ
फौरन निकल जाओ
जाओ - ।" *

वरुण और इन्द्र कुपित होकर सर्वहत पर झपटते हैं किन्तु ब्रह्मा और ब्रह्मा और विष्णु का उपहास उड़ाता हुआ वह कहता है -

" ओह ।
अब समझा
मैं समझ गया
नगर में तुम्हें कहीं भी
मदिरा या अन्न नहीं मिल पाया
तुम भी यहाँ इसीलिए आए हो
है ना," 2

सर्वहत विक्षिप्त सी हंसी हंसता हुआ पागलों सा शोर मचाते हुए नाचते हुए कहने लगता है -

"तुम भी बुभुक्षित हो
मैं भी बुभुक्षित हूँ
हम सब बुभुक्षित हैं

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ.54
2 - वही - पृ.54

ये सारी दुनिया बुभुक्षित है .... ।
खाओ - खूब खाओ
यहाँ सब कुछ है
सब कुछ है - ।
देखो ये महल है ।
कंगूरे है
कलश है
इन कलश कंगूरों को खाकर ही
क्षुधा शान्त होगी
वरन भूखे रह जाओगे
हाँ हाँ -SSS ।"*

ब्रह्मा के द्वारा यह पूछे जाने पर कि वह कौन है, सर्वहत हंसी हंसता हुआ कहता है -

"मैं कौन हूँ
इस स्थिति में
मुझको यह सोचना होगा
शायद मैं राजा हूँ
शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ
शायद मैं इस राज्य की प्रजा हूँ
या शायद मैं कुछ भी नहीं हूँ
और सब कुछ हूँ ।"[2]

"अग्निलोक" में चरण राम की दिग्विजय यात्रा का समाचार

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : पृ. 56
2 ~~भारतभूषण अग्रवाल~~ —वही— : अग्निलोक : पृ. 32

सुनकर उन्मादग्रस्त हो जाता है और सीता के सामने कूद पड़ता है । उसकी वेशभूषा आदिवासी वीरों के सदृश्य है । सीता के द्वारा प्रश्न किए जाने पर कि वह कौन है वह हंसता हुआ कहने लगता है -

" कौन है चरण?
किसने कहा, मैं चरण हूं?
क्यों मैं चरण दीखता हूं
हः हः हः हः
मैं चरण नहीं हूं देवी
मैं भूत हूं भूत ।" [1]

चरण जब सीता के मुख से स्वयं को पागल हो जाने की बात सुनता है तो कहने लगता है -

"क्यों पागल होने में क्या बुराई है
देवी । मैं तो कहता हूं
तुम भी पागल हो जाओ
बड़ा आनन्द आता है
सब झंझट छूमन्तर
यह देखो, यों धू ऊ ऊ ऊ ऊ ।" [2]

राम की दिग्विजय यात्रा का स्मरण करके वह कहने लगता है -

" आगे-आगे मैं
और पीछे पीछे अश्वमेध का घोड़ा

---

1 भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलोक : पृ. 32
2 - वही - पृ. 33

दोनों दिग्विजय को निकलेंगे
तुम देख लेना देवी
मैं इस भूत को सम्वत बना दूंगा
और तीनों लोकों की सम्पत्ति लूटकर
अपने खेत में बो दूंगा ।' [1]

सीता जब चरण के अस्वस्थता की बात कहती है तो उनका उपहास उड़ाता हुआ वह चरण कहता है -

'यह कौन सी नयी बात है
अरे, अब तो सभी अस्वस्थ है
तभी तो मैं देखने आया हूं
और सबकी आंख बचाकर पीछे से छूट आया
कैसा बुद्धू बनाया
है न देवी
तुम विश्राम करो
बस मैं यहां बैठा बैठा गीत सुनाऊंगा
सुनोगी न ।' [2]

चारण जब सीता के द्वारा घर जाकर विश्राम करने की बात सुनता है तो कहने लगता है -

' जाऊं
अरेहां, मैं जाने के लिए ही तो आया था

---

1 भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 33
2 - वही - पृ. 34

मैं तो भूल ही गया था कि मुझको जाना है
तुमने स्मरण दिला दिया - साधु-साधु
देखो न देवी, यह धनुष बाण, वह परशु, यह खड्ग
यह साज सज्जा
अश्वमेध के घोड़ों से बढ़कर है न
बस तो मैं चलता हूँ
अब दिग्विजय के बाद लौटूंगा
नहीं, अब नहीं लौटूंगा ।" *

"उर्वशी" में पुरूरवा उर्वशी के विरह में उन्माद ग्रस्त हो जाता है अपने प्रिय से अतीत में महामिलन के सुख की अनुभूति पुरूरवा ने की थी अब उसके अभाव में तीव्र विरह की चिंगारियाँ उड़ रही है । प्रिय को अपने अन्दर बसाकर उसके पश्चात् उसके अभाव की तीव्र वेदना जगाता हुआ पुरूरवा

"चली गयी? सब शून्य हो गया? मैं वियुक्त विरही हूँ ।"[2]

इस प्रकार पुरूरवा अपने उच्चस्थ प्रिय [उर्वशी] से ऊपर उठने का असफल प्रयत्न करता हुआ बार-बार व्याकुल हो उठता है -

"विषद व्याधिनी की जीवन में तुझको कहीं मिली थी ।"[3]

उन्मत्त पुरूरवा प्रेम संयोग सुख की स्मृति, विषाद आदि के

---

* भारत भूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 36-37
2 दिनकर : उर्वशी : पृ. 139
3 दिनकर : उर्वशी : पृ. 144

मिश्रण से हाहाकर की ध्वनि ही दिखाई-सुनाई देती है ।

विरही पुरूरवा उषा आगमन से रात्रि के सुखों से उत्पन्न वेदना को व्याप्त निर्जन कन्दरा में अनुभव करता है । एकान्त प्रान्त उसके आध्यात्मिक विकास में सहायक होता है -

"दिनभर लुटा प्रकाश, विभावसु भी प्रदोष आने पर
सारी रश्मि समेट शैल को पार उतर जाते है
बैठ उसी एकान्त प्रान्त, निर्जन कन्दरा में
अपना अन्तर्मग्न रात में उद्भासित करने को ।
तो मैं ही क्यों रहूं सदा तपता मध्याह्न-गगन में
नये सूर्य को क्षितिज छोड़ नभ में आने दो ।" *

सहजन्या सखी उर्वशी की मिलनोत्कण्ठा से व्याप्त उसकी स्थिति को बताते हुए कहती है -

"मुख सरोज मुस्कान बिना आभा-विहीन लगता है
भुवन मोहिनी श्री का चंद्रानन मलीन लगता है ।"[2]

सहजन्या अपनी सखियों से वार्तालाप करती कहती है कि सुन्दर उर्वशी देवसभा में संचरण करती हुई योगियों की साधना भंग कर देती थी किन्तु जब से उर्वशी ने पुरूरवा को देखा है तब से वह निश्चित हो गयी है । उसकी दयनीय स्थिति है -

" सो जो हो, पर प्राणों में उसके जो प्रीति जगी है,
अन्तर की प्रत्येक शिरा में ज्वाला जो सुलगी है ।

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 442 2 - वही - पृ. 12

छोड़ेगी वह नहीं उर्वशी को अब देव निलय में
ले जायेगी खींच उसे नृप के वात्सल्य में ।" *

उर्वशी में जीवन-मोह का भी उन्माद भरा चित्रण हुआ है । उर्वशी पुरुरवा के सम्मुख असफल होकर तीव्र मोह से ग्रस्त सम्पूर्ण सृष्टि में उसी को अभिव्यक्ति देखती है -

"अरी, जली मैं जली, अभागे । और तनिक पानी दे
महराज । मुझ हतभागी का दोष नहीं है ।"[2]

"सूर्यपुत्र" में कुन्ती विरही है । अपने सुहाग के निमित्त सूर्य के पुत्र को अपने से पृथक होते देखकर वह विचलित हो जाती है पुत्र के छिन जाने पर स्वयं में मोह से उत्पन्न वेदना की जागृति कुंती में होती है । कुंती पुत्र से विस्तीर्ण विरह की पीड़ा में डूबी हुई विषाद एवं निराशा के थपेड़े खाती है -

" पागल सी पृथा कोसती रही सूर्य को
पिता और अभिभावक पर फेंकती रही
क्रोध के विष बुझे बाण
आँखों से निकलती रही बिजलियाँ
हाँफती रहीं
विफरती रही घायल सिंहनी सी
श्लथ और
निष्प्राण ।"[3]

---

* दिनकर : उर्वशी : पृ. 13 2 - वही - पृ. 133
3 जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 21

पुत्र विरह से उत्पन्न करुण चीत्कार कुंती के प्राणों में गूंजती हुई उसे व्यथित कर देती है -

> "पृथा विचलित हुई, फिर अपनी विवश आँखों से
> पहले देखा शिशु
> फिर सखी की ओर ।" *
>
> स्मरण हो सखी से मौन समझौतेक के हस्ताक्षर
> लिपट गयी पागल सी आधी सखी से सम्पूर्ण शिशु से ।"[2]

गीले हृदय से उठते सागर के अश्रु की धारा में वह अपने पुत्र को सहलाती है -

> " चुम्बन और चुम्बन और चुम्बन और मौनालाप
> अश्रु की अनवरत धारा में
> भीग गया जननी पृष्ठ
> और शिशु शरीर ।"[3]

....

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ० 22
2 - वही - पृ० 22
3 - वही - पृ० 22

तृतीय अध्याय

समकालीन नाट्य काव्यों में मिथक की मनोवैज्ञानिक भूमिका

1 शिव का मिथक

2 राम का मिथक

3 कृष्ण का मिथक

4 अन्य मिथक

4.1 उर्वशी का मिथक

4.2 विश्वामित्र का मिथक

4.3 नचिकेता का मिथक

5 ऐतिहासिक मिथक

6 सृष्टि मिथक

समकालीन नाट्य काव्यों में मिथक की मनोवैज्ञानिक भूमिका :

समकालीन नाट्य-काव्यों के परिप्रेक्ष्य में मिथकों का प्रयोग सामान्य प्रवृत्ति भले नहीं, पर एक विशिष्ट प्रवृत्ति अवश्य कही जा सकती है । यथार्थ और वास्तविकता के प्रति अधिक आग्रह होने के कारण विवेच्य नाट्य-काव्यों में मिथकीय रूपान्तरण, यथार्थ के दंश को एक ओर और दूसरी ओर विविध वैचारिक आयामों को उद्घाटित करते हैं । दूसरे शब्दों में, यह मिथकीय रूपान्तरण एक ऐसी यथार्थ दृष्टि है जिसमें यथार्थ और आंतरिकता को रचनात्मक धरातल पर किया गया है ।

मिथ जैसा कि युंग का कथन है किसी भी जाति के "जीवित स्वप्न " होते हैं जो यह तथ्य प्रकट करते है कि मिथक, यथार्थ और स्वप्न के द्वन्द्व को रेखांकित करते हैं । यही कारण है कि मिथ कभी यथार्थ हो जाते हैं और यथार्थ कभी मिथ का रूप ले लेते हैं । मिथ और यथार्थ का यह अन्योन्य संक्रमण उसकी प्रासंगिकता को युगानुकूल भी बनाते हैं और इस अर्थ में, मिथक किसी भी जाति के अवचेतन में, बिम्बों, प्रतीकों और आदि रूपों { आर्किटाइप्स } के द्वारा गहरे पैठे रहते हैं जो बार-बार मानव चेतना को आन्दोलित एवं क्रियाशील करते हैं अत: सांस्कृतिक प्रक्रिया में मिथकीय-संवेदन कभी धूमिल नहीं होता है क्योंकि कोई भी जाति इन मिथकों के द्वारा अपनी समष्टि अस्मिता को पहचानने का प्रयत्न करती है । इसी अर्थ में मिथ सामूहिक अचेतन के अभिन्न अंग है । कला और साहित्य मिथ की इसी सांस्कृतिक-प्रक्रिया को व्यक्ति और समूह-मन के धरातल पर नए अर्थ सन्दर्भों के साथ अभिव्यक्त होते हैं । मिथ का रूपान्तरण उसकी " लोच शक्ति " का ही प्रतिरूप है, जिसके द्वारा मिथक " काल " का अतिक्रमण करते हैं और कोई भी महान " कृतिकाल " को इसी अर्थ में अतिक्रान्त करती है । ऐसी कालजयी " कृतियाँ " केवल वर्तमान और अतीत तक ही सीमित नहीं रहती है, पर वे काल की एक आयामिक गतिशीलता में अतीत, वर्तमान और भविष्य में अर्थवत्ता प्राप्त करती है जैसे महाभारत, रामचरित मानस, इलियड, डिवाइन कामेडिया, पेराडाइज लास्ट आदि इसी प्रकार की मिथक रचनाएँ है ।

जब हम मिथक को अपने समय का रचनात्मक सन्दर्भ देते हैं, तो उस समय किसी भी मिथक की अर्थवत्ता दो समानान्तर तत्वों पर आधारित होती है । एक तत्व मिथ की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं ब्रह्माण्डीय परिप्रेक्ष्य जो समष्टि रूप से, मिथकी बहु आयामी व्यापकता को चरितार्थ करते हैं । अपने समय की आवश्यकता के अनुसार मिथ का

रूपान्तरण होता है । इस सन्दर्भ में " आदि रूपों " या " आर्किटाइप " को लेना भी आवश्यक है क्योंकि मिथकीय चेतना और सर्जना में ये " आदि रूप " सामूहिक अचेतन के ऐसे तत्त्व है जो अग्राह्य और दमित तत्त्वों को एकत्र होने पर " जटिलताओं " को उत्पन्न करते हैं और ये जटिलताएं आदि रूपों का सृजन करती है जो सामूहिक अचेतन के प्रमुख मानस तत्त्व है । ये आदि रूप अपना सन्दर्भ बदल कर आ सकते हैं क्योंकि आजके तनावपूर्ण जीवन में इनका अस्तित्व उतना ही सत्य है जितना प्राचीन और आदि में था । आदि रूप केवल मानस ऊर्जा के स्त्रोत ही नहीं है पर बाह्य जगत के परिज्ञान एवं बोध के भी स्त्रोत है । ये आदि रूप स्वयं ही प्रति प्रक्षेपित होते हैं और ऐतिहासिक प्रक्रिया में सदैव घटित होते हैं । इस प्रकार के आदि रूप है - अमीना [काम], अमिनस [रति], राक्षस, शैतान, हीरो, प्रकाश, वृत्त, धरती, आकाश जो सदा साहित्य और कला में रचनात्मक संदर्भ पाते हैं । नायक, महामाता, असुर आदि के आदि रूप जहाँ एक जातीय अचेतन के अभिन्न अंग है वहीं ये व्यक्ति मन के सामान्य ऊर्जा स्त्रोत है । नायक या हीरो का सम्बन्ध " महाभारत " से है जो उसका प्रेमी भी है और पुत्र भी, और इस रूप में वह " महामाता " पर अधिकार कर अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जो प्रत्यक्ष रूप से मातृसत्ता से पितृ-सत्ता की ओर संक्रमण का सूचक है । हीरो की यह उत्पत्ति आगे चलकर अनेक प्रकार के नायकों को विकसित करती है जो क्रमशः सांस्कृतिक समूह-मन के अभिन्न अंग होते जाते हैं । हीरो के ये विविध रूप साहित्य में इतने स्पष्ट है कि वे युगीन प्रभावों के द्वारा रूपान्तरित होते हैं ।

उपरोक्त सन्दर्भ के प्रकाश में कुछ महत्त्वपूर्ण काव्य कृतियाँ है जैसे, एक कंठ विषपायी, संशय की एक रात्रि, सूर्यपुत्र, उत्तर प्रियदर्शी, सूखा सरोवर आदि । इन रचनाओं में मिथकीय प्रसंग एक " माध्यम " के रूप में आते जो आपके वैचारिक द्वन्द्व को प्रकट करते हैं । मिथकों का यह वैचारिक द्वन्द्व समकालीन रचना सन्दर्भ को नयी अर्थवत्ता प्रदान करता है ।

1. <u>शिव का मिथक :</u> .. .. ..

" एक कंठ विषपायी " में प्रजापति दक्ष से सम्बन्धित शिव की कथा है जिसमें कवि ने वर्तमान जीवन के कुछ मूल्यों का अवतरण करते हुए परम्परा से चिपटे शिव रूप दिव्य मानस के अन्तर्द्वन्द्व की कथा कही है ।

मिथकीय दृष्टि से शिव, सती और दक्ष यज्ञ की कथा कई ग्रन्थों में प्राप्त होती है, किन्तु विष्णु के द्वारा सती के देह को खण्डित करने का वर्णन मात्र लोक विश्वासों के आधार पर प्राप्त होता है जिसके अनुसार विष्णु ने जब सती की मृतदेह के टुकड़े-टुकड़े कर डाले, तब देश में जगह-जगह उसके एक सौ से अधिक तीर्थ-स्थान बन गए ।

वैदिक साहित्य में रुद्र और दक्ष का उल्लेख तो है * परन्तु उनके द्रोह का उल्लेख नहीं मिलता । वैदिक साहित्य में रुद्र का

---

* ऋग्वेद : 61502 शतपथ ब्राह्मण 2/4/4/1 और 6/8/1/14

व्यक्तित्व प्रबल नहीं है, परन्तु पुराणों में उनकी गणना त्रिदेवों में होने लगती है । दक्ष-यज्ञ विध्वंस की कथा उस संघर्ष की सूचक है जो शिवों के यज्ञों में विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के साथ यज्ञ-भाग प्राप्त करने के लिए करना पड़ा था । पुराणों में भी दक्ष-यज्ञ विध्वंस की कथाएं वर्णित हैं । ब्रह्म पुराण *, पद्मपुराण,[2] शिवपुराण[3], वायवीय संहिता,[4] श्रीमद्भागवत पुराण[5], लिंग-पुराण[6], स्कन्द पुराण,[7] कूर्म पुराण [8], ब्रह्मवैवर्त पुराण [9], में सती के यज्ञ कुण्ड में कूदकर देह-त्याग तथा दक्ष यज्ञ - विध्वंस का वर्णन आया है ।

उपर्युक्त ग्रंथों में वर्णित कथा का आश्रय अपने मूल रूप में ही लिया गया है । अपने अपमान से क्षुब्ध होकर दक्ष यज्ञ के विध्वंस की भूमि को कवि ने अपने काव्यों का मिथकीय आधार बनाया है ।

एक कंठ विषपायी की समस्या प्रमुख रूप से स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों की समस्या है । काव्य में दो दम्पत्ति है - शिव तथा सती और दक्ष तथा वीरिणी । पुराणों में सती को शिव की आदि

---

* ब्रह्म पुराण अध्याय 34, 39,109

2 पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड अध्याय 5

3 शिव पुराण, रुद्र संहिता सती खण्ड अध्याय

4 वायवीय संहिता अध्याय 18,23

5 श्रीमद्भागवत पुराण 4-2-1-34

6 लिंग पुराण अध्याय 100

7 स्कन्द पुराण काशी खंड उत्तरार्द्ध अध्याय 87-89

8 कूर्म पुराण पूर्वार्द्ध - 14-15

9 ब्रह्मवैवर्त पुराण अध्याय 38 और 43

शक्ति प्रकृति के रूप में वर्णित किया गया है । शिव और सती शाश्वत नर और नारी के प्रतीक है । इन्हीं के विभ्रांत एकान्त मिलन से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है । पुरा शिव और सती के इसी रूप को कवि ने नर और नारी के सम्बन्धों को पृष्ठभूमि में उपस्थित किया है । पिता दक्ष के घर में यज्ञ हो रहा है । सती की उसमें भाग लेने की प्रबल इच्छा है, किन्तु उसके द्वारा पति को यज्ञ में निमंत्रण नहीं मिला है, सती द्वन्द्व ग्रस्त है, एक ओर माता-पिता और दूसरी तरफ पति का सम्मान । वह किसका वरण करें । सती का द्वन्द्व समस्त नारी जाति का द्वन्द्व है । पिता और माता के स्नेहातिरेक से सती यज्ञ में जाने की इच्छा प्रकट करती है । स्थितियाँ असाधारण है और महादेव उसे रोकना चाहते हैं किन्तु पुत्री को पिता के घर जाने से रोकना एक सामाजिक स्थिति का अतिक्रमण भी होगा । फलस्वरूप जाने की अनुमति दे देते हैं । वहाँ जाकर वह अपने पति का प्रत्यक्ष अपमान देखती है और उसके पति के प्रति अनन्य सम्मान की भावना को चोट लगती है । " मेरा घर है यह । मेरा क्या । मैं तो प्रजा में खड़ी होकर भी । दर्शक की तरह यज्ञ देखूं तो । मेरी मर्यादा नहीं घटती । पर मेरे महादेव शंकर का स्थान । वहाँ । सर्वोपरि आसन के निकट रहे । " *

सती के इस कथन से पति के अपमान के कारण उत्पन्न दारुण अनुभूति के दंश का सहज ही अनुमान लग जाता है । इस दंश को प्राण द्रावी पीड़ा, वह नहीं सह पाती और अपने देह का

---

* दुष्यंत कुमार : एक कंठ विषपायी : 33

विसर्जन कर देती है उधर शिव का क्षोभ तथा क्रोध एक भावुक और समर्थ पति का क्रोध है जो अपनी पत्नी के कारण बड़े से बड़ा ध्वंस करने को तैयार हो जाता है ।

2 राम का मिथक : . ...

राम का दिव्य पुराचित्र ? चेतना का का महिमामय महिमामय प्रतीक है संशय की एक रात, प्रवादपर्व, अग्निलोक, शम्बूक, सीता समाधि, जानकी जीवन, एक विश्वास और आदि नाट्य काव्यों में इस प्रतीक की युगानुरूप व्याख्याएं हुई है ।

"संशय की एक रात" का मुख्य का आधार संशयात्मक वृत्ति है । "अंतरीप मनस्थल का" - नरेश मेहता ने कथ्य की दृष्टि से इसको उपयुक्त समझा किन्तु इस स्थल पर अत्यंत मौलिक और नाटकीय आयोजन किया है । दशरथ और जटायु के अवतरण का दशरथ ने राम वन गमन के उपरांत राम के प्रति अपने स्नेह के प्राणत्याग दिए थे । वाल्मिकी कि रामायण और तुलसी के राम चरित मानस में उन्होंने प्रस्तुत सन्दर्भ को ग्रहण किया है । वाल्मिकी रामायण में रावण-वध और सीता की अग्निपरीक्षा के उपरांत इन्द्रलोक से राजा दशरथ राम को अपना आशीर्वाद देने आते है और महादेव शंकर राम को उन्हें प्रणाम करने का आदेश देते है । तदुपरांत निर्मल वस्त्र धारण किए, अपनी दिव्य शोभा से ये दीप्यमान विमानासीन राजा राम की प्रशंसा और राम की प्रार्थना पर कैकेयी को अपने मरण से पूर्व कहे गए शब्दों --"मैं पुत्र सहित तुम्हारा परित्याग

'करता हूँ"--को वापिस लेते हुए प्रसन्न मन से पुनः देवलोक को चले जाते है ।"

तुलसी के राम भी राजा दशरथ से आशीर्वाद लेते है । तुलसीदासजी ने इसका एक विशिष्टकरण भी किया है । मानस के अनुसार प्राणत्याग करने के समय राजा दशरथ का मन राम के में लगा था, इसी कारण उनकी मुक्ति न हुई । अब राम ने उन्हें "अपने स्वरूप का दृढ़ ज्ञान, करा दिया" क्योंकि "सगुणोपासक मोक्ष नहीं चाहते", उन्हें राम अपनी भक्ति का परिचय देते है । राम की इसी भक्ति को प्राप्त कर उन्हें इष्टदेव-भाव से बार-बार प्रणाम करते हुए दशरथ पुनः देवलोक चले जाते है ।* इस तरह वाल्मीकी और तुलसी ने दशरथ का रावण-विजयोपरांत आगमन दिखाया है । युद्ध से पहले सेतुबंध के समय नहीं । कवि ने द्विधाग्रस्त राम को सेतुबंध के समय नहीं । कवि ने द्विधाग्रस्त राम को युद्ध के औचित्य का प्रतिपादन कराने के लिए आयोजित किया है । वैयक्तिक एवं सामूहिक बोध के परस्पर टकराव के कारण विघटन मुख्य रूप से दृष्टव्य है । कवि ने एकांतिक चिंतन और सामूहिक बोध को तहतक पहुँचने का प्रयास किया है । अंततः सामूहिक निर्णय वैयक्तिक अनिर्य पर आरोपित हो जाता है । इसी हेतु प्रस्तुत रचना के आधार पर कहना युक्ति संगत है कि राम की सम्पूर्ण संवेदना ऐकांतिक होते हुए भी सामूहिकता से ओतप्रोत है । विभीषण ने जहाँ युद्ध की अन्तिम अनिवार्यता प्रमाणित की है । वहाँ खण्डित संशय को भी स्वीकारते हुए

---

* डा. विनोद गोदरे : आधुनिक प्रबन्धकाव्य संवेदना के धरातल : 102

अन्ततः बहुमत को महत्ता मानी है । यथा कृति में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि "राम अपने संशय को अपनी नियति न मानकर सामूहिक विकल्प में बदलना चाहते है ।" जब की विभीषण का संशय उसकी नियति बनकर उसे बारंबार संघर्ष की ओर प्रेरित करता है, राम अपने संशय को सामूहिक निर्णय के विकल्प में परिणत कर लेते है ।

रामायण में हुए महासंघर्ष (युद्ध) के मूल में अपमान-बोध का सम्बन्ध रावण से है । "संशय की एक रात" का कथ्य रामायण का सेतुबंध की एक रात की घटना तक सीमित है । परन्तु स्थिति प्रस्तुतीकरण से पूर्व कथानक के अंश भी समाविष्ट किए गए है । इसमें अपमान और प्रतिशोध के कारण ही राम-रावण का युद्ध हुआ हो । "अपमान" होने के तुरन्त बाद ही प्रतिशोध स्वरूप संघर्ष हुआ हो, ऐसा अपेक्षित अथवा अनिवार्य नहीं । उपयुक्त स्थिति एवं सामर्थ्य के एकत्रित होने पर संघर्ष होता है । पूर्व की घटनाएं अथवा सब स्थितियां पृष्ठभूमि का कार्य करती है ।

"संशय की एक रात" में एक ओर राम है जो अपनी व्यक्तिगत समस्या के लिए एक भीषण युद्ध का आव्हान करने में कोई औचित्य नहीं खोज पाते ---

> "युद्ध नहीं होगा । क्योंकि सीता का हरण
> राम की व्यक्तिगत समस्या है ।"*

---

* नरेशमेहता : संशय की एक रात : पृ. : 20

उनका अपना विवेक यह स्वीकार करने के लिए भी तैयार नहीं है कि सीता की मुक्ति के लिए अनेक निर्दोष व्यक्तियों को युद्ध की विनाशकारी ज्वाला में झोंक दिया जाय।

"धनुष वाण खड्ग और शिर स्त्राण । मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
बाण-विद्ध पांखी-सा विवश । साम्राज्य नहीं चाहिए
मानव के रक्त पर पग धरती आती। सीता भी नहीं चाहिए ।"*

दूसरी ओर सामान्यजन की यातनाओं और संघर्ष का प्रतिनिधित्व करनेवाले हनुमान है, जो राम की व्यक्तिगत समस्या को सामान्यजन की मुक्ति की समस्या के रूप में देखते है :

"रावण-अशोक वन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता ।"[2]

आधुनिक युग की निरर्थकता-बोध की पीड़ा में डूबे विभीषण का भी अपना एक वैचारिक पक्ष है जो इस निर्णय पर पहुंचे है :

"काम सामूहिक अंधता है, और
संशय वैयक्तिक अंधता है ।"[3]

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. : 32
2. नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. : 64
3. नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. : 78-79

लेकिन "संशय की एक रात" में इन तमाम व्यक्तियों के अतिरिक्त भी कोई शक्ति है जो मानव-नियति और मानव-निर्णयों को प्रभावित करती है, मानव को दिशाबोध कराती है । वह शक्ति है इतिहास । राम इस शक्ति को अपने व्यक्तिगत विवेक के लिए चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं । साधारण जन की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत हनुमान के लिए यह इतिहास मानव-मुक्ति की दिशा में बहनेवाला ऐसा शक्तिशाली प्रवाह है, जिसके साथ विरोध की अपेक्षा तादात्म्य की स्थिति काम्य है । राम इतिहास के प्रवाह के प्रति शंकित है, किन्हीं अंशों में उससे आतंकित भी है :

> फिर संघर्ष । फिर संहार ।
> इस ऐतिहासिक विषमयता का कौन सा प्रतिकार?
> इस चक्र का कोई नहीं है अन्त । हनुमत वीर ।*

लेकिन हनुमान इस समस्या पर बिल्कुल भिन्न प्रकार से सोचते हैं, वे मानते हैं कि इतिहास की दिशा यदि संघर्ष की ओर उन्मुख है तो वह स्थिति अपने आप में अनपेक्षित नहीं है :

> सम्भव है । हमारे कारण ही । अनागत युद्धों की नींव पड़े । पर
> इस डर से । क्या हम न्याय और अधिकार छोड़ दें? नहीं[2]
> नहीं महाराज ।समय को करेगा प्रतिकार । हर बार ।
> अनुचित का ।

---

* नरेश मेहता;संशय की एक रात : 67
2. " " " " : 66

उपरोक्त सन्दर्भ में महत्त्व की बात यह है कि कवि किसी भी स्थिति पर एक से अधिक दृष्टिकोणों को आमने-सामने रखकर उनकी टकराहट से उत्पन्न नये विचारों के व्यक्त होने की स्वतंत्रता में विश्वास करता है। विशेषता यह है कि राम का पक्ष कमजोर दिखाई देता है। वे युद्ध-विरोधी है, किन्तु अन्तत: युद्ध के पक्ष में परिषद का निर्णय स्वीकार कर लेते है। काल की दिशा को नियन्त्रित करने वाले राम जैसे काल प्रवाह के समक्ष अपने आपको असमर्थ पाते है। राम का खण्डित व्यक्तित्व आधुनिक व्यक्ति के अन्तर्विरोधों का प्रतिनिधित्व करता है।

कवि ने अपने समकालीन संकटबोध की व्यंजनाके लिए प्राय: महाभारत के कथा प्रसंगों और प्रतीकों का अपनी कविता में प्रयोग किया है। दो विश्वयुद्ध के बाद मनुष्य की अस्तित्वगत दुश्चिन्तायें महाभारत की युद्धजन्य भयावह स्थिति के अधिक अनुरूप दिखाई देती है। अनास्था, अविश्वास, निराशा, विषाद और अनिर्णय के क्षणों में दिशाहीनता के अनेक मार्मिक प्रसंग महाभारत की कथा में सहज ही उपलब्ध हो जाते है। ये प्रसंग आधुनिक मानव की संत्रासपूर्ण मन:स्थितियों को उजागर करने में पूर्ण समर्थ है। लेकिन राम मे ऐसे प्रसंगों का सर्वथा अभाव है। राम का चरित्र उच्च मानवीय आदर्शों का पुंजीभूत रूप है। मानव में सहज कमजोरियों के स्थान पर पवित्रता और महानता है। उनके जीवन में अनिर्णय, द्विधा और संदेह के क्षण नहीं है। राम का विवेक इतना प्रखर और उनके व्यक्तित्वमें इतनी अपराजेय दृढ़ता है कि वे सामान्यत: अपने संकल्प, अथेन निर्णय से पीछे नहीं हटते। ऐसी स्थिति में अपने परम्परागत रूप में राम आज के मनुष्य के खण्डित व्यक्तित्व का प्रतिनिधत्व

नहीं करते । द्विधा और अनिर्णय की मन:स्थिति में डूबे, समय की धारा के समक्ष अपने आपको विवश और असमर्थ पाने वाले राम अपने परम्परित रूप से बहुत कुछ भिन्न होने के बावजूद यदि हमें अविश्वसनीय नहीं दिखाई देते तो इसकी मुख्यता यही है कि यहाँ भी राम की बेचैनी का प्रमुख कारण उनका चिन्तन है ।

लंका पर आक्रमण की पूरी तैयारियाँ हो चुकी है । समुद्र का सेतु बंध जाने के साथ ही विराट युद्ध का आयोजन हो चुका है । राम की चेतना को आन्दोलित करने वाला अन्तिम निर्णय का अन्तिम क्षण उपस्थित हो चुका है । कल युद्ध, प्रारंभ होने के साथ ही अगणित निर्दोष व्यक्तियों का संहार अनिर्णय बन जायेगा । राम का अपना विवेक इस युद्ध को स्वीकार नहीं कर पाता । उनका युद्ध-विरोधी विचार इतना प्रबल है कि यदि सीता को पाने का एकमात्र मार्ग युद्ध है तो वे सीता को त्यागने के लिए भी अपने आपको तैयार कर लेते है । राम के इस रूप को उनके परम्परागत रूप के साथ संगति बिठाई जा सकती है, किन्तु जब परिषद् युद्ध का निर्णय करती है तो राम उसका विरोध नहीं करते, इसके विपरीत वे परिषद् के निर्णय को अपनी स्वीकृति प्रदान करते है । यहाँ वे अपने परम्परागत रूप से भिन्न दिखाई देते है । अपने सहयोगियों, अनुगामियों और अनुचरों के समक्ष असमर्थ होता बड़ा करुण और विडम्बनापूर्ण है । वस्तुत: राम की स्थिति-परिस्थिति एक समसामायिक सन्दर्भ भी है । कवि में व्यक्ति स्वातन्त्र्य के प्रति एक अतिरिक्त जागरूकता के दर्शन होते है । परिषद् के युद्ध सम्बन्धी निर्णय को राम न तो अस्वीकार कर पाते है और न उस निर्णय को स्वीकार कर लेने के बाद अपने अन्तर्द्वन्द्व से मुक्ति पाते है । यूं परिषद कायुद्ध

सम्बन्धी निर्णय राम को एक विशिष्ट सुविधा प्रदान करता है । वे यह सोचकर आश्वस्त हो सकते थे कि यह निर्णय मेरा अपना निर्णय नहीं है, परिषद् का है और इसके पीछे प्रजा तांत्रिक मूल्य है । लेकिन यदि राम इस प्रकार सोचकर अपनी बेचैनी से मुक्ति पा जाते तो उनकी बहुत बड़ी आत्म विडम्बना होती । क्योंकि हमारी दो शताब्दियों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रजातंत्र के स्तम्भ समझे जाने वाले देशों में अपने प्रजातांत्रिक निर्णयों द्वारा ही दूसरे देशों की स्वतंत्रता का अपहरण किया है । उन्हें अपना उपनिवेश बनाया, वहाँ की सम्पत्ति को लूट खसोट कर वहाँ के सामान्यजन को मनुष्य से एक दर्जा नीची जिन्दगी जीने के लिए मजबूर किया । राम जानते हैं कि प्रजातांत्रिक मूल्यों की दुहाई देकर अपने दायित्व से मुक्ति नहीं पाई जा सकती । वे जानते है, कि एक चालाक और महत्वाकांक्षी लोकनेता राष्ट्र की समग्र जनता को एक विशेष तनावपूर्ण मानसिक स्थिति में लाकर उसपर अपने निर्णय थोप सकता है । अपनी महत्वाकांक्षाओं की सिद्धि के लिए समग्र राष्ट्र को अपनी इच्छा के अनुसार परिचालित कर सकता है । इसी कारण वे सोचते है:

"सत्य को मिथ्या पताकाएँ लिये ।
अपने स्वार्थ के दो खड्ग जन के हाथ में ।
जो भी लड़ेगा युद्ध ।
होगी आस्था की वंचना ही ।
बन्धु ।"*

---

* नरेश मेहता : संशय की एक रात : पृ. :24

"संशय की एक रात" में राम इस तथ्य से अवगत है कि हर व्यवस्था के अपने कुछ अन्तर्विरोध होते है, कुछ भीतरी असंगतियां होती है । प्रजातंत्र भी इसका अपवाद नहीं है । इन असंगतियों को भी घोषित व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में प्रजातांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हो जाने के बावजूद देश का प्राय: हर प्रबुद्ध और संवेदनशील नागरिक बड़ी बेचैनी के साथ यह अनुभव करता है कि देश का प्रजातांत्रिक अवसरवादिता, भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थों के खुलकर खेलने का अखाड़ा बन कर रह गया है । विरोधाभास यह है कि देश का कोई भी नेता इस स्थिति के लिए अपने आपको उत्तरदायी नहीं मानता । झूठे तर्कों द्वारा सत्य पर पर्दा डाला जा रहा है । छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए अन्तरात्मा की आवाज को दबाया जा रहा है । ऐसी स्थिति में परिषद् के प्रजातांत्रिक निर्णय को आत्म-संघर्ष के स्तर पर स्वीकार करने वाले राम एक नये प्रकार के दायित्व बोध का परिचय देते है । राम की सजग आत्मचेतना ही उनकी बेचैनी का कारण है ।

वाक युद्ध की अपेक्षा राम का आंतरिक संघर्ष महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया अपेक्षाकृत दुष्कर और कष्ट साध्य होती है । राम के अन्तर्द्वन्द्व की समाहिति में हमारे वर्तमान और समाज और राष्ट्र जीवन का एक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ अन्तर्निहित है । प्रजातांत्रिक और समाजवादी जीवन मूल्यों की बात उठाई जाती है, हमारे देश में ये दिशाहीनता और भटकाव का प्रमुख कारण है कि उन उच्च आदर्शों से हमारा जीवन परिचालित नहीं हो पाता । आंतरिक संयम के अभाव में मूल्यों के सूर्य की ऊष्मा जीवन के शिलाखण्ड तक नहीं आ पाती ।

"संशय की एक रात" में समसामयिक जीवन का सन्दर्भ परोक्ष रूप से ही प्रकट हुआ है । राम तो मात्र विडम्बना पूर्ण स्थिति पर सोचते-विचारते है । वस्तुत: यह समस्या न राजनीतिक है और न इसमें प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अन्त:स्वरूप को समझने का उपक्रम ही है । राम की व्यक्तिगत समस्या में व्यक्ति और परिवेश के संघर्ष और सामंजस्य जीवन के विस्तार और खण्डित व्यक्तित्व की करूणा तथा विचार और भाव चेतना के आंतरिक द्वन्द्व के विविध आयामों को समाहित कर पाने की क्षमता के कारण "संशय की एक रात" राम का मिथकीय प्रसंग एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

"अग्निलोक" में राम का मिथक साम्राज्यवादी नीतियों पर प्रहार करता है । इस कृति मे राम का मिथक नये रूप मे दर्शाया गया है । अग्निलोक में राम का मिथकीय सन्दर्भ सीता निर्वासन पर आधारित है । निर्वासन का प्रसंग प्रचलित वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में मिलता है । भवभूति के उत्तर रामचरित में सीता-वनवास की कथा वर्णित है । भागवत् पुराण, पद्मपुराण एवं आनन्द रामायण तथा हेमचन्द्र कृत, जैन रामायण, कालिदास कृत रघुवंश का कारण सीता द्वारा अंकित राम का चित्र बतलाया गया है । मनुस्मृति में राजा के दैवी रूप को प्रस्तुत किया गया है । महाभारत में राजा को सभी कार्यों के लिए ब्राह्मण मंत्रियों पर आश्रित माना गया है ।

वाल्मीकि रामायण में सीता के निर्वासन का कारण लोकापवाद बतलाया गया है । राम का मित्र भद्र सीता के कारण हो रही लोकनिन्दा

की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए राम को जनता की प्रतिक्रिया से अवगत कराता हुआ कहता है, "लोग कहते है कि हमको भी अपनी स्त्रियों के विषय में यह {लोकापवाद} सहना होगा, क्योंकि जैसा राजा करता है प्रजा उसी का अनुसरण करती है ।"*

भवभूति के उत्तर रामचरित में सीता निर्वासित के कारण न केवल मनुष्यों को ही राम पर क्रोध आता है, अपितु पवनपुत्र भी राम पर आक्रोश प्रकट करता है तथा राम के लिए सीता को उपेक्षा का कारण बताया गया है ।"2

श्रीमद् भागवत पुराण में कथा के वर्णन के अन्तगर्त संक्षेप में यह प्रस्तुत किया गया है लोकनिन्दा के डर से उन्होंने सीता का परित्याग कर दिया सीता पुनः राम के सम्मुख उनके यज्ञ में उपस्थित नहीं होती, वरन् लव-कुश के कुछ बड़े हो जाने पर उन्हें वाल्मीकि को सौंपकर वे पृथ्वीदेवी के लोक में चली गयी ।3

पद्मपुराण मेंपाताल खण्ड में भी सीता परित्याग-प्रसंग है ।

---

* अस्माकमपि दारेषु सहतीयं भविष्यति ।
  यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ।
  रामायण : 7,43,19
2. संधा इलिकेव नितान्तम्भ्या तेजोमयी वायुसुहृच्छ सेव ।
  निजां गमात्राभरणा नदीव ग्रीष्मेणा याता नियमेन कर्श्यम्।।
  भवभूति उत्तर रामचरितमानस
3. श्रीमद्भागवत पुराण अध्याय : ।।श्लोक ।5

धोबी के आक्षेप से राम सीता के परित्याग का निर्णय लेते हैं । " *

आनन्द रामायण में सीता परित्याग, लवकुश का जन्म,सीता का भू-प्रवेश आदि घटनाएँ प्राप्त होती है ।

हेमचन्द्र कृत जैन रामायण सीता-निर्वासन का कारण सीता द्वारा अंकित रावण का चित्र बतलाया गया है । 2

मनु-स्मृति में कहा गया है कि राजा की दैवी उत्पत्ति के साथ राज्य के सावयव स्वरूप का सिद्धान्त प्राप्त होता है । मनु राजा को सर्व-प्रथम देवताओं की अंश से समद्भुत मानते हैं और फिर अपेक्षा करते हैं कि वह तेजस्वी राजा इन्द्र, सूर्य, यम वरुण , चन्द्र और पृथ्वी के समान कार्य करें । 3

महाभारत में कहा गया है कि यदि राजा अपनी उन्नति चाहता है तो जो भी भूमि वह विजय में प्राप्त करें उसे निःस्वार्थ और विद्वान ब्राह्मण को सौंप दें । "4

कवि ने " अग्नि लीक " में नारी के सन्दर्भ में प्रेम और विवाह की समस्या को भी लिया है । सीता ने राम को स्वयंवर में वरण किया था, वह उनकी प्रेमिका थी, शास्त्र सम्मत वैवाहिक बन्धनों में बंधी परिणीता नहीं थी । प्रेमिका के रूप में राम के ऊपर वैसा ही अधिकार जैसा उसके ऊपर राम का, किन्तु राम सोते-जागते हर पल राजा ही बने रहे, कभी प्रेमी नहीं बन पायें। "5

---

* पद्मपुराण, पाताल खण्ड,सर्ग 56 श्लोक 23,25

2 हेमचन्द्र, जैन रामायण

3 इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणास्यच
चन्द्राग्ने, पृथिव्याश्च तेजोवृत नृपश्चेत ।

4 महाभारत, शान्तिपर्व 74

5 भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक,पृ. 44

अग्नि लीक में राम की दिग्विज-यात्रा और चक्रवृत्ति बन ने की विस्तारवादी मनोवृत्ति तथा उससे जुड़े रक्त-पात की भी भृत्सना की गयी है । आदिवासी वीरचरण की विसंगति और मानसिक विवृत्ति युद्ध-बोध की परिणति है । राम की विजय-यात्रा विकृति के रूप में " अग्निलीक " में शोषण पर आधारित राजतंत्रीय व्यवस्था के विरुद्ध जनवादी स्वर को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है ।

राजतंत्री व्यवस्था के यज्ञों, पुरोहितों, ऋषियों, चारणों, ज्योतिषियों आदि से घिरे तथा इनके द्वारा आरोपित ईश्वरत्व के व्यामोह में भ्रान्त, कल्पित मर्यादा, विकसित यश लिप्सा और निमर्याद महत्वाकांक्षा के कृत्रिम संसार में भटके हुए राम की शोषक साम्राज्यवादी नीति पर प्रहार किया गया है । उत्पीड़ित, अपमानित तिरस्कृत सीता की आत्महत्या के बाद प्रायश्चित की ज्वाला में तपने पर नये बोध के रूप में राम अनुभव करते है कि उन्होंने यथार्थ-निरपेक्ष जीवन पद्धति का प्रश्रय लेने के कारण पत्नी, प्रजा और पुत्रों की उपेक्षा -

" मेरी कठोरता ने ही मुझे जड़ बनाया था
थोथी मर्यादा का पल्ला पकड़कर
अपना दुःख भुलाने के फेर में
मैं प्रजा का सुख भी बिसार बैठा । " *

उन्हें गहन आघात सहकर तीखा बोध होता है कि " आरोपित ईश्वरत्व और सब मिथ्या है । धर्म, रीति, कुल परम्परा, मर्यादा, यज्ञ, श्लोक, सब जीवन को यथार्थ से काटकर कल्पित लोक में भटकानेवाले शब्द है । "[2] सत्य का साक्षात्कार होने पर राम को अहसास होता

है - कि वे अतीत के मिथ्या स्तूपों की धड़कन को बलपूर्वक दबाये हुए प्रजा, पत्नी तथा सन्तान के प्रेम से वंचित रहे । वे मिथ्या शब्दों का प्रमाण मानकर ऋषियों, पण्डितों और ज्योतिषियों को प्रजा का प्रतिनिधि समझते रहे और उनके स्वार्थ को प्रजा का सुख :

" मैं अपने जनों से असंपृक्त और विच्छिन्न
एक आत्मलीन और स्वनिर्मित लोक में छिपा हूँ
जो निर्जीव जय-जयकारों को लेकर
शून्य की कक्षा में निरन्तर भ्रम मात्र है । " *

सत्य का बोध होने पर राम अनुभव करते हैं कि वे ईश्वर नहीं है, जनता के सेवक मात्र है और जनता के तथा उनके बीच में जो भी आता है, चाहे वह शास्त्र हो, परम्परा हो, यज्ञ हो, ऋषि हो, अधिकारी हो, मार्ग का बाधक तत्व है -

" मैंने अतीत के इन्हीं स्तूपों को पूजा है
जीवन की ओर कभी दृष्टिपात नहीं किया । "[2]

कवि ने राम के ऊपर पड़े हुए ईश्वरत्व को उतारकर उन्हें मानवीय स्वर पर प्रतिष्ठित किया है । राम सोचते हैं कि :

" मिट्टी से बना एक सेवक हूँ प्रजा का
जो अपनी गति का आप ही नियन्ता है । "[3]

---

* भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक : पृ. 61

2 वही : पृ. 61

3 वही : पृ. 58

शम्बूक वध तब उन्हें अनिवार्य प्रतीत होता था । अब उन्हें महसूस होता है कि वे निपट हत्यारे है और उनके हाथों निरपराधों के रक्त से रंजित है -

" पर अब लगता है कि वह पलायन था
और जिससे जुड़ता मैं वीरता का गर्व करता आया हूं
वह वस्तुतः कायरता थी । " *

सीता के बलिदान से राम आत्मदर्शन और कल्पना के स्वनिर्मित लोक से निकल यथार्थ की सच्ची थरथराहट का अहसास करते हुए कहते हैं :

" मेरा सारा नियम - संयम आडम्बर बनकर रह गया है । "2

आत्म ग्लानि से ग्रस्त राम सीता के धरती से जुड़े, निष्क्रिय बनकर छिपे गये यथार्थ जीवन को वरणीय समझते हैं । वे सीता की उदण्ड आत्मचर्या और जीवन की सच्ची अनुभूति को अन्धेयुग की अकेली अग्निलो मानते है जिस पर प्रेम, सत्य और मुक्ति के रूप में उदात्त जीवन मूल्यों की उपलब्धि होती है :

" जीवन की सच्ची अनुभूति ही
इस अन्धे युग की अकेली अग्निलीक है
प्यार, सत्य, मुक्ति उसी लीक पर चलते हैं । "3

वे आत्म-हत्या को पलायन मानकर अपने पापों के सच्चे प्रायश्चित के रूप में राम राज्य की नयी अनुभूति से उगे उदात्त मूल्यों पर

---

* भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलीक : पृ.
2 वही : पृ. 59
3 वही : पृ. 64

आधारित करके उसे देवी के गौरव का सच्चा स्मारक बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं ।

* जानकी जीवन वाल्मीकीय रामायण की कथा से प्रभावित है । मुख्य पात्र जानकी है । कवि रामचरित मानस, भवभूति के उत्तर रामचरित तथा पुराणों से प्रभावित है । रामायण में जितने प्रसंग है कवि ने ग्रहण न करके कल्पना द्वारा अनावश्यक घटनाओं को छोड़ा है । सीता के विषय में अशुभ चर्चा के विषय को कवि ने रामायण के उत्तरकाण्ड से ग्रहण किया है । * सीता को वन त्यागने तक के प्रसंग को कवि ने रामायण उत्तरकाण्ड से लिया है ।[2] वाल्मीकि के सीता को अपने आश्रम में ले जाने के प्रसंग को कवि ने यद्यपि रामायण से ग्रहण किया है किन्तु जानकी जीवन में मुनि कुमारों से समाचार पाकर वाल्मीकि के सीता के पास आने का प्रसंग नहीं है बल्कि स्वयं वाल्मीकि संयोगवश आकर सीता को ले जाते हैं । भृगु ऋषि के शाप की कथा, श्री राम के द्वार पर कुत्ते का आगमन और श्रीराम दरबार में उचित न्याय सुनाना आदि प्रसंग वाल्मीकि रामायण के आधार पर है किन्तु इसमें कवि ने भावनाओं को युगानुरूप नया मोड़ दिया है । राजसूय यज्ञ प्रसंग को कवि ने वाल्मीकि रामाण से ग्रहण न करके अन्यत्र से ग्रहण किया है । राजसूय यज्ञ लव-कुश का राम की सेना तथा लक्ष्मण शत्रुघ्न से युद्ध आदि प्रसंग पद्मपुराण में विस्तार से मिलते हैं ।[3] इस प्रकार मिथकीय योजना रामकाव्योपर आधारित है किन्तु इसमें मौलिकता अधिक है ।

---

* वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड सर्ग 97, श्लोक 14
2 वही : सर्ग 45-46
3 पद्मपुराण - पाताल सर्ग खण्ड 124, 126, 104, 128

जानकी राम के आदर्शों पर चलनेवाली पतिव्रता नारी है । सीता तथा राम के सम्पर्क में आनेवाले पात्रों के जीवन में आदर्शों की अवतारणा भी स्वाभाविक रूप से की गई है । इन पात्रों में लक्ष्मण, उर्मिला, कौशल्या, कैकेयी आदि माताएं अरुन्धती, वशिष्ट, वाल्मीकि आदि आदर्श की रक्षा करते हुए प्रत्येक पात्र एक समाज में बंधा है । उनमें राजपुरोहित आदि पारिवारिक सदस्य की भाँति है । सीता यदि पति की आदर्श रक्षा के लिए वन में निवास करती है तो उर्मिला प्रजा को एवं परिवार के सदस्यों को शांति एवं सान्त्वना प्रदान करती है । वशिष्ठ पत्नी अरुन्धती सीता को एक मात्र बहू मानकर अपने प्राण निछावर करती है । जानकी जीवन में लव-कुश वात्सल्य मंडित होते हुए कुशल क्षत्रिय योद्धा के रूप में वर्णित है । उनमें आदर्श का पूर्ण निवास है । अंजान रहकर वे पिता से भी युद्ध करते हैं किन्तु जानने पर क्षमा याचना करते हैं ।

जानकी के मिथक से कवि विषाद जीवन को अंकित करता है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय कवि होने के नाते कवि राष्ट्र का हित-कारक है । राष्ट्र के हित के लिए वह आदर्श की स्थापना करना चाहता है । * जानकी जीवन के प्रत्येक पात्र सामाजिक, राजनीतिक तथा व्यक्तिगत जीवन के उन आदर्शों की ओर संकेत करते हैं जिसमें राष्ट्र का हित हो ।

"सीता-समाधि " मिथकीय परम्परा से जुड़नेवाली कृति है । इसकी प्रेरणा कवयित्री को वाल्मीकि रामायण से मिलती है ।

---

* वाल्मीकि रामायण : पृ. 1/66/14

वाल्मीकि रामायण में यह संदर्भ प्रस्तुत हुआ है । राजा जनक के यज्ञ-भूमि के लिए जोतते हुए हल की नोक से खुदी भूमि हराई से या सीता से उसकी प्राप्ति हुई । सीता स्वयंवर में समस्त भूमंडल के प्रसिद्ध राजाओं का पदार्पण राम द्वारा उस दिव्य धनुष पर अनायास प्रत्यंचा चढ़ा दिया जाना, प्रत्यंचा को खींचते ही धनुष का दो टूक होना । प्रतिज्ञा-पूर्ति के कारण जनक का सीता को राम से विवाहने का निश्चय । * सीता का भी स्त्रीधर्म के नाते साथ जाने का हठ । राम के आदेश पर लक्ष्मण का शूर्पणखा के नाक-कान काट लेना, शूर्पणखा का अपने भाई रावण के पास जाना, अपनी दुर्दशा की कहानी कहना, सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा कर उसे हर लाने को प्रेरित करना । रावण द्वारा मारीच की सहायता लेना । मारीच स्वर्ण मृग के रूप में राम आश्रम में,उसके सुन्दर चर्म को पाने की सीता की इच्छा । राम का मृग के पीछे पीछे दूर तक आखेट । मरते-मरते मृग का [illegible] " हा सीते । हा लक्ष्मण । कहना । सीता और लक्ष्मण का ये शब्द सुनना । सीता व्याकुल लक्ष्मण को दुर्वचन और चरित्र लांछन की बातें कहकर हठपूर्वक सहायतार्थ भेजना । अवसर पाकर साधुवेश में रावण सीता के सम्मुख उपस्थित ।[2] सीता के फटकारने पर उसका अपहरण ।[3] रावण से अधिकृत होने तथा वन में परित्यक्त होने पर सीता का महान धर्म और प्रेम का पालन करना । लोक निन्दा के भय से राम द्वारा परित्याग किये जाने पर सीता का वाल्मीकि के यहाँ आश्रय पाना । वाल्मीकि का सीता को आश्रय देना वहीं सीता के गर्भ से लव-कुश का जन्म । रामाश्वमेध यज्ञ में लव-कुश और सीता सहित वाल्मीकि का आगमन । यज्ञ शाला में राम द्वारा जन-समूह के

---

* बालकाण्ड, सर्ग 66-67

2 वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड 66

3 वाल्मीकि रामायण सर्ग 97 श्लोक 14

सम्मुख सीता से उनके सतीत्व की सफाई माँगना, ताकि सबको विश्वास हो सके । सीता का कहना - " यदि मैंने रामचन्द्र को छोड़कर अन्य किसी पुरुष का मन से कभी चिन्तन किया हो, तो पृथ्वी फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ । " [1] पृथ्वी का फटना, दिव्य सिंहासन पर पृथ्वी देवी के बैठे हुए आविर्भूत होना, सीता को गोद में लेकर विलुप्त होना । राम का शोक । राम द्वारा लव-कुश का राज्याभिषेक आदि प्रसंग कवयित्री ने वाल्मीकि रामायण से ग्रहण किए हैं ।

सीता समाधि में राम महात्मा गाँधी के प्रतीक है । वे आदर्श राज्य-सत्ता स्थापित करने के प्रतीक भी है । सीता प्रेम की, तपस्या की, त्याग की, भूमि की, वन और कृषि की देवी की संस्कृति के प्रतीक है । अंग्रेजों का भारत को अपने अधीन करना सीता हरण है । अपनी संस्कृति का परित्याग सीता वनवास है । सोने का मृग विज्ञान और ऐश्वर्य का मोह है । शंकर का धनुष विनाशकारी अणु अस्त्र है - इत्यादी । लेकिन कवयित्री के इन प्रयत्नों का स्वरूप इस प्रकार का है :

" प्रयोग शालाओं में ऋषिजन,अनुसन्धान निरत थे सन्तत
सकल सृष्टि करने को जीवन रहते थे निर्माण कार्यरत सारे
दैहिक दैविक भौतिक सुख को, हरते ऋषिजन बाधा सारी
औषधि साधन उत्पादन के, रचते अस्त्र दिव्य संहारी । " [2]

इस प्रकार वन में छिपी सीता नये युग का निर्माण कर रही है :

" लव-कुश नहीं वर्ण संघर्ष वहाँ था, लोग स्वस्थ बलवान सभी थे ।

---

1 वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड सर्ग 97 : श्लोक 14
2 राजेश्वरी अग्रवाल : सीता समाधि : पृ. 5

मिलजुलकर करते कार्य क्षेत्र में, होते झगड़े नहीं कभी थे
तुष्ट और धर्मानुरक्त थे, सत्य प्रेम के बने भक्त थे । "[1]

लव-कुश परिश्रमी है उत्साहित है उनका कभी नाश नहीं हो सकता । कवयित्री की दृष्टि में :

" लव-कुश ने श्रम दम को जतकर, जीवन सुखद बनाया ।
सिखाकर्म निष्काम जगत में, सुख संतोष बढ़ाया । "[2]
जंगल में नित मंगल भारी, मुदित मनायें का वनचारी ।

" प्रवाद पर्व " नरेश मेहता का नाट्य काव्य है । इस काव्य को लिखने की प्रेरणा उन्होंने वाल्मीकि रामायण से ली है ।[3]

पद्मपुराण में सीता परित्याग प्रसंग एक ऐसा प्रसंग है जो वाल्मीकि रामायण से कुछ भिन्नता लिए है । एक धोबी का आधी रात को दूसरे के घर से आयी अपनी स्वेराचारिणी पत्नी को पीटना और अपनी माता द्वारा मना करने पर यह कहना कि मैं राजा राम नहीं हूँ जिन्होंने राक्षस के घर में रही सीता को स्वीकार कर लिया ।[4] चरों द्वारा जब इस घटना की सूचना रामचन्द्र को मिलती है तब वे ममाहित होकर मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता को वन में छोड आने का अप्रिय कार्य लक्ष्मण को सौंपा जाता है । कवि की दृष्टि में यह मिथकीय आयोजन राज्यों और व्यक्ति के सम्बन्धों को लिए है ।

---

1 राजेश्वरी अग्रवाल : सीता समाधि : पृ. 234
2 वही : पृ. 235
3 वाल्मीकि रामायण, उत्तर सर्ग
4 पद्मपुराण, पाताल खण्ड सर्ग 56 श्लोक 23-25

कवि अभिव्यक्ति की स्वाधीनता को इस रूप में प्रस्तुत करता है :

" गूँगेपन से कहीं श्रेयस है । वाचलता । जिस दिन । मनुष्य अभिव्यक्तिहीन हो जायेगा । वह सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा । कैसा ही इतिहास पुरुष क्यों न हो लक्ष्मण । सामाजिक भाषाहीनता । अभिव्यक्ति की इतिहास का सामना । नहीं कर सकता । लक्ष्मण । नहीं कर सका । " *

" शम्बूक " में राम का मिथक बहुत कुछ नये अर्थों में मिलता है । यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में, पद्मपुराण महाभारत के शान्तिपर्व, रघुवंश के पन्द्रहवें सर्ग, उत्तर रामचरित के द्वितीय अंक तथा आनन्द रामायण के अनेक अध्यायों में कहीं विस्तार के ही संक्षिप्त रूप में मिलती है । वाल्मीकि रामायण में यह कथा है कि शम्बूक एक शूद्र जातीय तपस्वी था । शूद्र को तपस्या करने का अधिकार नहीं है । यह शास्त्र मर्यादा लंघन करके तपस्या करता था । इस कारण राम के राज्य के समय एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया था । इस कारण राम के राज्य के समय एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया था । इस अकाल राम के राज्य के समय एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया था । अकाल मृत्यु से मृत उस ब्राह्मण बालक को जीवित करने के लिए राम घर से निकले । उन्होंने शम्बूक को तपस्या करते देखा ।

पद्मपुराण में शम्बूक की कथा रूप संक्षेप में यह है - दिति के गर्भ से उत्पन्न कई दैत्यों में - शम्बूक एक महापराक्रमी दैत्य था । कवि की दृष्टि में शम्बूक प्रतिपक्ष की तीव्र आवाज है जिसे कवि ने

---

* नरेश मेहता : प्रवाद पर्व : पृ. 43

भारतीय जनतंत्रात्मक गणराज्य व्यवस्था के द्वारा बलात दबायी जानेवाली आवाज को उठाया है यही शम्बूक की पहचान है । राम के मिथकीय सन्दर्भ में आज की समस्याओं एवं चिंतन को प्रक्षेपित किया है - कवि ने बड़ी स्वाभाविकता और सफलता के साथ विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में आधुनिक विचार प्रक्षेपित किये हैं :

"सभी पृथिवि पुत्र है तब जन्म से क्यों भेद माना जाय?
जन्मजात समानता के तथ्य पर क्यों भेद माना जाय?

जन्म ना जायेत शुद्र: क्या नहीं सबके लिए यह सत्य?
और संस्कार की "द्विज उच्यते" की घोषणा का क्यों न
हो सातत्य

जड समाज मनुष्य की रचना नहीं
गति रहित जीवन कभी अपना नहीं ।"*

"आत्मदान" बलदेव वंशी द्वारा रचित ऐसा नाट्य-काव्य है जिसमें अहल्या-गौतम प्रसंग को आज के सन्दर्भ में रूपान्तरित किया है । अहल्या का आत्मबोध और आत्म साक्षात्कार बौद्धिक प्रक्रिया का ही फल है जिसमें साक्षी राम स्वयं है । विचारों का द्वन्द्व अहल्या, इन्द्र और गौतम के त्रिकोण की सापेक्षता में विकसित हुआ है ।

इन्द्र और अहल्या का आख्यान का स्त्रोत वैदिक माना जाता है, परन्तु इसका भी मूल स्त्रोत अधिकांश पौराणिक आख्यानों की भांति प्राचीन साहित्य में इस कथा का रूप यजुर्वेद, शतदल ब्राह्मण, वाल्मीकि

---

* जगदीश गुप्त : शम्बूक : पृ. 49

रामायण रामचरित मानस में प्राप्त होता है ।

यजुर्वेद में इन्द्र की स्तुति करते हुए कहा गया है - हे जगदीश्वर । आप बिजली के तुल्य संसार के बीच प्रकाशमान है .... । " *

शतपथ ब्राह्मण में इस कथा का संकेत मात्र है । इस ब्राह्मण में ऋत्विज ऋषि ने यज्ञ-कर्म के समय देवताओं का आह्वान करते समय इन्द्र का आह्वान किया है तथा उसे हरिव, मेधातिथेमेष, वृषणश्वस्यमेने, गोरवास्कन्दिन और अहिल्याजार विशेषणों से सम्बोधित किया है ।

विष्णु पुराण और वायु पुराण में अहल्या को दिवोदास की बहन और वध्र्यश्व की मेनका से उत्पन्न पुत्री कहा गया है । -2 परन्तु वाल्मीकि रामायण " अहल्या " नामकरण का कारण बताते हुए कहा गया है कि उसके शरीर में कुछ विरूपता न थी । -2

कुमारिल भट्ट ने इस कथा के निहितार्थ को स्पष्ट करते हुए तंत्रवार्तिक में कहा है कि " सम्पूर्ण तेजस्वी पदार्थों में ऐश्वर्य है, इस कारण तेजपुंज को इन्द्र कहा गया है । दिन में लीन होने के कारण अहल्या का शाब्दिक अर्थ रात्रि है ।" 3 सूर्य ही रात्रि के क्षयस्वरूप जरण का कारण है । अहल्या {रात्रि} जिसमें जीर्ण हुई अर्थ जिसके उदय होने से अहल्या जीर्ण हुई, उसी को अहिल्या-जार कहते हैं ।

---

* शतपथ ब्राह्मण : 3/34/17-19

2 हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ।
यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता ।
विष्णु पुराण 4/19/16 और वायुपुराण 99/200

3 कुमारिलभट्ट : तंत्रवार्तिक 1/3/7

" अहल्या जार " शब्द का अर्थ सूर्य है । इसमें पर-स्त्री के साथ व्यभिचार की बात कही गयी है । अहल्या रात्रि है इन्द्र सूर्य । रात्रि के पीछे सूर्य का दौड़ना तो एक प्राकृतिक सत्य है, अत: देवताओं द्वारा धर्म उल्लंघन करने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

कथा सरित्सागर में यह कथा आयी है । * एकान्त पाकर गौतम की सुन्दरी पत्नी अहल्या से इन्द्र का प्रणय ‖ निवेदन ‖, अहल्या का मान जाना गौतम का तपोबल से जान लेना तथा गौतम को देखते ही इन्द्र का मार्जार बन जाना आदि बातें इसमें पूर्ववत है । नयी बातें केवल दो है - 1‖ गौतम ने जब अहल्या से पूछा कि तेरे साथ कौन था, तब अहल्या ने झूठ बोल दिया कि मार्जार था । इस असत्य भाषण के लिए गौतम ने उसे शिला बनने का शाप दिया । इन्द्र को सहस्त्रभग होने का शाप उसके छल के लिए दिया ।[2]‖अहल्या का शाप मोचन पहले की भांति राम के चरण स्पर्श होने का उल्लेख है, तब इन्द्र के शाप मोचन के लिए विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तिलोत्तमा अप्सरा का दर्शन बताया है । इंद्र इसको देखते है तो सहस्त्रभग के स्थान सहस्त्राक्ष हो जाते हैं । इस प्रकार इन्द्र के पतन उद्धार दोनों का कारण नारी है ।

वाल्मीकि रामायण में इन्द्र अहल्या से कहता है - " हे सुन्दरी । पार्थी ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करता । हे सुमध्यमें । मैं तुम्हारे साथ संगम चाहता हूँ ।[2] अहल्या कृतार्थ होकर इन्द्र से कहती है - हे देवराज ।

---

* कथा सरित्सागर, लम्बक 3 तरंग 3 श्लोक 137-147

2 " ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिन: सुसमाहिते ।
संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ।। "

वाल्मीकि रामायण 48,18

मैं कृतार्थ हुई । तुम शीघ्र यहाँ से जाओ । गौतम से अपनी और मेरी सब तरह से रक्षा करो । * मिथिला के उपवन में एक पुराना, निर्जन पर रमणीय आश्रम देखकर रामचन्द्र ने विश्वामित्र से पूछा - महाराज । यह आश्रम के समान क्या है ? यहाँ कोई मुनि दिखाई नहीं पड़ता । मैं सुनना चाहता हूँ कि पहले इस आश्रम में कौन रहता था ? यह बात वाल्मीकि रामायण में मिलती है ।[2] राम के प्रश्न का समाधान देते हुए विश्वामित्र का यह कथन कि - " इन्द्र को शाप देकर, मुनिने अपनी स्त्री को शाप दिया - " तुम को यहाँ बहुत हजार वर्षों तक रहना पड़ेगा । वायु छोड़कर, दूसरा आहार न करके, तपस्या करो । राख पर सोओ । किसी भी प्राणी के सामने न होओ इस प्रकार इस

---

* " आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्ष गौतमात ।
इन्द्रस्तु प्रहसन्वाक्यमहल्यामिदमब्रवीत ।। "

- वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 48,19-20

2 " मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघव: ।
पुराण निर्जनं रम्यं पप्रच्छमुनि पुंगवम ।।
इदमा श्रम सकाशं किं निंद मुनिवर्जितम ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्कस्यायं पूर्व आश्रम: ।। "

- वाल्मीकि रामायण 48,11-12

आश्रम में रहो । " * वाल्मीकि रामायण में यह घटना भी है कि मनुष्यों में श्रेष्ठ महात्मा गौतम का यह पहले आश्रम था । देवाश्रम के समान दिव्य था । देवता भी इसकी प्रशंसा करते थे । अहल्या के साथ उन्होंने अनेक वर्षों तक तपस्या की । " [2] वाल्मीकि रामायण प्रसंग भी मिलता है कि राम, लक्ष्मण, विश्वामित्र आदि ने उस आश्रम में महाभागा अहल्या को देखा । उसकी तपस्या की ज्योति चारों ओर फैली थी । देवता, असुर आदि मिलकर भी उस तेजस्विनी को नहीं देख सकते थे। [3] मालूम होता था कि ब्रह्मा ने मायामयी के समान बड़े प्रयत्नों से इसके रूप का निर्माण किया होगा । वे इस समय धूम से घिरी हुई, प्रदीप्त अग्नि-शिखा के समान मालूम होती थी, पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा के समान - जो मेघ और बरफ से ढक गयी हो । जल में पड़ी हुई दीप्तिमान और न छूने योग्य सूर्य की प्रभा के

---

* " तथा शप्त्वा ततो शक्रं भार्यामपि च शप्तवान ।
इह वर्षसहस्त्राणि बहूनि निवासिस्यासि
वाय भक्षा निराधरा तप्यन्ती भस्मशायिनी
अहल्या सर्वभूतानामाश्रमे स्मिन्वसिस्यसि ।। "
\- - वाल्मीकि रामायण 48, 29-30

2 गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वमासीन्महात्मनः
आश्रमो दिव्य संक शः सुरैरपि सुपूजितः ।।
स चरग आस्थिटदहल्या सहितः पुरा ।
वर्षपूगान्येकानि राजपुत्र महायशः ।।
\- वाल्मीकि रामायण 48-15-16

3 ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम् ।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ।।
\- वाल्मीकि रामायण 49, 13

समान होती थी । *

महाभारत में यह कथा वर्णित है - " इन्द्र वायुरूप होकर तुरन्त ही देवराज के रूप में प्रकट हो जाते है । इस पाक शासन इन्द्र सदा नये - नये रूप धारण करता और बदलता रहता है ।[2] महाभारत ऋषि देवशर्मा अपने शिष्य को बताते है कि इन्द्र मक्खी और मच्छर आदि को भी रूप धारण करते हैं कोई भी उन्हें पकड़ नहीं सकता । औरों को तो बात ही क्या, जिन्होंने इस संसार को बनाया है, वे विधाता भी उन्हें अपने काबू में नहीं रख सकते । अंतर्धान हो जाने पर इन्द्र केवल ज्ञान दृष्टि से दिखाई देते हैं । विपुल इन्द्र को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि इन्द्र की बुद्धि बड़ी छोटी है । वह सदा इन्द्रियों का गुलाम बना रहता है । यदि यही दशा रही तो अब देवता तथा मनुष्य अधिक काल तक उसकी पूजा नहीं करेंगे ।[3] पापी

----

* प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव ।
धूमेनाभिपरीताङ्गी दीप्तामग्निशिखामिव ।।
सतुषारा वृतां साभ्रां पूर्णचन्द्र प्रभा मिवं ।
मध्ये मम्भसो दुराधर्षां दीप्तां सूर्यप्रभामिव ।

- वाल्मीकि रामायण 49, 14-15

2 वायु भूतश्च स पुनर्देवराजो भवत्युत ।
एवं रूपाणि सततं कुरुते पाकशासन: ।

- महाभारत अनुशासक पर्व 40-38

3 मक्षिकामशकादीनां वपुरास्यते पिच ।
न शक्यमस्य ग्रहणंकर्तुं विपुल केनचित ।।
अपि विश्वकृता तात्येन सृष्टिमिदं जगत
पुनरन्तर्हित: शक्रो दृश्यते ज्ञानचक्षुषा । "

- श्री महाभारत अनुशासक पर्व
40-36-37

में जो पा कर्म है और शुभकर्मी मनुष्य में जो शुभ कर्म है, उन सबको दिन-रात और ऋतुएं सदा जानती रहती है । *

आत्मदान में अहल्या को आत्मसंघर्ष के अनेक प्रश्नों और अतिवादों से मुखरता दिखाया गया है जो सामाजिक मर्यादा, नारी के आत्म-पीड़न तथा गौतम के पलायन आदि प्रसंगों में चरितार्थ हुआ है । इसमें अहल्या के आत्मकथ्य और आत्मसंघर्ष को चारों ओर से संयोजित किया गया है और इस सन्दर्भ में इन्द्र तथा गौतम की चरित्र रेखाओं को भी उभारा गया है । राम तो अहल्या के आत्म-संघर्ष और आत्मदान के साक्षी है जो उसे जीवन्त एवं सम्मानयुक्त " अर्थवत्ता " देते हैं । इन चरित्र रेखाओं के साथ द्वन्द्व का एक साथ निर्वाह कविता क्रम को गतिशील बनाता है । कविता क्रम का गतिशील बनाता है । आत्मदान " में अहल्या को बुद्धि § रात्रि § का प्रतीक माना गया है जो समाज व्यवस्थापक गौतम के आश्रम में बन्दी है :

" अभी बाकी है यह रात
मेरे जन्म के साथ ही फूटी थी
अंकुरकी मरी झिल्ली की तरह
दुनिया मेरे लिये केवल -
दृश्यों
स्पर्शों
गंधों
ध्वनियों
स्वादों में

---

* जितेन्द्रिय दुर्बुद्ध पापात्मक पुरन्दर ।
न चिरं पूजयिस्यन्ति देवास्त्वां मानुषास्तथा ।
- महाभारत अनुशासक पर्व 41-20

2 अहोरात्रं विजानाति ऋतवश्चापि नित्यशः ।
पुरुषे पापकं कर्म शुभं वा शुभ कर्मिणः - श्री महाभारत अनुशासकपर्व 43,10

खुलती हुई लुका-छिपी थी
जहाँ मैं स्वयं को ढूँढती
ठोकरें खाती । " *

इसके साथ गौतम तप और योग § चन्द्र § और इन्द्र भोग और व्यक्तिवादिता § सूर्य § के प्रतिरूप है ये तीनों पात्र किसी न किसी रूप में " वैचारिक बंध " से जुड़े है । गौतम जो तप या योग के प्रतीक है, उन्हें तप सिद्धि, बुद्धि के द्वारा ही प्राप्त हो सकी है उनकी दृष्टि में अहल्या -

" तुम तो पति थे, हे नाथ ।
अब भी पति हो
मैं तुमसे निरपेक्ष, रु का क्षण हूँ
तुम, मेरी गति हो
तुम्हारा [redacted] तीव्र गमन
मेरा जीवन । " 2

इसी प्रतीकार्थ के साथ अहल्या के उस रूप का संकेत प्राप्त होता है जो गौतम द्वारा परित्यक्त होने से विक्षुब्ध और असन्तुष्ट है क्योंकि वह मानती है कि पत्नी-प्रिया के बगैर पुरुष की सिद्धि अपूर्व और अर्थहीन है । इसके विपरीत " इन्द्र " का रूप एक अतिचारी व्यक्तिनिष्ठ और इसी से, इन्द्र का समागम जहाँ एक ओर अहल्या को एक नवीन अनुभूति देता है, वहीं इन्द्र के व्यक्तिवादी स्वार्थ-मूल्य के प्रति क्षोभ

---

* बलदेव वंशी : आत्मदान : पृ. 30

2 वही : पृ. 23

एवं घृणा से भरी है :

" ऐश्वर्य रूप, तुम ।
अनाम आकर्षण से
बांधे सबको
बुद्धिगम्य केवल
सूक्ष्मतम
तुम बहुरूपी ।
किन्तु तुम निपट छली
पुरुष वृत्ति के कपट रूप
तुम, देवों ने
"वैदिक कर्म विहीन " किया नारी को
धर्म - शास्त्रों की व्यवस्थाएं बदलीं
स्व अनुरूप
स्त्रियां "इन्द्रियशून्य " हुई और "असंयमशीला "
"शास्त्र ज्ञान से रहित " असत्य की मूर्ति " निपट
- ये सभी विशेषण अभियोग सदृश्य
दिये पुरुषों ने । " *

इस कृति का अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष " आत्मदान " का स्वरूप है । आत्मदान एक प्रकार से अहल्या का " आत्मदान " है जिसे एक " प्रक्रिया " के रूप में दिखाया गया है " आत्मदान " से आत्मबोध आवश्यक है क्योंकि जब तक आत्मबोध नहीं होगा तब तक "दान " का कोई अर्थ नहीं है -

" पहले जगता है संशय
फिर प्रकट ज्ञान

---

* बलदेव वंशी, आत्मदान : पृ. 20-21

फिर तर्क वितर्कोपरान्त
आत्मबोध जगता है
फिर व्यक्ति होता मुक्त
होता है
दिन-रात आत्मोपलब्धि को । " *

रचनाकार की सहज प्रक्रिया भी इसी " आत्मदान"की क्रमिक प्रक्रिया है । जिसके साक्षी स्वयं " राम " है जो अपने " स्व " को वृहद दान में रूपान्तरित करते हैं :

" राम साक्षी हैं
रात्रि आज जमी हुई है
अपनी प्रकृति पर
इस धरती पर
जन कल्याणक अपने " स्व " पर
गर्वमयी है । " [2]

इसमें रचना में अनेक ऐसे वाक्य बिखरे है जो आज के वैचारिक द्वन्द्व को व्यंजित करते हैं - जैसे " यांत्रिकता से परे सत्य, " प्रश्नों के पिछले देश ", जीवन एक यात्रा , अंधकार में टटोलते हुए,[3] जीवन सांस खिंचती ही चली जाती [4] हर शिला के नीचे यहाँ दबा है एक धमाका है [5] तथा काल के प्रवाह में वही शेष रह जाता है जो सत्येक्षर [6]

---

* नलदेव वैशी, आत्मदान : पृ. 41
2 वही : पृ. 47
3 वही :
4 वही :
5 वही :
6 वही :

पुन्यमय सृष्टि का भाव-पूर्ण है आदि ।"* इस प्रकार "आत्मदान" "अहल्यावृहदबोध" और दान को एक वैचारिकता प्रदान करता है जो रचनात्मक धरातल पर मर्यादार्थ ग्रहण करती है ।

"एक विश्वास और" में रमेशचन्द्र मिश्रा ने राम के मिथक को नये सन्दर्भ में प्रस्तुत करते के जो प्रयास किए है, कुछ हद तक प्रासंगिक है । रमेशचन्द्र मिश्रा ने वाल्मिकी कि रामायण को काव्य का मुख्य आधार बनाया है । "वाल्मिकी रामायण" में इन्द्र-अहल्या जारकी कथा दो स्थलों[2] पर आयी है । बालकाण्ड में इस कथा का रूप यह है मिथिला की ओर जाते हुए राम मार्ग में एक मनोरम स्थान को देख कर विश्वामित्र से उसके विषय में जिज्ञासा प्रकट करते है विश्वामित्र ने बताया गौतम की अनुपस्थिति में इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर अहल्या से रति की इच्छा प्रकट की । वह समागम के लिए प्रस्तुत एवं अपने को कृतार्थ अनुभव किया।[3] गौतम योग बल से जान गए उन्होंने इन्द्र को वृषणरहित हो जाने का शाप गौतम ने अहल्या को शाप दिया ।[4] किन्तु अहल्या क्षुब्ध होने पर पाप विमोचन के लिए राम का स्मरण करते को कहा ।[5] महाभारत में केवल एक श्लोक में अहल्या पर बलात्कार के कारण गौतम इन्द्र को शाप देते है।"

---

* नलदेव चौबे : आत्मदान : पृ. 37

2. वाल्मिकी रामयण उत्तरकाण्ड : बालकाण्ड 30/22-23

3. वही : 48 । 19

4. वही : 48 । 30-31

5. महाभारत : शांतीपर्व

342 । 23

में राम के वनवास तथा उसके बाद की घटनाओं के मुख्य प्रेरक विश्वामित्र है, क्योंकि वे राम के माध्यम से अनार्य सभ्यता संस्कृति को मुक्त रखना चाहते है, कवि के इस राष्ट्रीय लक्ष्य में विश्वामित्र के अतिरिक्त परशुराम की भी सहायता ली गयी है ।

3 कृष्ण का मिथक :

कृष्ण के मिथक को माध्यम बनाकर अनेक नाट्य-काव्य लिखे गए है । इन नाट्यकाव्यों में पाण्डवों की कथा भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो समकालीन सन्दर्भों को प्रस्तुत करती है । कृष्ण चरित्र उनका स्वयं एक निदर्शन है अन्य चरित्र भी हमारे सामने कोई न कोई आदर्श लेकर आते है ।

कृष्ण के मिथक को माध्यम बनाकर लिखा गया नाट्यकाव्य "महाप्रस्थान" है । साथ ही यह युधिष्ठिर की प्रज्ञावात अंतश्चेतना और नये सूत्रों को लिए है'।

महाभारत के अठारह पर्वों में "महाप्रस्थानिक पर्व" अनुपाततः में अत्यंत लघु है । उसके तीन अध्यायों में कुल मिलाकर 106 श्लोक है । लक्षश्लोक प्रमाण काव्य में सिर्फ शतश्लोक प्रमाण है महाप्रस्थानिक पर्व । महाभारत का यह सब से सर्वोत्तम पर्व है ।

मौसल पर्व में यादव कुल के महासंहार की और फिर भगवान श्रीकृष्ण के निधन को अति दारुण घटना भी व्यास ने निर्मम भाव से निरूपित की है श्री कृष्ण सखा अर्जुन के गांडीव धनु की विफलता की बात भी राजा

युधिष्ठिर ने यह सारी बात सुनी ।*

मौसलपर्व में यह प्रसंग भी आया है कि युधिष्ठिर ने महाप्रस्थान का विचार अर्जुन को सुनाया वह भी उनके वचनों को स्वीकार कर लेता है । अन्य भाइयों ने भी स्वीकृति दी परीक्षित का सिंहासन पर स्थापित कर, उन्हें उपदेश देकर, अन्य क्रिया कलापों को समाप्त कर युधिष्ठिर निकल पड़े ।[2]

महाप्रस्थानीक पर्व के दूसरे अध्याय का प्रारंभ होता है पांडवों के हिमालय दर्शन से ।[3] इसके 26 श्लोकों में द्रौपदी और सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीम क्रमशः इन चारों भाइयों के निधन को बात समाविष्ट है और प्रत्येक के निधन पर भीम युधिष्ठिर को प्रश्नोत्तरी । भीम के पतन के बाद में अन्त में भीम के प्रश्न का उत्तर देकर उसकी ओर बिना देखे ही युधिष्ठिर आगे चलने लगे । श्वान मात्र उनके पीछे-पीछे जा रहा था ।

तीसरे अध्याय में देवराज इन्द्र के साथ श्वान और सदेह स्वर्ग प्रवेश के सन्दर्भ में वार्तालाप है । कवि ने राज्य, राज्य-व्यवस्था

---

* श्रुत्वैव कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत् ।
प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्य मर्जुन मब्रवीत ।।
महाभारत महाप्रस्थानिक पर्व 17/1/2

2. भ्रातरः पंच कृष्णा च षष्ठी पुत्रश्चैव सप्तमः
आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात
महाभारत, महाप्रस्थानिक पर्व 17/1/23

3. ददृशुर्योगयुक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिम
महाभारत, महाप्रस्थानिक पर्व 17/2/1

और उस व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। मूल्य और मानवीय उदात्ततायें जब जीवन में शेष हो जाती है। तभी खण्डित हृदय के सत्य जैसा युद्ध होता है महावीर सिंह चौहान के अनुसार-"संवेदनशीलों के लिए युद्ध भीषण संकट और अभिशाप के रूप में होता है। युद्ध को भयावहता, नरसंहार, विकृतियाँ खण्डित आस्थाएं, भग्न-मूल्यों, निर्जनता और हिलाते वाली त्रासदी से मानवता सदैव विकलांग होती है। विध्वंस अस्त्रों के इस युग में युद्ध को विभीषिकाओं ने समस्त मानव-चेतनाको आक्रान्त कर रखा है ऐसी स्थिति में युद्धोपरांत विनाश और अवसाद का चित्रण नरेश मेहता ने किया है।"*

युधिष्ठिर राज्य, राज्य-व्यवस्था और इस व्यवस्था के दर्शन को अमनवीय प्रकृति एवं प्रवृति को स्पष्ट करता चाहते है। निर्वेद की स्थिति में मानवीय प्रज्ञात्मक अपने विवेक रूप में होती है। वह अनासक्त मन:स्थिति होती है अत: अत्यंत स्पष्ट समस्याओं से उलझे सूत्रों को विरोधी गतिविधीयाँ देख सकती है बिना ऐसी स्थिति के हम जीवन को परिभषित नहीं कर सकते है। मानव नियति के युद्ध ही नहीं राज्य व्यवस्था भी अधिक त्रासद होती है। युधिष्ठिर के मिथक में मूल संवेदना राज्य व्यवस्था जन्य विसंगतियों को उभार कर मानव मुक्ति को कामना रही है। युधिष्ठिर की मान्यताएं है कि सारे मानवीय दु:खों का आधार राज्य, राज्य व्यवस्था और राज्यव्यवस्था का दर्शन है। समाज राज्य के नियमों पर आधारित नहीं है। वह धर्म के नियमों पर आधारित है। स्वतंत्र धर्म और विचार राज्य पर अंकुश रखते है। अन्यथा यह समाज रहने योग्य नहीं रह जायेगा। किसी भी व्यक्ति को उदात्तताओं और करुणा के प्रतीक और धर्म के प्रतिपालक नहीं हो सकते धर्म का व्रत्त, राज्य नहीं, व्यक्ति की प्रज्ञा में

---

* महावीर सिंह चौहान : नयी कविता की प्रबन्ध चेतना
पृ. : 88-89

होता है, ऐसे वैश्वानरी व्यक्तित्व को राज्य से अधिक महत्व देना चाहिए । अन्यथा :

"राज्य के
अकूत शक्ति सम्पन्न होने का अर्थ ही है
व्यक्ति का स्वत्वहीन होना
राज्य की गरिमा को
व्यक्ति की गरिमा का पर्याय होने दो ।
किसी भी व्यवस्था का
व्यक्ति से बड़े हो जाने का अर्थ होगा
अमानवीय तन्त्र ।"*

"सूर्यपुत्र" नाट्य-काव्य का विशेष महत्व है । कर्ण के अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानतः अभिव्यक्ति प्रस्तुत नाट्य काव्य में मिलती है जिसे कृष्ण महान कार्य करते हुए सामान्य पुरुष की तरह छिपाये रहे । कर्ण के जन्म और पालन-पोषण आदि की कथा "महाभारत" के आदि पर्व, वन पर्व और देवीभागवत पुराण, अग्निपुराण में मिलती है ।

महाभारत के आदिपर्व में यह बात कही गयी कि कुन्ती भोज की कन्या कुन्ती के गर्भ से सूर्य के अंश से कर्ण की उत्पत्ति हुई । कर्ण जन्म से ही कवच कुण्डलधारी था ।[2] आदि पर्व में यह कथा कुछ विस्तार

---

* नरेश मेहता : महाप्रस्थान : पृ.

2. महाभारत : आदिपर्व 67 । 132-50

के साथ कही गयी है और उसमें बताया गया है कि कुन्ती जब अपने पितृ गृह में कुमारी थी तभी उसके अतिथि-सत्कार से संतुष्ट होकर महामुनि दुर्वासा ने उसे एक मंत्र सिखाया जिसके बल से भी देवता का आवाहन किया जा सकता था । कुन्ती ने मंत्र का प्रभाव देखने के लीए कौतूहलवश सूर्य का आवाहन किया । सूर्य ने कुन्ती के उदर में गर्भ स्थापित किया और गर्भ से ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो जन्म से कवच और कुण्डल पहने हुए था । सूर्य के समान तेजस्वी बालक को कुन्ती ने लोक लाज और पिता-माता के भय के कारण उस शिशु को पे पेटिका में रखकर जल में बहा दिया । यह पेटिका कौरवों के अधीरा नामक सूत को मिली । वह और उसकी राधा उस शिशु का जिसका नाम वसुषेण रखा, पालन-पोषण करने लगे । बड़ा होने पर यह बालक "कर्ण" नाम से प्रसिद्ध हुआऔर बड़ा वीर तथा योद्धा बना । वह दुर्योधन का मंत्री और मित्र होने के साथ-साथ उसके शत्रुओं का नाश करने वाला था । अर्जुन ने रंगभूमि में कर्ण को कुछ कठोर शब्द कह दिये । कर्ण अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया । परन्तु, कृपाचार्य के यह कहने पर कि पहले तुम अपने कुल-शील का परिचय दो मक्क तब एक राजकुमार(अर्जुन) तुम्हारे साथ लड़ेगा । कर्ण का मस्तक लज्जा से झुक गया । दुर्योधन ने उसी समय कर्ण को अंगदेश के राज-पद पर अभिषिक्त किया । उस समय भीष्म आदि के बचो-बचाव से कर्ण और अर्जुन का युद्ध टल गया परन्तु कौरवों ने कर्ण को अर्जुन की टक्कर का मानकर उसकी आवगत शुरू कर दी ।

"देवी भागवत पुराण" में दुर्वासा- प्रदत्त मंत्र के बल से कुन्ती द्वारा सूर्यदेव का आह्वान करना और उनके संसर्ग से अविवाहितावस्था

◆ महाभारत आदिपर्व : 67 । 138

2. देवीभागवत् पुराण : 2 । 6 । 14-38

में ही एक पुत्र [कर्ण] को जन्म देना, लोक लाजवश उस पुत्र को मंजूषा में बंद करके दासी के द्वारा कहीं फेंकवा देना, कौरवों के सूत अधिरथ द्वारा उस मंजूषा को प्राप्त करना और कर्ण का पालन-पोषण करना,* कर्ण का महापराक्रमी होना और दुर्योधन का प्रियत्व प्राप्त करना[2] आदि वर्णित है । " अग्निपुराण " में कर्ण के विषय में कहा गया है कि इसे कुन्ती ने कौमार्यावस्था में उत्पन्न किया था और यह दुर्योधन का आश्रित था ।[8]

महाभारत के आदि पर्व और वन पर्व में यह कथा आती है कि कर्ण दोपहरी में जल में खड़े होकर, सूर्य की ओर मुख करके स्तुति करते थे और उस दशा में कोई ब्राह्मण उनसे कुछ भी मांगकर खाली हाथ नहीं लौट सकता था ।[3] जब पाण्डवों के वनवास में बारह वर्ष बीत गए और तेरहवां वर्ष आरंभ हुआ, तब इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन की सहायता करने का निश्चय कर, ब्राह्मण का वेश धारण कर, कर्ण के सम्मुख भिक्षार्थ उपस्थित हुए । किन्तु इसके पूर्व ही सूर्यदेव कर्ण को स्वप्न में दर्शन देकर इन्द्र के ब्राह्मण रूप में कवच कुण्डल मांगने आने की सूचना दे चुके थे और उन्हें कवच-कुण्डल देने से मना कर गये थे और कह गए थे कि कवच-कुण्डल दे देने पर तुम्हारी आयु क्षीण हो जाएगी, अर्जुन से तुम जीत न सकोगे और मृत्यु के अधीन हो जाओगे । किन्तु, कर्ण दान-वृत्त से विचलित होने को तैयार नहीं हुए थे ।[4] ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र ने

---

* देवी भागवत पुराण : 6/25/45

2 अग्निपुराण 13111

3 महाभारत आदिपर्व 67/143 और वन पर्व 309/23-25

4 महाभारतवन पर्व अ 300-302

जब उनसे कवच कुण्डल की याचना की और उनके बदले और कुछ ग्रहण करने को प्रस्तुत न हुए, तब कर्ण ने कवच-कुण्डल के बदले में इन्द्रदेव से अमोघ शक्ति की मांग की । वस्तु-विनिमय के आधार पर कर्ण ने अपने शरीर से काटकर कवच कुण्डल इन्द्र को दे दिए और इन्द्र ने अपनी शक्ति कर्ण को प्रदान की । पहले " कर्ण " का नाम वसुदेव था परन्तु कर्ण (कर्त न) करने के कारण उनका नाम " कर्ण " हो गया । पाण्डवों ने जब यह सुना, तो वे फूले न समाये, और कौरवों ने सुना, तो उनका घमण्ड चूर-चूर हो गया । * वस्तुत: कर्ण अधर्म से मारा गया अत: महाभारत युद्ध के लिए प्रेरित अर्जुन के इस अपराध से कृष्ण स्वयं दु:खी शोकातुर हो जाते हैं । अहिंसा के महात्म्य पर बल देनेवाले कृष्ण स्वयं कर्ण की मृत्यु को वहन करते हैं । नारायण की लीला एक अंश कृष्ण ने गीता में सम्पन्न किया है और वह है विश्व रूप दर्शन जिसमें दिखाया गया है कि सम्पूर्ण विश्व उनमें ही अन्तर्निहित है और वही यहां की प्रत्येक जाति (स्पेशिज) में सर्वोत्तम का प्रतिनिधित्व करते । कर्ण आज के मनुष्य की यातना और द्वन्द्व, आत्म निर्वासिन और एकाकीपन का प्रतीक है, इसके साथ ही वह चारित्रिक विशेषताओं को भी परम्परागत रूप से सुरक्षित रखना चाहता है । कृष्ण की महानता इसीमें है कि वे सम्पूर्ण युग का प्रतिनिधित्व करते हैं । कर्ण का एकाकीपन इस नाट्य काव्य का मूल है । आध्यात्मिक धरातल पर व्यक्तिगत पूर्णता की प्राप्ति तब बहुत आसान हो जाती यदि पहले व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति उस पैमाने पर ही जाए जिसे तत्कालीन समाज समुचित माना जाता है । तात्पर्य यह है कि पाप का प्रधान मूल सामयिक है । सामयिक के मूल कारण अब मानवीय दृष्टि से ओझल नहीं है । उनका उपचार धर्म दर्शन

---

* महाभारत वन पर्व अ 310 और आदि पर्व 67/144-146 तथा 110/28-29

में नहीं समाजवाद में है, जिसका मतलब है योजनाबद्ध प्रयोग से प्राप्त तर्क संगत निष्कर्ष पर आधुनिक विज्ञान को स्वयं समाज के निर्माण में प्रयुक्त करना । आधुनिक उत्पादन में विज्ञान ही आधार-भूत है, इसके सिवा अन्य कोई उत्पादन का साधन नहीं है जो मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें । कर्ण के मिथकीय प्रसंग इतिवृत्त का समावेश अपेक्षाकृत अधिक है और वैचारिक प्रसंग कहीं कहीं पर है । स्वयं कवि ने भूमिका में कहा है - " महाभारत का प्रमुख पात्र कर्ण इस काव्य का मूल स्रोत है । उसके जीवन की यातना आज के मनुष्य के द्वन्द्व और विसंगतियों से अनुप्राणित है । " * कर्ण के व्यक्तित्व में समकालीन रूपान्तरण अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है जो कथा प्रसंग के साथ क्रमश: उद्घाटित होता है । अपमान एवं निर्वासन की आत्मग्लानि, सूतपुत्र होने की सामाजिक विडम्बना, अर्जुन द्वारा अभद्र व्यवहार से उपजी प्रतिशोध की भावना तथा भीष्म पितामह द्वारा सेनापति न बनाया जाना ऐसे प्रसंग है जो आज के व्यक्ति की विसंगति, द्वन्द्व और तनाव को स्वर देते हैं । इन प्रसंगों के द्वारा कर्ण के ओजस्वी और संघर्षशील व्यक्तित्व को सफलतापूर्वक उभारा गया है जो नाटकीय भंगिमा से युक्त है । यह प्रसंग अपरोक्ष रूप से, आज की सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों की नियति और स्थान पर एक तीखा व्यंग्य करता है । माता कुंती और कर्ण के संवाद कर्ण की मनोदशा और तेजस्विता को एक साथ प्रकट करते हैं जो सामाजिक नि निषेधों और टैबू के कारण अपनी अकाट्य लालसा को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाती है । यह प्रसंग माँ और पुत्र के द्वन्द्व को, संवेदनशील बनाता है । कर्ण का अन्तर्द्वन्द्व उसके सामाजिक रूप को भी व्यक्त करता है जो " दान " के व्यापक रूप पर आधारित है । " अपने लो और होम किए, द्वेषमुक्त चिन्तन के द्वारा " [2]

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ. 57 2 वही : भूमिका

ही आत्मदान की सार्थकता है । दान निर्वैयक्तिक एवं स्वार्थ से परे होता है इसी भाव से वह इन्द्र को अपना कवच कुंडल देता है । कर्ण का व्यक्तित्व और उसके जीवन की सार्थकता उस समय प्रकट होती है, जब कृष्ण की कूटनीति तथा युद्ध नियम का उल्लंघन कर कृष्ण अर्जुन को कर्ण के वध के लिए प्रेरित करते हैं परन्तु फिर भी कृष्ण को यह कहने के लिए विवश होना पड़ता है :

> युग नहीं खींचे जाते किसी रेखा से । युग का निर्माण करते हैं विश्वजयी । कर्ण का अंत ही द्वापर का अंत है । " *

" सूर्य पुत्र में कुन्ती का एक बोल्ड महिला के रूप में उसके चरित्र-विकास का महत्वपूर्ण प्रयास है । यौवन अपने पूर्ण विकास में एक उफनती नदी के समान होता है और अपनी परिपक्वता में समर्पण को नकारा नहीं जा सकता है - इस अन्तर्सम्बन्ध को जगदीश चतुर्वेदी ने एक मूल्य-स्तर देने का प्रयास किया है जो स्वाभाविक है क्यों कि सृजन के लिए कोई भी प्रक्रिया हो वैध नहीं होती । अतः समस्त सामाजिक नियमों और आधार-संहिताओं को चुनौती देते हुए तप्त नारीत्व के गुणों से संपृक्त महिला व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित किया है इसीलिए यह कृति अपनी एप्रोच में आधुनिकता के अधिक निकट है ।

किशोर काबरा ने "परिताप के पाँच क्षण" में भीष्म पितामह के चरित्र को आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है इसमें कवि ने कथा कहने के लिए गुलेरी जी की कहानी "उसने कहा था" से प्रेरणा ली है । प्रस्तुत नाट्य-काव्य में "आरोपित ब्रह्मचर्य एवं अतृप्त नारीत्व के संघर्ष की गाथा है । पुरुष भोग से गुजरकर यदि योग को प्राप्त करें, काम को वह चरम

---

* जगदीश चतुर्वेदी : सूर्यपुत्र : पृ.

करें, काम को वह चरम सोपान बनाये तो जीवन में जिस सहजता की सृष्टि होगी, उस पर देवता भी ईर्ष्या करेंगे यदि काम का परिष्कार नहीं हुआ और परम यात्रा पर चल पड़ा तो यौवन कुण्ठा उसके जीवन को नरक की उत्तम में जलाती होगी । वह सुख से जी सकेगा और न शांति से मर सकेगा ।* भीष्म पितामह का जीवन ऐसा ही था वे काम कुण्ठित थे, अहंकारी थे, हठी थे । उनकी महानता उनकी हीनता ग्रंथि से निकली थी । वे द्रौपदी का साड़ी खींचा जाना इसीलिए चुपचाप देखते रहे क्योंकि स्वयं द्रौपदी को नग्न देखना चाहिते थे, स्वाभाविक रूप से अम्बा की कथाप्रधान हो गयी है । कवि ने अपनी-अपनी कल्पना के प्रवाह को सफलतापूर्वक निभाया है ।

4. अन्य मिथक : .. .. ..

मिथक में आस्था का मुख्य आधार रहता है । आस्था ही मिथक को यथार्थ (real) तथा पुनीत (Sacred) बनाती है ।

उर्वशी तथा पुरूरवा के मिथक पर आधारित रामाधारीसिंह दिनकर का "उर्वशी" नाट्य काव्य का आख्यान भारतीय पुराख्यानों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । कवि ने इस कृति में पुराख्यात से सम्बद्ध ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण और विभिन्न पुराणों के साथ महाभारत, वाल्मिकी रामायण और कालीदास के "विक्रमोर्वशीयम" आदि ग्रंथों में प्राप्त सामग्री का उपयोग किया है ।

ऋग्वेद में इला की कथा है, इसमें मनु इला का पुत्र था और मातृदेवी पार्वती के एक पवित्र कुंज में कुंज में प्रवेश करने के कारण जिसकी काया नारी के रूप में परिवर्तित हो गयी थी नारी बन जाने पर उसका विवाह बुध से हुआ जिससे उसके पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।*

---

* ऋग्वेद : 10-95

ऋग्वेद में विशेष रूप से उर्वशी तथा पुरूरवा के मिलनोपरांत हुई विवश विपन्न विरह दशा का वर्णन है इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में यह संकेत है किसी अज्ञात कारण से उर्वशी पुरूरवा से विमुक्त हो गई थी और उसके पुत्र को अपने गर्भ में धारण किए थी ।* वियोग का कारण उर्वशी को ज्ञात था, पुरूरवा को नहीं । ऋग्वेद के अनुसार वह दोनों चार वर्ष अत्यंत विलास मग्न होकर विहार करते रहे ।[2] उर्वशी के चले जाने के उपरांत पुरूरवा ने एक बार पुन: अपने अंक में शामिल होने के कहा तो उर्वशी ने उसे उत्तर दिया--"हे ऐल वंशीय पुरूरवा । देवताओं को तुमने कहा है तुम मृत्यु के विषय हो चुके हो । अत: अब तुम अपनी संतान को आहुतियों द्वारा देवों को प्रसन्न करने दो । समय आने पर स्वर्ग में तु मेरा सहवास प्राप्त करोगे ।"[3] उर्वशी के प्रथम चार सर्गों के सूत्र कवि ने ऋग्वेद से ही लिए है, एक अन्तर यह है कि उसेने पुरूरवा तथा उर्वशी के सहवास के चार वर्षों के स्थान पर एक वर्ष तक सीमित कर लिया है । शतपथ ब्राह्मण में पुरूरवा तथा उर्वशी का आख्यान प्राप्त

---

* "प्रति ब्रवाणि वर्दयते अश्रुकुन्दन दाहये शिवाये
प्रस्तते दिनवायस्ते अस्मै परेनस्त नहि मूर माप: ।।"

2. ऋग्वेद : दशम मंडल : सूक्त 95 मंत्र 16

3. "इति त्वा देवा : इम आहुरैल यथेमेतद्भवसि
2. मृत्यु बन्धु: ।
प्रजाते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उत्वमपि
मादयासि ।।"

– ऋग्वेद : दशम मंडल : सूक्त 95 : मंत्र 18।

होता है । इस ग्रंथ में प्राप्त कथा सूत्रों को कवि ने छोड़ा दिया है :

महाभारत में बताया गया है कि विद्वान पुरूरवा इला से उत्पन्न हुआ था, जो उसकी माता भी थी और पिताभी कालिदास के उत्तम नाटकों में एक है विक्रमोर्वशीयम । जिसका विषय है, चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा और उर्वशी नाटक अप्सरा का प्रेम, वियोग अंत में पुनर्मिलन । वह अप्सरा स्वर्ग को जा रही थी कि रास्ते में केशी नाम दानव ने उसका अपहरण कर दिया । पुरूरवा नितांत उपकार परायण राजा है वह राक्षस से उर्वशी का उद्धार करता है । इस घटना से वे परस्पर प्रेमाकृष्ठ हो गए । देवनगरी अमरावती से उर्वशी का जी उचाट हो गया था । इसीलिए एक दिन छद्म वेश धारण कर वह अपने प्रेमी को उद्दात में पहुँची । मर्त्यलोक में वह इस प्रकार संयोग सुख के दिन बिता रही थी कि इन्द्र के समक्ष खेले जाने वाले नाट क में लक्ष्मी का अभिनय करने के लिए उसे स्वर्ग में बुला लिया गया । वहाँ ऐसा हुआ कि विष्णु का पुरूषोत्तम नाम बोलने के बदले उर्वशी के मुँह से पुरूरवा निकल गया । अत: दिव्य संचालक भरत ने उसे मानव रूप धारण करने का शाप दिया । उर्वशी के लिए यह शाप तो वरदान सिद्ध हुआ क्यों कि इसके चलते पुरूरवा से उसका मिलन सम्भव हो गया । लेकिन कुछ शर्तों के साथ उर्वशी ने उसकी रानी बनना स्वीकार कर लिया । बाद में उर्वशी के वियोग में पुरूरवा पागलों जैसा जंगल में मारा-मारा फिरता है । डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा का कथन है कि - "उर्वशी के मिथक से कवि का उद्देश्य सतावन नर और सनातन नारी के सम्बन्धों की व्याख्या करता है ।"* वैदिक आख्यान की पुनरावृत्ति अथवा वैदिक प्रसंगों का प्रत्यावर्तन उसका लक्ष्य नहीं रहा । उर्वशी का कोश

---

* डा. लक्ष्मी नारायण शर्मा : पराख्यान और कविता पृ. :135

गत अर्थ है उत्कट अभिलाषा, अपरिमित वासना, इच्छा अथवा कामना पुरूरवा शब्द का अभिप्राय उस व्यक्ति से है जो नाना प्रकार से रूकरे अथवा नाना ध्वनियों से आक्रान्त हो कवि के अनुसार उर्वशी चक्षु, रसतर घ्राण, त्वक और श्रोत की कामनाओं की प्रतीक है और पुरूरवा रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द से मिलने वाले सुखों से उद्वेलित मनुष्य। "नारी नर को छूकर तृप्त नहीं होती, न नर नारी के आलिंगन में संतोष मानता है । कोई शक्ति है जो नारी को नर तथा नर को नारी से अलग नहीं रहने देती, और जब वे मिल जाते है, तब उनके भीतर किसी तृषा का संचार करती है । जिसकी तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध है । नारी के भीतर एक और नारी है जो इन्द्रियातीत है । इस नारी का संधान पुरूष तब पाता है, जब शरीर की धारा, उछालते-उछालते, उसे मन के समुद्र में फेंक देती है, जब दैहिक चेतना से परे, वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँच कर निस्पंद हो जाते है।"* इसी प्रकार कवि ने प्रत्येक पुरूष के भीतर एक पुरूष माना है जो शरीर के सामान्य धरातल नहीं रहता । इस पुरूष से मिलने की आकुलता में नारी अंग संज्ञाओं के पार पहुँचना चाहती है । नारी और पुरूष के निभृत और एकांतिक मिलन को कवि ने आधिदैविक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हुए उसे समाधि की समानधर्मा स्थिति के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयास किया है । महामिलन की स्थिति में दोनों एक रूप हो जाते है । द्वैत का भाव नहीं रहता और न रहती है संसृति की अन्य भौतिक सीमाएं । इन सीमाओं के तिरोधान-क्षण में पुरूष नारी को कहता है कि वह :

"अनेक अध्यों के अंधियाले में

---

* रामधारी सिंह दिनकर : उर्वशी भूमिका :पृष्ठ:ख

तुम्हे खोजता फिरा तैरकर बारम्बार मरण को
जन्मों के अनेक कुंजों, वीथियों, प्रार्थनाओं में,
पर, तुम मिलीं एक दिन सहसा जिसे शुभ्र में छोपर
एक पुरुष में अमित युगों के स्वप्नों को आभी सी ।**

दोनों के परस्पर सम्पर्क में आने के पश्चात दोनों को धरती में अधिक आकर्षण लगने लगता है । दैहिक अनुभूतियाँ जब आत्यधिक स्थितियों में समाधिस्थ हो जाती है तो स्त्री पुरुष दोनों एक चिरतन, दिव्य और वायवी सुख का साक्षात्कार करते है । विनोद गोहरे का भी कथन है कि-काम मानवीय प्रेम के लिए जमीन तैयार करता है किन्तु इतने से ही नर या नर को प्रेम का स्वाद नहीं मिलता । प्रेम की जड़े लहू और मांस में अवश्य गढ़ी होती है, किन्तु शाखाएं आकाश तक जाती है । जन्म-जन्मांतरों को अंधा गुहाओं, रहस्यमय वीथियों स्वप्निल छायाओं, रम्य मन:स्थितियों और ललित संवेदनों में सवरण करते हुए नारी और पर एक दूसरे का संधान करते फिरते है । दोनों की आकुल तृषा, दोनों का समर्पण सृष्टि का कारण है।

4.2 <u>विश्वामित्र का मिथक :</u> .. ..

विश्वामित्र और मेनका की कथा को आधार बनाकर लिखा गया काव्य "एक पुरुष और" आधुनिक संवेदना से युक्त है । इतिहास से प्राप्त घटना क्रम के वक्तव्य को कवि ने बदल दिया है । इस काव्य के सभी प्रमुख पात्र प्रतीक बन गये हैं । विश्वामित्र "धरती के सत्य" को

---

1. दिनकर : उर्वशी : पृ. 71
2. डा. विनोद गोहरे : आधुनिक प्रबंधकाव्य उर्वशी छंदविधान लेख से : पृ. : 84

जन्म देते वा ले पुरुष के प्रतीक बन गए हैं । मेनका को स्त्रीत्व के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । उसे अपने यथार्थ अस्तित्व का, शरीर सत्य का पहली बार अनुभव तब होता है जब विश्वामित्र के तप्त हाथ उसे स्पर्श करते हैं शाश्वत पुरुष और शाश्वत स्त्री के रूप में विश्वामित्र और मेनका का प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

"एक पुरुष और" में आज की सबसे बड़ी समस्या अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किए जाने वाले संघर्ष और तत्स्वरूप होनेवाले परिणामों को निर्भीक और सगर्व स्वीकार करने की समस्या है । अस्तित्व का यह संकट आज के यंत्र युग में अपेक्षा कृत और अधिक गहरा गया है। पुरुष यंत्र का जैसा पुर्जा बनकर रह गया है । उसकी अपनी ही निजी इयत्ता जैसे समाप्त हो गयी है । इसी परिवेश में अपनी इमेज को बचाते हुए और जड़ मूल्यों पर प्रहार करते हुए सतत प्रवाहमान जीवन धारा के समतानुकूल स्थापित कर अपनी संघर्ष यात्रा के दौरान जीवन-धारा के अविरुद्ध करनेवाली भीमकाय चट्टानों पर हस्ताक्षर कर पीढ़ियों को सौंपा जाना आज के मानव का सबसे बड़ा संकल्प है । डा. विनय ने विश्वामित्र को इसी संघर्ष से जूझता दिखाया है :

" मेरे सहयोग में तुम- मात्र अप्सरा
देवताओं को भोग्या ही नहीं रही
नयी पीढ़ी को जन्म देनेवाली नैतिकता
एक पूर्ण स्त्री ही निर्माण की शक्ति
और मैं - पूर्ण पुरुष बन गया हूँ --
ऊहापोह चुक गया है मेरे भीतर

मुझे अपने में उतार
तुम पूर्ण नारीत्व को प्राप्त हुई हो
तुम्हें अपने में समेटकर
मैंने पा लिया है पूर्ण पुरुषत्व । " *

विश्वामित्र के अस्तित्व का संकट इस संकट का जवाब देने के लिये डा॰ विनय ने अतदम में झांका है और महाभारत की कथा को आधार बनाया है । महाभारत की कथा अस्तित्व का ऐसा ही संकट विश्वामित्र के साथ भी आता है । विश्वामित्र अपनी तपस्या के बल पर जीवित ही स्वर्ग के उपभोग का अधिकारी बनना चाहते हैं, लेकिन जब इन्द्र यह अनुभव करते है कि ऐसा होने देने से उसके एक छत्र साम्राज्य पर आंच आयेगी तो विश्वामित्र की साधना भंग करने के लिये उर्वशी की बेटी मेनका को धरती पर भेजते हैं । विश्वामित्र के सामने मनेका की उपस्थिति एक नया बोध देती है । विश्वामित्र जो इससे पहले भी ब्रह्मर्षि के पद को प्राप्त करने के लिए वशिष्ट से संघर्ष कर चुके होते हैं । शस्त्र संचालन उनके लिए इसलिए अनिवार्य हो जाता है क्योंकि अपने को स्थापित करने के लिए आदमी को क्या कुछ नहीं करना पड़ता । वशिष्ट की तपस्या विश्वामित्र के लिए ईर्ष्या का कारण बनती है । वशिष्ट के पास कामधेनु है, एक ऐसी गाय जिसके माध्यम से अपनी समस्त इच्छाओं को पूर्ण किया जा सकता है । विश्वामित्र इसे हर कीमत पर प्राप्त करना चाहते हैं -- चाहे शस्त्र से, शास्त्र से या अन्य विधि से । इस प्रक्रिया में ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त करने की इच्छा भी उनके मन में जगती है और इस प्रकार एक अद्भुत अन्तर्द्वन्द्व पहले ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने के लिए तपस्या में लीन होने पर और वशिष्ट से संघर्ष

---

* डा॰ विनय : एक पुरुष और : पृ. 155

मोल लेकर और फिर मेनका के रूप सौन्दर्य पर विमुग्ध होकर अपनी निजी साधना को मेनका को सौंपने या सौंपने देने के बीच विश्वामित्र के मन में संघर्ष का जन्म होता है ।

डा. विनय ने मिथकीय शैली के माध्यम से समसामयिक सवालों से जूझनेकी चेष्टा की है । " एक पुरुष और " के माध्यम से डा. विनय वर्तमान युग के आम आदमी के संकट को और साथ ही साथ सामाजिक नैतिक मूल्यों से सीधे टकराव को प्रस्तुत करते है । कवि के "पूर्वकथन " के नाम से दी जानेवाली भूमिका में इसे स्वीकार भी किया है । " इस प्रकार यह काव्य आज के जीवन की मूल समस्या पर विचार करता है जो एक ओर अपने व्यक्तित्व को सजग करती है दूसरी ओर समाज के नैतिक मूल्यों के साथ सीधे टकराव की स्थिति में, कहीं अन्दर ही अन्दर एक ऐसे बोध को जगाती है जिससे वह अपने लिए नये मूल्यों की स्थापना करता है । " * आज के मनुष्य के सामने काल सापेक्ष्य , पाप-पुण्य शिव - अशिव, वैध अवैध और नैतिकता अनैतिकता से सम्बन्धित अनेक प्रश्न हो सकते हैं जिनका सामना आज के आम आदमी को करना पड रहा है । यह तभी हो सकता है, उनके कालग्रस्त मूल्यों से हमारी असहमति हो किन्तु संघर्ष में असहमति का सवाल ही नहीं उठता । जहाँ भी " क्राइसिस आफ आइडेन्टी " का सवाल उठ खड़ा होता है वहीं संघर्ष आप से आप जन्म लेने लगता है क्योंकि दूसरों के कन्धों पर अपने आप को उठाकर चलना बहुत अच्छा तो लग सकता है । इतना अच्छा कि एक लम्बी यात्रा के बाद फलवती से जाना चाहती है । लेकिन बगैर जूझे न तो कोई यात्रा ही सार्थक होती है और न ही किसी भाषा को समझा जा सकता है । जब भी कोई आदमी स्थापित मान्यताओं के खिलाफ आवाज बुलन्द करता है और पारम्परिक दृष्टि को नयी दृष्टि देना चाहता है तो वह एकाएक अपने सामने पूरे समूह को खड़ा

---

* डा. विनय एक पुरुष और पृ. 5

हुआ पाता है । स्थिति यह आ जाती है । " एक पहचान को नकार कर नयी दिशा देनेवाले इस " एक पुरुष " के शब्दों को उसी की भाषा में समझने केलिए तैयार नहीं होता । एक अजीब कोलाहलपूर्ण संघर्ष जन्म लेता है और वह एक पुरुष उस वाणी को न स्वीकार कर पाने की स्थिति में मौन हो जाना ज्यादा उचित समझता है :

" मैंने क्यों चाहा कि बहती हुई हवाओं को रोककर
एक दिशाएं -
क्यों एक समूह मेरे सामने खड़ा हो गया
चुने हुए शब्दों का उच्चारण
दूषित कर दिया गया
एक पहचान को नकार कर
मेरे शब्दों में नहीं समझ पाये लोग
मेरी बात
मैं नहीं स्वीकार कर पाया उनकी वाणी
मौन - और कोलाहल । " *

एक पुरुष और ऐसी स्थिति में यह सोचने के लिए बाध्य होता है :

" न जाने क्या हुआ मेरे युग को
कि करता रहा आदमी से आदमी
जूझती रही भीड़ जन-पथों पर
अधिकारों की माँग एक मुख में
शताब्दी का पानी नालियों में बह गया -
टूटते रहे लोग अन्दर से बाहर

---

* डा. विनय : एक पुरुष और पृ. 19

और प्रार्थनायें जड़ हो गयीं
दुखान्त स्थितियों में एक साथ । " [1]

विश्वामित्र सोचते है कि आज ऐसी विसंगति और विडम्बनापूर्ण स्थिति क्यों आ गयी कि आदमी आदमी को काटता रहा लेकिन जोड़ नही पाया । क्यों ऐसा हुआ कि आन्दोलनों को कुचल दिया गया । उसकी प्रार्थनायें जड़ हो गयी और आदमी अपने अन्दर पलते-पोसते अपने पशु को और अधिक पुष्ट करता रहा । वही पशु जो भीतर था जब बाहर निकल कर सामने आया तो अनेक विसंगतियाँ पैदा हुई । आदमी जैसे सर्प हो गया सीधा खड़े होने के दंभ में उसकी जैसे कमर ही टूट गयी -

" टूट गयी अगणित लोगों की कमर
सीधा खड़े होने के दंभ में
बिलों से निकलते सर्प
घरों से आदमी । " [2]

विश्वामित्र की मूल समस्या उच्च पद प्राप्त करना है । ब्रह्मर्षि के पद की प्राप्ति इसी प्रक्रिया का चरम परिणाम है । विश्वामित्र ने जब यह सुना कि वह उच्च पद प्राप्त नहीं कर सकते. तो उनमें उसकी प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी ।

ऐसी प्रतिक्रिया जो अपनी इयत्ता को बचाये और बनाए रखने के लिए आज के आदमी के मन में जन्म ले रही है । पुरुष का

---

* डा. विनय : एक पुरुष और : पृ. 19
2 वही : पृ. 20

पौरुष जब जागता है तो दिशाएँ काँपने लगती है, हवाओं के पाँव तेज हो जाते हैं। एक भूचाल आ जाता है और धरती आकाश को एक कर देने का भाव उसमें आयी हुई इच्छाओं को संकल्पों में बदल देता है और इसी परिवेश में विश्वामित्र यदि ऐसा सोचते हैं -

" पौरुष परास्त होने के नियति
स्वीकार नहीं करता। " *

तो कुछ अस्वाभाविक नहीं होता क्योंकि केले के तने को फाड़कर क्रांति की पताका नहीं बनायी जाती और सत्यार्थ को प्राप्त करने के लिए टेढ़े-मेढ़े रास्तों को चुनना ही पड़ता है। क्रांति बेतरतीब शब्दों का उच्चारण, वह आँख बन्द करके फेंके जाने वाला पत्थर है और न पीठ के ऊपर से गुजर जानेवाला अंधड़ बल्कि सुविधाओं को त्यागकर व्यक्तिगत स्वार्थों की बलि देकर सामाजिक कल्याण के यज्ञ में आहुति देता और वह भी निर्भीकता के साथ क्रांति की दिशा में बढ़ाये जानेवाला सच्चा कदम है जैसा विश्वामित्र के मनो मन्थन के माध्यम से इस प्रकार प्रकट हुआ है :

" क्रांति
भीड़ का नारा नहीं
बेतरतीब अपशब्दों का उच्चारण। " 2

विश्वामित्र अपने ही तेज से प्रज्वलित शब्द के अर्थ को व्यक्तित्व चाहता है और अपने प्राप्तव्य के लिए हजारों वर्षों तक जीवित रहने को जिजीविषा उनके पास है। विश्वामित्र यह भी जानते है कि

---

* डा. विनय : एक प्रश्न और : पृ. 20
2 वही : पृ. 36

शास्त्रों की ताकत से न तो कामधेनु झुकायी जा सकती है और न मनोबल को कुचला जा सकता है । विश्वामित्र का द्वन्द से जूझता हुआ साकार व्यक्तित्व है । संघर्ष विश्वामित्र के लिए साधारण सी बात है विश्वामित्र का कभी शस्त्र उठाना, कभी समाधिस्थ होना केवल शरीर को गलाना मात्र है । विश्वामित्र के लिए तो क्रांति का दूसरा ही अर्थ है । विश्वामित्र का संघर्ष आम आदमी का संघर्ष है । यथार्थ से कटकर कोई भी साधना भ्रम की साधना से अधिक नहीं होती इसीलिये " एक पुरुष और " का विश्वामित्र अपने आपसे साफ साफ कहता है - " तुम्हारी तपस्या को देखकर लगता है । तुम सत्य के नहीं भ्रम के उपासक हो । कोई काल्पनिक मोह । तुम्हें कष्ट सहने पर मजबूर कर रहा है । तुम्हारी यह लग्न । तुम्हारी कामना में अधिकार भोग । प्रज्वलित हो रहा है । " *

लेकिन जब भी आम आदमी ऊपर उठने की कोशिश करता है, जब भी धरती पुत्र स्वर्ग छीनने के लिए निकलता है तो आकाशी मेघ उसे बरसकर डुबा देना चाहते है । एक का उत्थान दूसरों का असंख्य गुम्बदों में गिरा देना ऐसा क्यों होता है ? ऐसे ही सवाल है जिन्हें उठाया गया है विश्वामित्र के माध्यम से ।

4.3 नचिकेता का मिथक : .. .. ..

" आत्मजयी " में कुंवर नारायण जी ने नचिकेता के मिथक को आधार बनाकर जीवन शाश्वत मूल्यों की खोज की है । शाश्वत मूल्यों से जुड़ा प्रश्न भी शाश्वत है । मनुष्य किस तरह अपनी वस्तुगत

---

* डा. विनय : एक पुरुष और : पृ. 44-45

सीमाओं का अतिक्रमण करें और ऐसे अमर-जीवन मूल्यों की प्राप्ति करने में समर्थ हो, जो सार्वकालिक और सार्वजनीन बन जाए, यह प्रश्न उठाया गया है प्रस्तुत कृति के माध्यम से ।

थोड़े बहुत अंतर के साथ यह इतिवृत्त अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलता है । इसका सबसे विशद रूप तो " कठोपनिषद " में है, जहाँ यह " उपनिषद " के गुरु अथवा ब्रह्म के समीप बैठनेवालों के अर्थ में ब्रह्मविद्या का सम्यक प्रतिपादन करता है । इस कथा के आरंभिक सूत्र " तैत्तिरीय ब्राह्मण " एवं " महाभारत " में भी उपलब्ध होते हैं । ऋग्वेद में भी इस कथा के सूत्र प्राप्त होते हैं ।

ऋग्वेद में पिता पुत्र के प्रति प्रेम के भाव को व्यक्त किया गया है कि जिस प्रकार पिता के प्रति पुत्र भाव दर्शाते हैं, उसी प्रकार प्राणों के अध्यक्ष के सुखार्थ, ये प्राणमन समर्पणशील पुत्रवत, सत्य, ज्ञान अथवा सुख को भोग्य अन्न तथा अथवा जलवत प्राप्त कराते हैं । *

तैत्तिरीय ब्राह्मण [2] में नचिकेता की कथा मिलती है । ऋषि वाजश्रवस ने सर्ववेदस यज्ञ किया । उनके नचिकेता नाम का पुत्र था । दक्षिणा में दी जाती गौओं को देखकर उसमें श्रद्धा उत्पन्न हुई । उसने पिता से पूछा, आप मुझे किसे देंगे ? इस प्रकार उसने दो ती । बार पूछा । तब पिता ने क्रोधित होकर कहा, " मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ । " उसी समय आकाशवाणी द्वारा कुमार नचिकेता को निर्देश मिला : " अब तुम मृत्यु के घर जाओ । "[3] यमराज इस समय प्रवास पर होंगे ।

---

* सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासोअप्यवीवतन्नृतम
उभे इदस्योभस्य राजत उभे यतते उभयस्य पुष्यत:
ऋग्वेद, दशममण्डल सूक्त 13, मंत्र 5

2 तैत्तरीय ब्राह्मण कांड 3 प्रपाठक 11 अनुवाक 8

3 स - होवाच । परेहिमृत्योगृहित । " तैत्तरीय ब्रा॰ कांड 3 प्रपाठक।।

तुम उनके यहाँ बिना आहार के दो तीन रात तक रहना । लौटने पर यदि यमराज पूछें कि तुम कितने समय से यहाँ हो, तब तुम बताना कि तीन रातों से । जब वह पूछें कि इन तीन रात्रियों ने तुमने क्या खाया? तो उत्तर देना : पहली रात में तुम्हारी प्रजाओं को, दूसरी रात में पशुओं को और तीसरी रात में तुम्हारे पुण्यों को खाया है । " * आकाशवाणी सुनकर नचिकेता प्रवास में गए उस यमराज के द्वार गया । वहाँ तीन रात तक निराहार रहा । यमराज के लौटने पर, उनके प्रश्नों का वही उत्तर दिया जो आकाशवाणी में था । तब यम ने उसे प्रणाम किया और कहा, " वर माँगो । "[2] नचिकेता ने प्रथम वर माँगा कि वह जीवित हो पिता के पास लौट सके । दूसरा वर यह माँगा कि उसके इष्टापूर्त ‡ यज्ञ आदि कार्य ‡ अक्षय हों, और तीसरे वर के रूप में मृत्यु से बचने का उपाय पूछा । तदनंतर यम ने नचिकेता को अग्निचयन की विधि बतलाई और कहा कि जो इस नचिकेता अग्नि का चयन करता है, उसके इष्ट तथा पूर्त यज्ञ सफल होते हैं । यम ने उसे नचिकेता अग्नि का उपदेश दिया, जो इस ज्ञान को प्राप्त करता है । वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है ।[3]

---

* स-होवाच । परेहिमृत्योर्गृहिन । " तैतरीय ब्राह्मण" कांड 3 प्रपाठक ।।

2. तैतरीय ब्राह्मण कांड 3 प्रपाठक ।। अनुवाक 8

3. नमस्ते अस्तु भगव इतिहोवाच वरं वृणीष्वेति तैत्तरीय ब्राह्मण काण्ड

महाभारत के "अनुशासन पर्व" में भी नचिकेतोपाख्यान आता है। युधिष्ठिर द्वारा यह प्रश्न किए जाने पर कि गोदान का फल क्या है? भीष्म पितामह उत्तर देते हुए कथा कहते है "उद्दालक" ऋषि यज्ञ की दीक्षा लेते हैं। उनका पुत्र नचिकेता पिता के आदेश से उनकी सेवा में लग जाता है। यज्ञ के समाप्त होने पर महर्षि ने पुत्र से कहा: "आचमन और स्वाध्याय में ध्यानस्थ होने के कारण समिधाएं, कलश और भोजन नदी तट पर भूल आया हूं, उन्हें ले आओ।"* नचिकेता वहाँ गया, किन्तु उन्हें न पाकर खाली हाथ लौट आया पिता से कहा कि सब वस्तुएं जल में बह गईं, मिल नहीं सकीं। इसे सुनकर भूख प्यास और थकान से व्याकुल उद्दालक मुनि ने पुत्र को शाप देते हुए कहा कि "तुम मृत्यु को देखो।"[2] पिता के इस वज्रवाक्य से आहत होकर, पिता की प्रसन्नता के लिए वह कुछ कहता, इससे पहले ही निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पड़ा। नचिकेता की यह दशा देखकर, "मैंने क्या कर डाला" कहते हुए ऋषि दुःख से मूर्छित हो गए। इस प्रकार पुत्र के लिए शोक करते हुए दिन का शेष भाग और रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातःकाल उन्होंने देखा कि नचिकेता पुनः जीवित हो रहा है, और कुछ ही देर में वह उठ बैठा। उसके शरीर पर दिव्य प्रतिभा विराजमान थी। आश्चर्य को देखकर महर्षि ने पूछा, "क्या

---

* इध्मा दर्भाः सुमनः कलशश्चातिभोजनम्।
विस्मृतं मे तदादाय नदीतीरादिहाव्रज
-महाभारत, अनुशासनपर्व अध्याय: 71

2. यमं पश्येति तं पुत्रमशपत स महातपाः
महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय : 71

तुमने अपने शुभ कर्मों से लोकों को जीत लिया है? और तुमने दिव्य शरीर प्राप्त कर लिया है? पिता के प्रश्न को सुनकर नचिकेता ने उत्तर दिया : "आपके आदेश का पालन करते हुए मैंने हजारों योजन दूर तक सोने की कांति वाली वैवस्वत यम की विशाल सभा को देखा है यम ने आपके सम्मान के अर्घ्य आदि पूजा सामग्री से मेरा सम्मान किया । सभी सभासदों से घिरा हुआ उनसे पूजित होता हुआ मैं बोला "मैं आपके राज्य में आया हूं, मैं जिन लोकों के योग्य हूं, मुझे वहां भेज दीजिए ।"[1] मेरी प्रार्थना सुनकर यम ने मुझसे कहा: सौम्य । तुम मरे नहीं हो । तुम्हारे तपस्वी पिता ने तो इतना ही कहा है कि तुम यम को देखो। अग्नि के समान तेजस्वी पिता का कथन असत्य नहीं हो सकता था । अब तुमने मुझे देख लिया है । तुम्हारे पिता शोक से आकुल हो रहे हैं, अत: तुम लौट जाओ । हे प्रिय अतिथि । मैं तुम्हारी मनोकामना के अनुरूप और क्या दूं? तुम स्वयं इच्छानुसार वन मांगो, तब मैंने उनसे कहा, " मैं आपके यहां आया हूं, जहां से लौटकर कोई वापस नहीं जाता । यदि आप मुझे योग्य समझें तो उन लोकों के दर्शन करवा दें, जहां पुण्यात्मा लोग जाते है ।"[2] उसके अनंतर यमराज ने मुझे घोड़ों से युक्त चमकीले रथ पर बैठकर पुण्यात्माओं के लोकों के दर्शन कराए । वहां दुग्ध एवं घृत की नदियां है । मैंने यम से पूछा: ये नदियां किसके लिए है?" यम ने बताया "जो सत्पात्रों के लिए गौओं को दान करते है उन्हीं के लिए ये नदियां है । गोदान करने वाले यहां निवास करते हैं तथा इच्छानुसार गोरस का सेवन किया करते है ।"

---

1. महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय 7।
2. महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय 7।

तत्पश्चात यमराज ने सविस्तार गोदान की विधि, गोदान के पात्र एवं उसके माहात्म्य का वर्णन किया । इस संदर्भ में यह उल्लेख किया है कि स्वाध्यायरत तपस्वी ब्राह्मण गोदान के पात्र हैं तथा वत्सों का पालन करने वाली, कल्याणकारी दुहने योग्य तथा तृप्त गायों का दान देने पर जितने उनके रोम होते हैं, उतने ही वर्षों तक स्वर्गलोक के अलौकिक पदार्थों का उपभोग करने का अवसर दानकर्ता को प्राप्त होता है ।* अब यमराज की आज्ञापाकर मैं यहाँ आपके पास आया हूँ ।[2]

कठोपनिषद में ऋषि वाजश्रवस ने सर्ववेदस, सर्वमेध अथवा विश्वजित नामक यज्ञ किया । इस यज्ञ में सर्वस्व दान देना होता है । उसने अत्यंत बूढ़ी एवं असमर्थ, अत: अदोह्य गायों का दान करना आरंभ किया । उसके पुत्र नचिकेता ने इसे देखा यह सोचकर कि इन बूढ़ी गौवों के दान से पिता जी को पुण्य के बदले अपुण्य होगा, पिता को इस अपुण्य से बचाने के लिए उसने पिता से पूछा : "आप मुझे किसे दे रहे हैं? ऐसा दो तीन बार पूछने पर क्रोधित होकर पिता बोले : मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ । वाजश्रवा आवेग में कह तो गए, किन्तु नचिकेता को मृत्यु

- यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्या

  स्तावद् वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम ।"

2. अनुज्ञात स्तेन वैवस्वतेन

   प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ।

   महाभारत : अनुशासन पर्व अध्याय : 71

3. "कठोपनिषद" {डा.सुरेन्द्र देव शास्त्री} पृ. : 15-18

के पास जाने को तैयार देखा तो व्याकुल हो उठे । नचिकेता ने पिता को सांत्वनादी कर्तव्य का स्मरण कराया, फिर यम के समीप जाने को तैयार हुआ। यम की अनुपस्थिति में नचिकेता ने तीन दिन, तीन रात निराहार रहकर यमराज की प्रतीक्षा । लौटने पर जब यम को ज्ञात हुआ कि एक ब्राह्मण बालक अतिथि रूप में उनके यहाँ तीन दिन से भूखा-प्यासा पड़ा है तो उन्हें बड़ी चिंता हुई । वे जानते थे कि अतिथि के भूखा रहने से आतिथेय की सभी आशाएं कामनाएं, यज्ञादि पुण्य और कूप-तालाब-धर्मशाला आदि बनवाने के कर्मों के शुभफल नष्ट हो जाते है । अत: उन्होंने नचिकेता के पास प्रणतभाव से तीन वर मांगने का आग्रह किया । नचिकेता ने प्रथम वर के रूप में पिता की क्रोध शांति, द्वितीय वर के रूप में स्वर्ग एवं अमृतत्व प्रदान करनेवाली अग्नि विद्या का उपदेश एवं तृतीय वर के रूप में आत्मज्ञान मांगा । यम ने प्रथम दो वर देकर अतिरिक्त वर भी दिया कि अब से अग्नि नचिकेता के नाम से पुकारी जायगी । नचिकेता की परीक्षा लिए बिना यम उसे आत्मविद्या का उपदेश देने को तैयार न थे उन्होंने उसके सामने लौकिक सुख के अनेक प्रलोभन उपस्थित किए, किंतु नचिकेता विचलित न हुआ । अंतत: यम ने उसे आत्मविद्या का उपदेश दिया तदनंतर मुक्तावस्था को प्राप्त कर लिया, जो मानव जीवन का मात्र लक्ष्य है ।* कवि की दृष्टि में आदिम शंकाकुल प्राणी और आधुनिक युद्धग्रस्त व्यक्ति की द्वन्द्वमयता प्रस्तुत काव्य का लक्ष्य है पुराकथात्मक सन्दर्भ में नचिकेता यम के यहाँ गया

---

* स, होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति
  द्वितीय तृतीय त होवाच मृत्यवे त्वा ददामि ति कठोपनिषद
  अध्याय ।

पर निर्देश नहीं है कि वह कैसे गया अर्थात मर कर गया था कि जीते जी गया इसका उल्लेख नहीं है पर कुंवर नारायण जी ने इस प्रसंग को इस रूप में लिया है कि आत्मजयी में नचिकेता आत्महत्या का प्रयत्न करता है वह मरने के लिए पानी में डूबता है । इस प्रसंग में कुंवर नारायण का यह कथन उल्लेखनीय है-"मेरे द्वारा लिए प्रसंगों में यह उपेक्षित है कि वह वास्तव में मरता नहीं । मरने से पहले ही अचेतावस्था में स्वप्न देखता है-यम से साक्षात्कार यम उसके अन्तर्मन में स्थित मृत्यु का ही पौराणिक रूपहै ।"* इस तरह यह स्पष्ट है कि मूल कथा में कुछ परिवर्तन करके नचिकेता के मिथक की रचना की गयी है । कुंवर नारायण का कहना-"मिथक शास्त्र में मेरी रुचि पहले भी लेवी स्त्रास [उसके कारण] बाद में हुई । मिथकों में रुचि के पीछे पुराकथाओं की अथाह संपदा का आकर्षण तो बचपन में था लेकिन माळबाडकिन ने मिथकों की काव्यात्मक संभावनाओं की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया था ।"[2]

नचिकेता के मिथक में आत्महत्या का एक प्रसंग जोड़ा है फिर भी यहाँ भी नचिकेता को मृत नहीं, अचेत मात्र दिखलाया गया है इसका जो परिणाम है, वह बहुत गंभीर है, और इसमें संदेह नहीं कि उससे कथा की सम्पूर्ण प्रकृति परिवर्तित हो जाती है । निचकेता यम के यहाँ जाने तक का पूरा वृतान्त अलौकिक है उसको ग्रहण करने के लिए आस्था की अपेक्षा है । इस तरह पुरावृत की असंभव कल्पना को हटाकर

---

* कुंवर नारायण : आत्मजयी : भूमिका : पृ. : 7

2. अनिल मेहरोत्रा : कुंवर नारायण और उनका साहित्य
पृ. : 59

प्रसंग को मानवीय सन्दर्भ में पर्यवसित कर दिया गया है कहना नहीं है कि इससे पुरावृत्त रचनात्मक तौर पर एक संस्मरण में बदल जाता है, जिसे इतिहास भी कह सकते है । इस संस्करण में यम न कोई देवता है, न वह अलौकिक सत्ता, वह नचिकेता के अचेतन का प्रतिरूप है ।

नचिकेता और वाजश्रवा के स्वरूप वैशिष्टय का भी एक क्रम से उल्लेख आवश्यक है नचिकेता भौतिक वस्तुओं के प्रतिवीत राग है कवि का कथन है कि-" नचिकेता और वाजश्रवा की असहमति, तथा वाजश्रवा का क्रोध में नचिकेता को मृत्यु के प्रति दे देना, न केवल नयी पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है बल्कि उन वस्तु परक वैदिक तथा आत्मपरक उपनिषद् कालीन दृष्टिकोणों का प्रतीक है ।"* इससे स्पष्ट है कि कवि ने"कठोपनिषद्" के पात्रों को संश्लिष्ट प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करना चाहा है । उनके प्रतीक रूप से यही संभव हुआ है कि वर्तमान युग की यांत्रिक सभ्यता के भीतर समृद्धि और आत्मिक असंयम का अन्तर्विरोध है उनका सम्प्रेषण हो सके । प्रतीक रूप तीन सन्दर्भों में है [1] पुरानी और नई पीढ़ी के सन्दर्भ में [2] वैदिक और उपनिषदकालीन सन्दर्भ और [3] वस्तुवादी तथा आत्मवादी सन्दर्भ में । यह स्वीकार किया जा सकता है कि मूल पुरावृत्त में इस प्रतीकात्मक अर्थवत्ता की भरपूर संभावना थी वाजश्रवा यज्ञ में दक्षिणा स्वरूप जो गायें दान कर रहा था, वे नष्ठा और अपाहिज थी इसका संकेत यह है कि उसमें धन लोभ था और फिर भी उसे कर्मकाण्ड का निर्वाह करना था । उसके प्रतिकूल नचिकेता का स्वभाव निर्लोभ और निस्पृह है ।

कुँवर नारायण ने नचिकेता को दिए हुए वरदानों में केवल पहले

---

* कुँवर नारायण : आत्मजयी : पृ. : 7

और तीसरे को ही अपनी कृति में स्थान दिया है । उन्होंने यम के द्वारा स्वर्ग के अग्नि-विज्ञान का उपदेश उसके प्रसिद्ध होने के वरदान का उल्लेख नहीं किया है वस्तुत: उसका उद्देश्य पुरावृत्त की आवृत्ति नहीं है, वे उसके माध्यम से अपने युग के सम्बन्ध में अस्तित्वपरक चिन्तन की अभिव्यक्ति करना चाहते है । नचिकेता के मिले तीसरे वरदान मृत्यु के रहस्य के उद्घाटन में-मानव जीवन की इस सूक्ष्मतम अनुभूति की व्याख्या है । मृत्यु के स्वरूप तक पहुंचते की जीवनयात्रा में प्राप्त विभिन्न संवेदनों का साक्षात्कार करना पड़ता और इस प्रकार से इस अनुभूति का संधान प्रकारान्तर से अमर अथवा शाश्वत जीवन का संधान बन जाता है । इसी कारण नचिकेताको सृष्टि के प्रत्येक आयोजन में विनाश की गंध आती है । कर्मचक्र में उसके पिता के वरदान का मार्मिक विश्लेषण करता वह कहता है:

"एक साथ उस मुकुट में छिपा है । दोनों को अपने से दूर फेंक दो ।
तुम्हारे सिंहासन के पीछे अभी-अभी । एक तीर की नोक चमकी थी ।
रनिवास में यह असमय विलाप कैसा । मनहूस काली आकृतियां
खम्भों से लगी हुई । यह सब मेरा भ्रम है ; या ।
इन्हें न देख पाना तुम्हारा ; । रहस्यमय काना फूसियां ।
पेचिदगियां जाप ; या गुप्त मंत्रणाएं । यह दान ;
या अज्ञात कुठिरों में कोई अशुभ समझौता ।"*

सब आयोजनोंमें उसे पाखण्ड की गंध आती है उसका मत है कि गलत जीने से सही बातें गलत हो जाती है । आरोपित जीवन-दर्शन से भरी मुखौटों की अंधेर नगरी में नचिकेता नहीं रह सकता इसी कारण यम से साक्षात्कार

---

* कुंवर नारायण : आत्मजयी : पृ. : 6

उसे संस्कृति का चरमानुभव कराता है ।

5. <u>ऐतिहासिक मिथक :</u> .. .. ..

ऐतिहासिक सत्य मिथकीय सत्य के साथ जोड़े जा सकते है जिसमें आर्किटाइपलों का पुनरान्वेषण होता है । ये आर्किटाइपल अपना सन्दर्भ बदल कर आते है क्योंकि आज के तनावपूर्ण जीवन में इनका अस्तित्व उतना ही सत्य है जितना प्राचीन और आदिकाल में था ।

इतिहास का प्रस्तुतिकरण नवीन सन्दर्भों में करने के लीए अशोक को माध्यम बना कर अज्ञेय ने "उत्तरप्रियदर्शी" की रचना की है अशोक को नरक की कथा की प्रेरणा कवि को फह्यान और हुएनत्सांग के यात्रा विवरण से प्राप्त हुई है । अशोक के नरक की कथा में जब सम्राट अशोक पूर्व-जन्म में बालक थे और पथ की धूल से खेल रहे थे, तब शाक्य बुद्ध उधर से भिक्षा मांगते हुए निकले बालक ने प्रसन्न हो एक मुट्ठी धूल उठाकर उन्हें दे दी । बुद्ध ने धूल ग्रहण की और फिर उसे धरती पर ही डाल दिया । इसी दान के फलस्वरूप वह जम्बु द्वीप का राजा हुआ । सम्राट अशोक कलिंग युद्ध के बाद प्रेतात्माओं को मंत्रणा देने के लिए नरक का निर्माण करवाता है । उस नरक में प्रवेश करने वाले किसी भी प्राणी को घोर यंत्रणा प्राप्त होती है । संयोगवश एक भिक्षु उस नरक सीमा में प्रवेश करता है । नकर के गण उसे पकड़ कर खौलते कड़ाहें में फेंक देते है । किन्तु भिक्षु के मुख पर अखण्ड शांति बनी रहती है नरक के विफलता की सूचना से विक्षुब्ध अशोक भिक्षु के सामने गिर पड़ता है और नरक मुक्त होने का कारण जानना चाहता है भिक्षु उसे धर्मोपदेश देता है जिससे राजा को मुक्ति मिलती है । वह नरक को तुड़वा देता है और

पापों के प्रायश्चित के लिए त्रिरत्न को मानने लगता है ।

अशोक के इस पुराख्यान के माध्यम से अज्ञेय ने उन सूत्रों को खोजने का प्रयास किया है, जो अशोक के नरक-निर्माण, कलिंग विजय दर्पस्फीत अहंता और उसके मोहभंग के बीच रहे हैं । प्राप्त निष्कर्षों के विषय में कवि का प्रश्न है "विजय लाभ पहले अंहकार फिर अहंकार के ध्वस्त होने पर नये मूल्यों का बोध,नयी दृष्टि का उन्मेष क्या यही तर्क संगत और सहज मनोवैज्ञानिक क्रम नहीं है । " * वस्तुत: इसी प्रश्न में कवि का उत्तर निहित है । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किसी परिस्थिति से गुजरकर ही व्यक्ति उससे ऊँचा उठ सकता है । दर्पपूर्ण, अहंकार ग्रस्त, मन नारकीय विकृतियों का कारण बनता है किन्तु जब उसे स्वयं ही अपने द्वारा निर्मित नरक की ज्वाला में जलना पड़ता है तो उसका विकार भस्म हो जाता है और वह निर्मल और निष्कलुष हो जाता है किन्तु अशोक करुणा की मन:स्थिति तक स्वयं मनस्ताप में तपकर नहीं पहुँच पाता है, वरन उसकी अंहता परास्त होकर बाह्य आदर्श (भिक्षु) के सामने घुटने टेक देती है । उदात्तीकरण की यह प्रक्रिया अति स्वाभाविक नहीं होती । इसमें आदर्श मानसिक वृत्तियों के भीतर से ही विकसित नहीं होता,वरन् बाहर से आरोपित किया जाता है ।

अपेक्षित उदात्तीकरण के अभाव में मनुष्य स्वयं ही अंहजन्य विकृतियों के नरक में छटपटाता है । इस विकृतिजन्यता से आज का युग मुक्त नहीं है । अज्ञेय ने आज के नये सन्दर्भ में इस निमर्याद अहं की विकृतियों से उत्पन्न दुष्परिणामों और दुर्गतियों के दर्शन किए है ।

---

* अज्ञेय : उत्तर प्रियदर्शी : पृ. 84

इस दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन में उभय निष्ठता पायी गयी है, दोनों इस बिन्दु पर एक है, इसलिए कवि अतीत और वर्तमान में एक साथ स्थित होकर कहता है :

" क्यों यहाँ इतनी व्यथा है ? क्यों
मनुष्य जलें, टूटे जिन्हें
जीना ही जलन था, सांस लेना छटपटाता टूटता ?
क्यों न इनको भी, छुए वह ज्योति ? " *

डा. देवराज का श्रेष्ठ नाट्य काव्य " इला और अमिताभ " है । इस नाट्य काव्य की प्रेरणा कवि को मध्यकालीन यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक एलोईज तथा एबिला की प्रेम गाथा से मिली है । एलोईज मध्य युग का प्रसिद्ध दार्शनिक है महत्वाकांक्षी एलोईज को भेंट उस समय की सबसे विदुषी महिला एबिला से होती है । फुलबेरे, एलोईज के दार्शनिक चिन्तन से प्रसन्न होकर अपनी भतीजी का शिक्षक बनाता है किन्तु इस एबिला और एलोईज में प्रेम सम्बन्धों के होने तथा एबिला के गर्भवती होने की सूचना फुलबेरे को मिलती है । वह उनको विवाह करने के लिए विवश करता है । एबिला अपने प्रेमी एलोईज को दर्शन की ऊँचाइयों तक पहुँचाना चाहती है किन्तु फुलबेरे के आग्रह पर उन्हें समाज के समक्ष अपने विवाह की घोषणा करने के लिए विवश होना पड़ता है । क्रोधित फुलबेरे एलोईज को शारीरिक कष्ट पहुँचाता है उसके बाद विरक्त एलोईज अपनी जगह पर शांति कुंज { विद्यापीठ } बना लेता है । और वहाँ से एबिला को शुभ समाचार पहुँचाता है और अन्त में शांति कुंज को एलोइज एबिला के नाम अर्पित

---

* अज्ञेय : उत्तर प्रियदर्शी : पृ. 5

कर देता है जहाँ एविला जीवन के अन्तिम क्षणों तक भिक्षुणी के रूप में रहती है ।

इस नाट्य काव्य में कवि की दृष्टि में मूल समस्या स्त्री और पुरुष के द्वन्द्व की समस्या है । नारी के अप्रतिम प्रेम और पुरुष के प्रेम की ईश्वर भक्ति या शरणागति में चरम शान्ति और सन्तोष खोजने में परिणति द्वन्द्व को जन्म देती है । स्त्री की दृष्टि में आध्यात्मिक प्रवंचना ही सहज इन्द्रिय तृप्ति अधिक महत्वपूर्ण है । इस समस्या को कवि ने मध्ययुगीन यूरोप की एविला [इला] और एलोईज [अमिताभ] की प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रेम कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है । काव्य में इला और अमिताभ का जीवन वृत्त संक्षिप्त सी चीज़ है । मुख्य वस्तु नायक-नायिका के मनोभाव है एलाईज कष्टपूर्ण जीवन का समूचा दायित्व स्वयं पर लेता है । इसके विपरीत एविला प्रेमी का जीवन व्यर्थ होने से विषादमग्न हो जाती है । कवि की दृष्टि में दोनों का यह विरोधाभास वास्तव में एक दूसरे को अमर बनाना है ।

प्रेमियों की प्रणय गाथा से वंचित होकर नर-नारी के प्रेम सम्बन्ध का समूचा इतिहास अपूर्ण है । उक्त दो जनों की प्रेम कहानी वैसे संबंधों के इतिहास में अद्वितीय है ।

6. " सृष्टि भिक्षुक " - सृष्टि का तात्पर्य यहाँ जीवन से है । जीवन अथवा मृत्यु भी सृष्टि के परिणाम है । इस सन्दर्भ को लेकर कुछ नाट्य-काव्यों की रचना की गयी है ।

" सूखा सरोवर " में लक्ष्मीनारायण लाल ने सरोवर के सूखने को माध्यम बनाकर सामाजिक मर्यादा का निर्वाह प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत नाट्य काव्य को प्रेरणा कवि को एक लोक गाथा से मिली है " सूखा

सरोवर " से कवि का अभिप्राय जीवन या जीवन-रस के समाप्त होने के रूप में लिया है । कहीं कहीं कवि ने " नियन्ता " सत्य के रूप में जीवन की मर्यादाओं को भी सरोवर के प्रतीकार्थ की व्याप्ति स्वीकार की है :

" और हम सबके ऊपर है यह सरोवर
रसदाता जीवनदाता, नियन्ता
सत्य सबका । " *

कहीं कहीं सरोवर मर्यादाओं के टूटने से विघटित जीवन के अभावों से उत्पन्न पीड़ा या जीवन रस की प्यास का प्रतीक है ।

एक राजा की नगरी में एक सरोवर था । एक पूनम की रात में जब राजा सरोवर में नौका-विहार कर रहा था, अचानक सरोवर सूख गया । राजा-प्रजा सभी सरोवर की शरण में विलाप करने लगे । सरोवर के देवता ने प्रकट होकर कहा - " अगर कोई सतवन्ती नार मेरे सरोवर में मंगलघट डाले तो मैं फिर पानी दूँगा । " देवता के अदृश्य होने पर रानी ने अपना घट सरोवर में डाला पर सरोवर में पानी न आया । राजा ने सतहीन रानी को मरवा दिया । फिर रानी की चेरी ने सरोवर में जैसे ही घट डाला सरोवर जल से भर गया । राजा ने उसे रानी बना लिया और सरोवर में जल विहार फिर प्रारंभ हुआ । तब सरोवर की राजहंसिनी के रूप में पहली रानी राजा को सुना सुनाकर एक गीत गाती थी -- " रात भर निंदियाँ न आवे । राजा चलन लगाये बड़ी दूर । महक नहिं आवे । " 2

---

* लक्ष्मी नारायण लाल : सूखा सरोवर : उपक्रम

2 वही : पृ. 14

का प्रतीक है :

" सरोवर पानी ही पाती नहीं
प्यास भी है -
अपनी ही नहीं
सारी नगरी की । " *

कहीं कवि ने उसे देवत्व प्रदान करके पूजा और अर्चना का आलम्बन बनाया है । अनेक स्थानों पर सरोवर अपने स्थूल अभिप्रार्थ में ही प्रस्तुत हुआ है :

" सखियों के संग, सरोवर के उस पार
देवता को दीपदान करने गई थी । " [2]

सूखा सरोवर में " पर सरोवर है कहाँ, हाय कमल कैसे उगेगा " [3] में सरोवर जीवन का और कमल " सत्य " का प्रतीक है ।

लक्ष्मीनारायण लाल का प्रमुख उद्देश्य यह रहा है कि जब शासक जनता के सच्चे प्रतिनिधित्व के दायित्व का निर्वाह न करके या तो निष्क्रिय आदर्शों की झोंक में पलायनवादी बन जायें अथवा सत्ता लोलुप होकर कर्तव्यहीन और निरंकुश हो जाये तो जीवन सरोवर सूख जाता है ।

जो कायर है
यह सिंहासन उसका नहीं है
जो धर्म समझाता है
उसका भी नहीं है ।

---

* लक्ष्मीनारायण लाल : सूखा सरोवर : पृ. 13 2 वही : पृ. 75
3 वही : पृ. 93

केवल उसका है
जिसमें निजत्व है
अधिकृत है जो
परम्परा से
पिता से, पितामह से । " *

बड़ा राजा शासन कार्य को " बोझ " मानकर त्याग का पाखण्ड रचना है और सन्यास ग्रहण कर लेता है । छोटा राजा सत्ता को हथियाने और फिर सुरक्षित रखने में इतना अन्धा हो जाता है कि उसे कर्तव्याकर्तव्य का भान ही नहीं रहता । यहाँ तक कि राजकुमारी को भी उसकी इच्छा के विपरीत सैन्य सन्धि के बदले में मैनापुरी के राजा को विवाह में देना चाहता है । राजा के इस अमर्यादित आचरण से विक्षुब्ध होकर ही राजकुमारी सरोवर में डूबकर आत्महत्या करती है । राजकुमारी का अमर्यादित प्रेमी पागल हो जाती है । क्षुब्ध वृद्ध प्रतिहिंसा से उन्मत्त होकर निरंकुश शासक का पाखण्ड, उद्घोषणाओं द्वारा समर्थन करनेवाले प्रपंची पुरोहित का वध कर देता है और बदले में शासक द्वारा स्वयं भी मारा जाता है ।

कवि विघटित अमर्यादित स्थिति को, मर्यादाओं को, मूर्त स्थापना द्वारा स्वस्थ एवं सरस जीवन के अनुरूप बनाने के पक्ष में है । वह चाहता है समाज रूपी सरोवर ऐसा हो " जिसकी मर्यादा अबाध हो अक्षुब्ध हो । " [2] स्वार्थ का बलिदान करके समष्टि हित के उदात्त धरातल पर प्रतिष्ठित होने से जीवन मर्यादित और सरस हो उठता है ।

---

* लक्ष्मीनारायण लाल : सूखा सरोवर : पृ. 49-50

2 वही : पृ. 46

डा. देवराज का " आहत आत्माएं " भी नाट्य काव्य का ही एक रूप है । एक दृष्टि से इसे सात लम्बी कविताओं की एक बड़ी कविता के अंग है । कवि ने मानव-जीवन में अनुस्यूत दुःख एवं क्लेश [सफरिंग] को अभिव्यक्ति देने के लिए पौराणिक ऐतिहासिक चेतनाओं को चुना है - चेतनाएं है - कर्ण, शाक्य वधू [सुन्दरी] राधा, शाहजहां, कार्लमार्क्स, तीसरा संजय और गांधी । इनमें से मार्क्स और गांधी स्वयं आहत आत्माएं नहीं है अपितु दूसरी आहत आत्माओं के कष्ट को प्रकाशित करनेवाली परदुःख कातर आत्माएं है । विभिन्न देशकाल और प्रवृत्तियों के इन व्यक्तियों में सामान्य धर्म यह है कि ये सभी व्यक्तिगत या सामाजिक पीड़ा से ग्रस्त है । कवि ने चेतना और द्वन्द्व को मानवतावादी दृष्टि से सफलता पूर्वक पकड़ा है और उन्हें आज की सोच एवं संवेदना से जोड़ दिया है । उसने इन पौराणिक ऐतिहासिक चेतनाओं के नवीन आयामों को [उद्घाटित किया है । गौतमबुद्ध के सम्बन्ध में सुन्दरता का नीचे उद्धृत कथन नया, आधुनिक और मानववादी दृष्टि का फल है :

" त्याग और तपस्या के अभिमान में भूल गए
गौतम सिद्धार्थ अपने और अपनी प्रिया के संयुक्त जीवन
उजाड़ने के बाद
जब विश्व के सुखी दम्पत्तियों की जिन्दगी से
खिलवाड़ करने निकल पड़े हैं
उनके तथाकथित करुणा कलित चित्त में
न जाने
किन दमित वासनाओं के ईर्ष्या और भरे बल पड़े हैं । " *

---

* डा. देवराज : आहत आत्माएं : पृ.58-59

कवि की सहानुभूति दलित, शोषित, पीड़ित के प्रति है । डा. देवराज की इन कविताओं में विचार और आवेग का सन्तुलन है किन्तु विचार प्रबल है ।

" अन्तिम निर्णय " में सन् 1971 के भारत-पाक युद्ध को चित्रित किया है ।

कवि विश्रान्त ने इसे युद्ध के विभिन्न प्रसंगों को अलग-अलग उपशीर्षक देकर वर्णित किया है । उदाहरण के लिए " पूर्वांचल खण्ड के उपशीर्षक है गाजी सागर, तीरे जेस्सोर दिल्ली, पूर्व बंगा एवं ढाका । इन शीर्षकों के आधार विविध है । प्रस्तुत नाट्य काव्य में कवि ने सच्चे और झूठे देश प्रेम, शासन तंत्र की दुर्बलताओं व्यापक राजनीतिक भ्रष्टाचार इत्यादि पर चोट की है । कवि में युवकोचित आवेग है ।

कैलाश वाजपेयी ने " महास्वप्न का मध्यान्तर " में जिस विषय को उठाया है वह है - " अस्तित्व बोध " । कवि प्रस्तुत काव्य में अपनी अस्मिता और जीवन की सार्थकता को खोज रहा है । उसे अनुभव होता है मृत्यु मनुष्य की नियति है । इस प्रकार केवल अस्तित्व बोध के कारण व्यक्ति का द्वन्द्व ग्रस्त हो जाना स्वाभाविक है । यह द्वन्द्व ग्रस्त अधिकांश में कवि है यही कारण है कि आलोच्य नाट्य काव्य में आत्मकथात्मकता का अंश बहुत अधिक है ।

कवि की दृष्टि में व्यक्ति को दूसरे जीवधारियों के विपरीत अपनी जिन्दगी स्वयं जीनी (नियोजित करनी) होती है न कि वह जिन्दगी द्वारा जिया जाता है लेकिन आदमी का अकेलापन उसका सत्ता से अनत्ता में खदेड़ा जाना उसके लिए चुनौती का कारण बनता

है । स्मृतियाँ रह रह कर उसे कचोटती है :

" खाद हुआ जा रहा
जिस्म । उफ़
कोहनूर कोलतार में
        किसने ताना दिया
क्या कारखाने में
मेरे अलावा भी कोई है ?
ढले पहर
किसने गिराई चट्टान ?
क्या लड़ाई में था
मैं ?
अब   अब ढेर देखकर
एक एक कर
सलाई से फेंके हुए दिन
बुहारिन याददाश्त ले आई । " •

दु:ख और कैद और अलगाव से छुटकारा पाने के लिए कवि बेचैन है । वह समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहता है । वैसे कवि स्वयं से भयभीत, परम्परावादी है :

" राम जिसे कहता हूँ
वह मेरी नींद है
ईसा, मोहम्मद भी नींद है
        मगर मैं सिर्फ

• कैलाश वाजपेयी : महास्वप्न का मध्यान्तर : पृ. 4

पैतृक सपनों का आदी हूँ । " *

लेकिन कवि अपने स्वभाव को बदलना चाहता है :

" आज तलक जो मैंने जिंदगी
अब जिंदगी
मुझे जी तू । " [2]

अलगाव से छूटकर कवि अपने अस्तित्व से ऊपर उठना चाहता है :

" तुममें सुगंध और रंग की
एक बेज़बान नदीबंद है
तुम्हें अगर खिलना
आ जाए
दुर्दिन नम जाए
उपवन का । " [3]

कवि अपनी महत्ता को सिद्ध करता हुआ कहता है :

" मैं जानता हूँ
नफरत करता हुआ आदमी
पहुँचता है जल्दी
वहीं जहाँ प्रेम का
रास्ता पहुँचता है । " [4]

---

* कैलाश वाजपेयी : महास्वप्न का मध्यान्तर : पृ. 13
2 वही : पृ. 107
3 वही : पृ. 27
4 वही : पृ. 59

कवि का व्यक्तित्व वास्तविक रूप में उसकी आंतरिक क्षमताओं को व्यक्त करता है । कवि में अंतःस्फूर्त अंत:विकास तथा स्वयं स्फूर्त क्षमताओं से स्वयं को बदलने की क्षमता विद्यमान है । इसी शक्ति के परिणाम स्वरूप वह अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त कर सका है । उसकी कल्पना शक्ति इस क्षमता का मूल आधार है । इसी क्षमता से वह अन्य लोगों के जीवन का भागीदार बनना चाहता है :

" तहुल बहुल
भरे पूरे विश्व में
चिड़ियों की तरह अनागार
गा तू मुझमें
मुझे सुला तू अब जिंदगी
जागृति में ला मुझे
सुला
जैसा ठीक हो
अव्यक्त । आ तू । " *

---

* कैलाश वाजपेयी : महास्वप्न का मध्यान्तर : पृ. 107

चतुर्थ अध्याय

समकालीन नाट्य-काव्यों में मानसिक संघर्षों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

1.1 फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर

1.2 दमन

1.3 स्थानांतरण

1.4 तादात्म्यीकरण

1.5 औचित्यस्थापन

1.6 दिवास्वप्न

2. एडलर के व्यक्ति मनोविज्ञान के आधार पर

3. युंग के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के आधार पर

4. ओटोरैंक, केरन हार्नी, एरिक फ्रॉम के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सिद्धान्तों के आधार पर

चतुर्थ अध्याय

समकालीन नाट्य-काव्यों में मानसिक संघर्षों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

व्यक्ति क्या है या व्यक्ति कहाँ अवस्थित है ? इन प्रश्नों का विचार करते हुए कहा जा सकता है कि वह सबसे पहले देश [स्थान] में अवस्थित है क्यों कि वह किसी न किसी देश का नागरिक है तथा वह उस देश की भौगोलिक सीमाओं को परिभाषित कर सकता है वह देश काल में ही नहीं प्रत्युत व्यक्तिगत संबंधों में अवस्थित है । वह व्यक्ति के साथ ही समाज का सदस्य है तथा अपने व अन्य सदस्यों के संबंध को समझता है । तदनुरूप आचरण करता है । देश, काल, परस्पर संबंधों के साथ वह प्रकृति में भी अवस्थित है । अर्थात् संसार के विभिन्न क्रियाकलापों में भी अवस्थित है और वह जानता है, यदि मैं ऐसा करूँगा तो वैसा हो जायेगा और अंत में सूक्ष्म मनोभावों तथा संवेगों में अवस्थित है क्यों कि वह कभी अत्यंत प्रसन्न होता है तो कभी अत्यंत दुःखी । कभी वह सामाजिक परिवेश में अव्यक्त व्यक्तिगत रूप में विद्यमान रहता है तो कभी देश, काल तथा संबंधों के संसार का अतिक्रमण कर अपनी आंतरिक दुनिया में लीन हो जाता है । व्यक्ति मन, समस्त मनोविकारों, भावों तथा अनुभूतियों का उद्गम एवं आश्रय है तथा ये भाव मनोविकार तथा अनुभूतियाँ ही समकालीन नाट्य काव्यों में अभिव्यक्त हुए हैं ।

आलोच्य नाट्य-काव्यों के अधिकतर पात्रों में भी मानसिक की अनुभूति तभी उत्पन्न होती है जब वे पारंपरिक, पारिवारिक और समूहगत सहारों से कट जाते हैं । पारिवारिक संबंधों के कमजोर

......

पड़ते या टूटते ही ये पात्र दीन और असहाय हो उठते हैं । अपेक्षाकृत निष्क्रिय, निर्भर व्यक्ति अपने आस-पास निर्भर करने योग्य किसी को नहीं पाता । अकेला व्यक्ति, अजनबियों का सामना करने पर अपने भीतर और दूसरों में मनोवैज्ञानिक-अन्तर्दृष्टि स्वतंत्र रूप से सोचने की क्षमता और व्यक्तिगत जिम्मेदारी ग्रहण करने की तत्परता से शक्ति पा लेता है ।

मानवीय समस्याओं के सामाजिक-राजनीतिक और धार्मिक समाधानों के मोहभंग हो जाने के बाद, कवियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि व्यक्ति की अनुभूतियों पर ही अपने को केंद्रित करें, क्यों कि जो गिने चुने शेष प्रासंगिक क्षेत्र बचे रहते हैं यह उनमें से एक है । समकालीन नाट्य-काव्यों में कवि व्यक्ति-सीमित संसार को सार्थक सार्वभौमिकता के संदर्भ में रखते हैं, क्यों कि वहीं प्रेम और सुरक्षा है । हो सकता है कि कोई पात्र अनुभव करें कि उसका जीवन खोखला और शून्य है, मगर इस भावना को उसकी प्रकृति या परिस्थितियों के द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है । अपनत्व की भावना को पुनः पा सकने के लिए निरंतर आकांक्षा का चित्रण भी कवियों ने किया है ।

आलोच्य नाट्य-काव्यों में सर्वाधिक अभिव्यक्त होने वाला आदर्श, प्रेम और पारिवारिक निर्भरता का ही है, क्यों कि यहीं व्यक्ति सहारा पा सकता है । परिवार के भीतर प्रेम और स्नेह सबसे पहले माता से पाने की आशा की जाती है । माँ और संतान के संबंध की स्वाभाविक विशेषता घनिष्ठ भावनात्मक लगाव है और यह पति-पत्नी संबंध में कम ही पाई जाती है । परिवार से कटा व्यक्ति शारीरिक या भावात्मक रूप से निरंतर उसी संपूर्ण सुरक्षा और समर्पित प्रेम की वापसी की तलाश में बेचैन दिखाई देता है, जो कभी उसने

बच्चे के रूप में पाया होगा या कम से कम पाने की उम्मीद की होगी और इसी प्रेम को वह पाना चाहता है कभी वह अपने प्रेम पात्र में तो कभी वैवाहिक साथी में या फिर समस्त संसार में । औद्योगिक समाज में मिलनेवाली ने उसे धक्के की तरह लगती है, निरंतर और भी गहरी होती जाती है क्यों कि व्यक्ति की तरह अकेले रहने की तैयारी या नये-नये संबंधों को जोड़ने की क्षमता होती नहीं, मानो यह ज्ञान भी नहीं होता कि दूसरों का प्यार पाने के लिए प्रयत्न भी करना पड़ता है । अगर कहीं प्यार न मिले तो पात्र शायद कभी नहीं सोचते कि गलती उनकी भी हो सकती है इस विषय में किसी प्रकार के अपराध-भाव या अपने-आपको दोषी मानने के उदाहरण बहुत ही कम है । ज्यादातर तो आत्मदया इसके लोगों या परिस्थितियों पर दोषारोपण की भावना ही अधिक दिखाई देती है ।

आलोच्य नाट्य-काव्यों में पात्रों की छोटी-से-छोटी गति-विधियों, मुद्राओं और भावनाओं को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है । लगता है जैसे व्यक्ति जीवन होने प्रमाणस्वरूप अपनी व्यक्तिगत विशेषता बताने का प्रयत्न कर रहा हो । यहाँ अर्थ केवल हिलने-डुलने, स्नायविक प्रतिक्रियाओं और भावनाओं तक सीमित रह जाता है किसी बृहत्तर चित्र से अक्सर इसका कोई संबंध नहीं होता । सार्थक कर्म की संभावनाओं में आस्था न रखते हुए अनेक पात्र गतिहीनता से निदर्शित है । ऐसे नाट्य-काव्यों में कथानक न के बराबर है । अपने पात्र की तरह कवि भी विश्लेषण पर भावनाओं और संवेदनाओं पर अधिक, यानी चारित्रिक विकास के मुकाबले में मनःस्थिति पर ज्यादा ध्यान देता है । एक विशेष तरह का संघर्ष उन लोगों पर लिखे गए नाट्य-काव्यों में मिलता है जिनकी सामाजिक पृष्ठभूमि लगभग वही है जो कवि की रही है ।

जीवन के पक्षों से कवि पूरी तरह से परिचित रहे हैं। अपने ही परिवेश के बीच निजी जीवन की अनुभूतियों को एक खास महिमा मिल जाती है, उधर बाकी सारा समाज और जीवन अन देखा पड़ा रहता है।

समकालीन नाट्य-काव्यों में अधिकतर पात्रों में अपनी पहचान का अहसास तो होता है, मगर सामान्यत: ये बुरी तरह आत्मकेंद्रित रहे हैं। बहुत कम लोग दूसरे के लिए कुछ करते दिखाई पड़ते हैं। उनकी सभी कोशिशों का लक्ष्य मुख्यत: अपनी तात्कालिक इच्छाओं और काम भावनाओं को संतुष्ट करना ही है। निजी संतुष्टि में जरा सी भी देरी से ये बच्चों की तरह निराश और कुण्ठित होते हैं। ऐसी स्थिति में डर यही होता है कि पात्र हिंसक न बन बैठें। मगर आलोच्य नाट्य काव्यों के पात्रों में से कुछ तो पलटकर चोट करते हैं और कुछ अपनी असहायता पर बैठकर कुढ़ते हैं। ऐसे लोगों को मुख्यत: संतोष अपने निकटवर्ती मानवीय संबंधों विशेषकर परिवार से ही मिलता है।

वर्तमान कवि उन लोगों पर आत्मकेंद्रित है जिनकी पीड़ा का स्वरूप या तो पहली बार घर छोड़ने वालों का होता है या प्यार में पहले-पहल असफल हो जानेवालों का। संघर्ष चाहे कितना ही तकलीफ देह क्यों न हो, अन्तत: वह सामाजिक संबंधों और साहचर्य के ऐसे नये स्वरूपों की तलाश की ओर जरूर ले जाता है जो पारंपरिक मूल्यों और पारिवारिक बंधनों से छूटे व्यक्ति को सहारा दे सकें।

इस अध्याय के पात्रों की सामान्य विशिष्टता है - उनकी भावना की सच्चाई, यानी उन लोगों की तकलीफ जो आर्थिक संघर्ष, असुरक्षित मूल्यों और सीमित अवसरों वाली ज़िंदगी से जूझते हैं और जो बिना दूसरों या स्वयं को समझने, विश्लेषित करने की तैयारी के बीच

बढ़े हुए हैं और कुछ लोग ऐसे भी मिलते हैं जो सामाजिक अन्तर्व्यवहार के नये स्वरूप और आत्मनिरीक्षण द्वारा नये-नये राहों की खोज करते हैं जिससे समाज में अपने होने की सार्थकता पा सकें ।

1.1 फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत के आधार पर :-

फ्रायड ने मन की तीन दशाओं का गहन अध्ययन करते हुए उसे तीन भागों में बांटा है - अचेतन,[1] अवचेतन,[2] चेतन[3] । मन के इन तीन भागों में उसने अचेतन को प्रमुख माना है क्यों कि मन का अधिकांश भाग अचेतन है तथा अल्पस्प अंश चेतन ने भी फ्रायड की इस कथन पुष्टि में कहा है कि अचेतन मन गतिशील है और समयानुसार चेतन मन को निर्देश करता रहता है । व्यक्ति के विचार, व्यवहार तथा रहन-सहन की स्वाभाविक और अस्वाभाविक क्रियाओं का मूल कारण अचेतन मन ही है । चेतन मनके समस्त कार्य-व्यापारों का प्रेरणास्त्रोत अचेतन मन है । अचेतन में छिपा विचार जब व्यक्त नहीं हो पाते तब इनके अवरोधन के कारण मानव में ग्रंथि पड़ जाती है और वह मानसिक रोगी हो जाता है ।

"उर्वशी" में पुरूरवा प्रतिष्ठानपुर का प्रतापी विक्रमी सम्राट है । उसने एक बार दानव द्वारा उर्वशी को मुक्त कराया तभी उनके मन में प्रेम का अभ्युदय हुआ । पुरूरवा को मन: स्थिति को व्यक्त करती हुई चित्रलेखा कहती है --

- -

"वृथा लौट आया उस दिन उज्ज्वल शैलों के वन से
नीति-भीति संकोचशील का ध्यान न टुक लाना था,
मुझे स्वच्छन्द उस सपने के पीछे-पीछे जाना था ।।"[1]

पुरुरवा का पराह उसे रोकता है, जबकि इदम उबल पड़ता है । इन दोनों के दबाव को सहते हुए, मध्य से कोई बनाना चाहता है । उर्वशी की रूपराशि ने उसे प्रतिक्रिया करने के लिए झकझोर दिया था, उसका प्रतिबिंब पुरुरवा के मन पर इस तरह से अंकित हुआ--

"एक मूर्ति में सिमट गईं किस भाँति सिद्धियाँ सारी ?
कब ज्ञात था मुझे इतनी सुंदर होती है नारी ?"[2]

उर्वशी के रूप सौंदर्य से पुरुरवा आश्चर्यचकित हो उठा । उसका अचेतन नीति-अनीति की चिंता किये बिना उसे प्राप्त करना चाहता था, पर पराह उसे रोक रहा था इस प्रकार मानसिक स्तर पर अंतर्द्वन्द्व की आँधी आ गई । पुरुरवा बेचैन हो उठा । प्रत्यक्ष इच्छा पूर्ति के मार्ग में नीति-भीति एवं संकोच आ खड़े हुए उसके अहं ने मध्य मार्ग का काल्पनिक निर्माण किया--

"दर्पण, जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है
वह सौंदर्य कला जिसका सपना देखा करती है
नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवन की
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की ।"[3]

---

1. दिनकर, उर्वशी - पृष्ठ 23
2. " , " - पृष्ठ 24
3. " , " - पृष्ठ 24

पुरूरवा प्रथम दर्शन से विमुग्ध हो गया था उसकी रवि शक्ति जागृत हो गई थी । ऐसी अवस्था में सामान्य नारी भी परम सुंदरी प्रतीत होती है, वह तो सर्वश्रेष्ठ अप्सरा थी उर्वशी के रूप की मादकता पुरूरवा के अन्तरतम में व्याप्त हो गयी थी, पर--

"फिर बोले, "जाने, कब तक परितोष प्राण पायेंगे ?
अन्तरग्नि में पड़े स्वप्न कब तक जलते जायेंगे ?"[1]

इंद का यह प्रश्न स्वाभाविक था, क्योंकि पुरूरवा के पराह ने उसे रोक रखा है इंद को कुण्ठ होना जरूरी है । पुरूरवा का अहं इस दो तरफे दबाव को अनुभव कर रहा था वह त्रुटि का तत्काल उपाय नहीं सुझा पाता, पर इंद को बहलाने का प्रयत्न करता है--

"स्यात, अभी तप ही अपूर्ण है, न तो भेद अंबर को
छुआ नहीं क्यों मेरी आहों ने मेरे अंतर को ॥"[2]

अपनी त्रुटि और कमजोरी स्वीकार कर लेने पर भी मन को एक प्रकार का सुख मिलता है इससे निराशा का अंत होता है और संघर्ष करने की शक्ति भी मिलती है और व्यक्ति प्रोत्साहित होकर संकल्प करने लगता है तभी पुरूरवा कहता है--

पर, मैं नहीं निराश सृष्टि में व्याप्त एक ही मन है
और शब्दगुण गगन रोकता ध्वका नहीं गमन है ।
निश्चय, विरहाकुल पुकार से कभी स्वर्ग डोलेगा,
और नीलिमा-पुंज हमारा मिलन-मार्ग खोलेगा ।"[3]

---

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 24
2. " , " , " - 24
3. " , " , " - 25

पुरूरवा सनातन नर है विवेकशील है तभी तो पुरूरवा-उर्वशी संवाद में भी पुरूरवा का पराह बोलता है । उसमें आदिम भारतीय मानव संस्कृति का भी पता चलता है । इस तरह मिथ के द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रकाशन होता है--

"अपशमूल दोनों विकर्म है हरण हो कि भिक्षाटन ।
और हरण करता मैं किसका ? उस सौंदर्य सुधा का
जो देवों की शांति, इंद्र के हग की शीतलता थी ।"[1]

वह नारी अपहरण तथा भिक्षाटन को मानवीय विकृति (विकर्म) कहता है । इस प्रकार पुरूरवा अपनी मानसिकता के सहज संभोग के योग्य भी नहीं है लोक पक्ष और सांस्कृतिक दबाव के कारण कवि के साहस और पौरूष दोनों ने तटस्थ अलग रहे रहकर, उसके अहं को आध्यात्म के आवरण के नीचे कामाध्यात्म का सर्जन करने छूट दे दी । कवि स्वीकार कर चुका है कि "बिना नकाब के बाहर निकलने की अनुमति समाज नहीं देता"[2] अत: आध्यात्म की नकाब पहन कर काम बाहर निकल आया इसीलिए पुरूरवा जिसे अनासक्ति कहकर प्रशंसित करता है, उसे ही उर्वशी मन की द्विधाग्रस्तता कहती है--

"अनासक्ति तुम कहो, किंतु इस द्विधाग्रस्त मानव की
झाँकी तुममें देख मुझे जाने क्यों भ्रम लगता है ।"[3]

उर्वशी के भ्रम का मात्र कारण है जिस उन्मुक्त रमण का विचार लेकर स्वर्ग से वह धरती पर आई थी, उसकी पूर्ति में उसे बाधा

---

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 44
2. " , " , " - कवि कथन - पृष्ठ-ख
3. " , " , " - 45

प्रतीत होने लगी, क्योंकि द्विधाग्रस्त व्यक्ति जीवन के कामानंद को न खुलकर भोग सकता है, न किसी को भोगने में सहायक बन सकता है। उसने पुरूरवा को अन्तर्द्वन्द्व में फंसा हुआ पाकर भय एवं निराशा का अनुभव किया।

पुरूरवा अपने पराह को पहचानता है पर कामोदीप्ति, उसकी तीव्र तृषा और वेदना को समझ रहा था इसी पराह को संभवत: आध्यात्मिकता का नाम दिया करते हैं। इसी के लिए अनासक्त, निर्लिप्त जैसे विशेषणों का प्रयोग भी किया गया है--

"आग है कोई, नहीं जो शांत होती,
और खुलकर खेलने से निरंतर भागती है।"[1]

पुरूरवा के द्वंद्व और पराह का यही संघर्ष है। अचेतन मन के स्तर पर द्वंद्व उबलता रहता है और चेतना के धरातल पर पराह का "सेंसर" अंकुश है। वस्तुत: वह और कोई नहीं है उसका सद्विवेक है। उर्वशी के रूप का रसमय निमंत्रण और पौरुष की ऊर्जा उसे चुनौती देते रहती है परंतु जब वह भोगोन्मुख होता है तभी--

"जाने, किसी अतल से नाद यह आता
अभी तक भी नहीं समझा ?"[2]

इसी स्तर पर पुरूरवा मानसिक रोगी की स्थिति को प्राप्त होता है तब संभोग जैसे प्रकृत मानवोचित क्रिया को स्वाभाविक रूप से

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 46
2. " , " , " - 47

संपन्न नहीं कर पाता इस तरह पुरुरवा अन्तर्द्वन्द्वों के जंगल में फंसकर मानसिक रोगी की अवस्था को पहुंच जाता है ।

"आत्मदान" में अहल्या गौतम की अनुपस्थिति में एकाकी है, किंतु उस समय का प्राकृतिक सौंदर्य उसके अंतर में काम की अनादि वासना को नवीन बल एवं आकर्षण के साथ उद्दीप्त कर देता है--

"यह क्या जो मति पर
कोहरे-सा जमता जाता
तपस्या-वेला में
आज यह उद्वेलन कैसा ।"[1]

कुंती की काम भावनाएं बाह्य परिस्थितियों की विरुद्धता के कारण अपने एकाकीपन में दमित होकर हल्की सी कुण्ठा का रूप ले लेती है यह बाह्य कुण्ठा है । इसी अवस्था में अहल्या इंद्र के अतिंद्य सौंदर्य के दर्शन करती है । अचेतन की काम-कुण्ठा अवचेतन के मार्ग से चेतन में आकर झांकने लगती है और अहल्या "लुटी सी" उन्हें निरखने लगती है उसे लगता है कि प्राणों में मादकता का संगीत गुंजा देना चाहता वह उद्वेलन कैसा है । उसका कामात्मक आकर्षण इंद्र से प्रेरित है और अपनी तुष्टि में तत्पर हो जाना चाहता है । अहं की सापेक्षिक सघनता के कारण अहल्या के इंद्र की काम-वृत्ति को निराशा के सम्मुख समर्पित करना पड़ता है--

"गंधों रंगों की आभा में
रंग-रंगमय संकेतों में

- -

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 3
2. " , " , " - 20-21

तुम्हीं प्रकट हो
अमोघ शरों में
हर कहीं तुम्हारी द्युति छायी
उभरे अंगों के भराव में
मानव प्रकृति के हर दुराव में
छलना में
बांध सबको
बुद्धिगम्य केवल सूक्ष्मतम
तुम वह रूपी ।"[2]

मन के अचेतन स्तर का परित्याग करके सबल काम भावनाओं के रूप में अहल्या के चेतन स्तर पर छा जाता है, पूर्व की निराशा पुनः संघर्ष कराने का प्रयत्न करती है कभी वह दम व संयम का पाठ पढ़ाना चाहती है, कभी अपनी इंद्रियों की चेतना में पराजय का भ्रम दिखाती है--

"ये गुल्मों में उलझ रही कैसी छायाएं बढ़ीं
नहीं, नहीं, ये छलनाएं है मनकी
ये इच्छाएं भोगपरक है, तनकी ।"[1]

किंतु सशक्त काम के सम्मुख निर्बल बनी निराशा अहल्या को काम-विमुख करने में सफल नहीं हो पाती और अहल्या कामोपभोग का हठ निश्चय कर लेती है, जो अहं पर द्वंद की विजय ही है यद्यपि सक्रिय रूप में न होकर अभी विचार के स्तर पर ही विजय व्यक्त होती है--

"कब तक चल सकता है कोई
मृत आदर्शों की पगडंडी पर आंखें मूंदे

---

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 2

देह-धर्म से बहरा होकर
चढ़ते जाना
जीवन-शोषी आचारों की वक्र सीढ़ियां
बाध्यता में बढ़ी
ये लब्धियां
कितनी अपनी हैं ?
कैसे पा सकते हैं सार्थकता
जीवन के

ये रहम रखे से क्षण
तप ! तप !! तप !!!
आखिर कब तक----?"[1]

इन्द्र के साथ रहते हुए अहल्या का काम-भाव अचेतन से उठकर चेतन स्तर पर आ जाता है और मादक प्रकृति एवं इन्द्र मनुहारों से प्रदीप्त-काम अपनी तुष्टि के लिए तत्पर हो जाता है--

"जब इन्द्र ने
अपनी प्रथम रश्मियों से
मेरी अलसाई निढाल देह पर
उन्मत्त स्पर्श दिये घार
मैं रोमांच से भर उठी
संपूर्ण देह कांप उठी
फूलों लदी बेल-सी, मेरी ।"[2]

---

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 4
2. " , " , " - 5

अहल्या के द्वंद्व की काम वासना उसे इन्द्र को आत्मसमर्पण के लिए प्रेरित करती है, किंतु द्वंद्व क्रूर कर्म से उत्पन्न घृणा का अहं एवं उसके मन में बसा प्रेम, ऐसी स्थिति में वह न तो इन्द्र को ठुकरा पाती है और न उसे अपना ही पाती है--

"नहीं
यह कोई पाप कर्म नहीं
यह व्यक्ति का अपने प्रति
सर्वोच्च न्याय है
अपनी रुचि का सत्कार
आत्माभिव्यक्ति है
मैं प्रस्तुत हूँ
हर प्रहार सहने को
मैं प्रस्तुत हूँ
तिरस्कार सहने को ।"[1]

यहाँ स्मरणीय है कि अहल्या का अहं एवं पराह उसके द्वंद्व का पूर्ण पराभव नहीं कर पाता, फलत: यहाँ कुण्ठा का निर्माण नहीं हो पाता इस मानसिक संघर्ष में अनुनय-विनय एवं प्रेम की छद्म स्वीकृति और शक्ति प्राप्त करके द्वंद्व पूर्ण प्रबल हो जाता है और अहल्या द्वंद्व को अपना लेती है ।

इस आंतरिक संघर्ष के अंतर्गत एक पक्ष के रूप में काम अत्यंत प्रबल रहा है । फ्रायड की यह मान्यता रही है कि मनो स्नायु विकृत

- -

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 13

व्यक्ति का द्वन्द्व अनिवार्य रूप से इंद के काम पक्ष पर आधारित होता है। फ्रायड तो घृणा को भी काम का विकार मानते रहे अहल्या में क्रमशः घृणा का पराभव एवं करुणा की विजय होती है--

"अस्मिता को अनदेखा कर
परायी आकांक्षाओं पर बलि हो जाना
अपनों को भूल
परायों के गले आ लगना
नहीं यह "स्व" की सच्ची पहचान नहीं
यह तो मात्र आवर्तन है
जड़ता का
संशय-रहित वह मूल्यों का ।"[1]

इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भावात्मक संघर्ष में बलदेव वंशी जी फ्रायड की इस मान्यता से सहमत है कि मानसिक द्वन्द्व में काम-वृत्ति के साथ संघर्ष-रत वृत्तियां प्रायः अहमिक ही होती है ।

"इला और अमिताभ" में इला अमिताभ की शिष्या बनने के बाद जब उसका प्रथम साक्षात्कार करती है तो उसके अंतर में द्वन्द्व प्रारंभ हो जाता है--

"आज तुम्हारी प्रतिभा के पगचापों के साथ
चेतना की इस सूनी बस्ती में
मानो सौभाग्य-दिवस एक नया आया,
नये-पुराने प्रश्नों की नव परिभाषाओं से
उकसायी जिज्ञासा चिनगियों की

- -

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 40-41

मण-कण-विभाओं से,
नयी तर्क-किरणों से, नये दृष्टि ढंगों से
बोध क्षितिज जगमगाया ।"[1]

अमिताभ अपने युग का महान दार्शनिक है इला से भेंट होने से पहले भी वह अनेक कठिनाइयों एवं संघर्ष से गुजर चुका है उसकी विद्वता और उज्जवल रूप देने के लिए इला के चाचा फुलवरे ने अमिताभ से प्रार्थना की कि वह उसकी भतीजी का पथ प्रदर्शन करें । अमिताभ स्वीकार कर लेता है किंतु शीघ्र ही दोनों में प्रेम संबंध स्थापित हो जाता है जिसके फलस्वरूप अमिताभ में अंतर्द्वन्द्व प्रारंभ होता है ।

अमिताभ शुरू में इला को अपनी ओर आकृष्ट करने और उसके शरीर को पाने का प्रयत्न करता है उसके मूल में उसका अहं और वासना की अभिव्यक्ति इला इस रूप में करती है--

"तुमने शुरू से
मेरे हित-अहित और भविष्य का
विशेष ध्यान करते हुए
मुझे मात्र अपनी इच्छा पूर्ति का
साधना बनाया ।"[2]

इला का उसके प्रति लगाव और उसका अवांछित प्रेम उसके अचेतन में पैठ जाता है क्रमशः वे वह अनुरक्त प्रेमी बन जाते हैं । काम कुण्ठा अधिक सशक्त होते ही मन के अचेतन स्तर का परित्याग करके सबल रूप से अमिताभ के चेतन स्तर पर छा जाती है । धीरे-धीरे अमिताभ

- -

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ - पृष्ठ - 13
2. " , " - " - 77

अपने अध्ययन-अध्यापन के कर्तव्यों से लापरवाह होने लगता है--

"यह तुम क्या करने लगे
दर्शन की पोथियों से, प्रश्नों से मोड़ मुँह
लेखनी की तूली से
रूप कथा प्रीति-व्यथा वचनों के क्रम परचे
नये रंग भरने लगे ।"[1]

प्रारंभ में अमिताभ के प्रेम संबंध का पता चलने पर उसमें कुछ कुण्ठा सी उत्पन्न होती है, किंतु उसका अहं लोकमत की उपेक्षा करने लगता है ।

इला के गर्भवती होने के बाद अमिताभ लाछन-भय से पीड़ित होकर अपने प्रेम की धरोहर को बोझिल हृदय से संभाल नहीं पाता है, अत: वह इला को भगाकर अपनी दूरस्थित बहन के घर ले जाता है, किंतु उसका पराह त्याग का उच्च आदर्श लेकर अहं के पक्ष में मिल जाता है । वास्तविकता के प्रति सजग होते ही अमिताभ इला के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है । इला की काम-वासना उसे आत्म समर्पण करने के लिए प्रेरित करती है, किंतु अमिताभ के प्रस्ताव से विमुख होकर उसका अंतर्द्वन्द्व तीव्र हो जाता है--

"प्रिय यदि तुम मोह औ" अधीरज के वश होकर ले लोगे
अध सोचा गलत निर्णय,
सारा भविष्य बन जायगा अनिश्चित और संकटमय ।
राग और कामना के अतिशय की भूमि में अंकुर ले
उगती जो भ्रांतियाँ
निश्चय ही जीवन में फलती वे सौ सौ अशान्तियाँ ।"[2]

---

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ - पृष्ठ - 21
2. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ - पृष्ठ - 38

उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा यह है कि अमिताभ एक प्रसिद्ध दार्शनिक बने इस प्रकार वह न तो अमिताभ को ठुकरा पाती है और न उसको अपना पाती है --

"प्रिय, मेरा लो प्रणाम
दूर से ही कल्पना में अब मुख-छवि देखूँगी
बैठ गुन गुना लूँगी नाम ।
दूर से करती रहूँगी अब प्रार्थना
बन्धु ! तेरे शुभ और आगम की
दूर से ही आत्मा की आत्मा तक पहुँचेगी
पावना-पुकार व्यथा-सरगम सी ।"[1]

अमिताभ सोचता है कि विवाह की घटना को गुप्त रखकर वह अपनी दार्शनिक और शिक्षक की ख्याति को अक्षुण्ण रख सकेगा किंतु समाज में ख्याति प्राप्त कुलबरे अब लोगों को बताना शुरू करता है कि इला और अमिताभ का विवाह हो गया है । कुलबरे से खिन्न अमिताभ का छद्म-प्रेम अधिक शक्ति पाकर उसके मानसिक संघर्ष का कारण बनता है वह इला से कहता है कि वह अपने बचपन के कान्वेण्ट स्कूल में चली जाए । अहं एवं पराह से प्रप्रताड़ित द्वंद रह-रहकर नवीन आवेग के साथ उभरता है और बार-बार वह कुण्ठित होने लगता है ।

कुलबरे के द्वारा शारीरिक कष्ट पहुँचाये जाने के बाद इला को हीन भावनाओं से ग्रस्त होती है और सोचती है कि उसने विवाह के लिए सहमति देकर अपने प्रेमी को बर्बाद किया--

"नर के व्यामोह बंधन का
नारी ही मूल कारण

- -

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ - पृष्ठ - 38

उर्ध्वगत पुरुष-गति पर छाँह उसकी
पड़ती ज्यों
काल मेघ आवरण ।"[1]

इस प्रकार एक ओर इंद तथा दूसरी अहं एवं पराह के सहयोग से अमिताभ का सम्पूर्ण जीवन भयंकर द्वन्द्वस्थल बन जाता है ।

"सूर्यपुत्र" में जगदीशचतुर्वेदी ने मानसिक संघर्षों का अत्यंत स्थूल रूप में चित्रण किया है । कुन्ती का "सूर्य" के प्रति आकर्षण एक अनादि काम वासना को एक नवीन कला एवं आकर्षण के साथ उद्दीप्त कर देता है--

"वो देखो एक स्वर्ण रथ पर
पूर्ण उद्दाम यौवन में सराबोर
एक राजकुमार
मेरी कलाइयों में पड़ी रेशमी चूड़ियाँ मसल रहा है
कौन तुम
मेरे तमाम अवयवों में वासवी उन्माद घोलने
वाले शलाका
पुरुष
तुम कहाँ हो ?"[2]

कामात्मक आकर्षण से प्रेरित होकर कुन्ती का अहं विचलित होता है और अपनी तुष्टि में तत्पर हो जाता है कुन्ती काम की मादक अनुभूति में विभोर होकर कहती है--

- -

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ - पृष्ठ - 57
2. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र - पृष्ठ - 1-2

"एक अनिर्वचनीय उन्माद मेरी नस-नस में समा गया है
मेरी कल्पना में समा गये हैं तुम्हारे स्वर्णिम उलझे केश
तेजस्वी मुख मण्डल
और अग्नि पिंड सी नयन राशि ।"[1]

जब सूर्य कुन्ती के सौंदर्य का दर्शन करते हैं उनके अचेतन की काम-कुण्ठा अवचेतन के मार्ग से चेतन में झांकने लगती है और सूर्य सुख के सागर में डूब जाते हैं, किंतु वास्तविक परिस्थिति से भिन्न होने पर उनके अंतर में हल्का सा विषाद छा जाता है--

"फिर युवा सूर्य ने झांका अपने अतीत में
तमाम राजनीतिक ऊहापोहों के बीच वर्षों से व्यस्त रहे
भूल गये अपने यौवन की वह पुकार
तमाम कर्तव्य के बीच जो सदा ताजा रहती है
प्रति पल सालती है
कचोटती !
कुरेदती है !"[2]

सूर्य के मानस-पटल पर निराशा अंकित होती है--

"यह उम्र प्यार करने की है या वात्सल्य में मग्न रहने की
परिवार के दायित्व निभाने की है
या पृथा के कच्चे शरीर की
मदांध गंध को चिरपिपासु की तरह
तल छटतक पीने की ।"[3]

- -

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र -पृष्ठ - 2
2. " , " -" - 6
3. " , " -" - 8

सूर्य की यह निराशा अहं प्रेरित है अहं की सापेक्षिक सबलता के कारण सूर्य ने इंद की काम-वृत्ति को निराशा के सम्मुख सम्पूर्ण करना पड़ता है। कुन्ती का पुनः पुनः उद्बोधन, इस अन्तर्द्वन्द्व में उलझा और अहं से विचित सूर्य यह निश्चय करते हैं कि--

"अपहरण नहीं करूँगा
यह शायद मेरी आयु के लिए घातक है
आगामी संतति मुझे एक नराधम के रूप में जानेगी।"[1]

सूर्य की काम कुण्ठा और भी सबल होकर अचेतन में जा पड़ती और अपनी पूर्ति का अवसर खोजती है--

"चीख उठे सूर्य पृथा मैं आऊँगा
आज कोई शक्ति ऐसी नहीं है
जो तुम्हारे मांसल कौमार्य के सशक्त बंधनों में
आने से रोक सके।"[2]

महाद्वचन का मध्यान्तर में कवि इंद्रियों के संबंध को लेकर विवाद ग्रस्त है। एक इंद्री से दूसरी इंद्री में न जा गिरूँ यह सोचकर कवि भयभीत है--

"काम से उठकर
मैं क्रोध में
न जा गिरूँ
इसलिए भी
और इसलिए भी कि
अनिर्णीत हूँ।"[3]

---

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र - पृष्ठ - 10
2. " , " - " - 10
3. कैलाश वाजपेयी, महाद्वचन का मध्यान्तर - पृष्ठ - 7

कवि सोचता है उचित रास्ता दिखानेवाला नहीं है यह केवल कवि का भ्रम है ।

पराह की स्थिति को पारकर कवि को लगता है कि वह कब अपना पक्ष धर रहा है कवि कभी विपरीत तो कभी अनुकूल परिस्थिति में जीया है--

"चिड़िया एक
डूब रही आसमान में
मछली
चाह रही करना उपवास
यह भी निर्बलता ?
बताओ भला
तुम्हे कहाँ जाना था ?"[1]

कभी-कभी कवि ऐसी स्थिति में आजाता है जब उसे कुछ समझ में नहीं आता - मनुष्य कहाँ पर पैदा होगा व्यक्ति की वही स्थिति होगी जो आज अन्य की है अर्थात् पुन: कवि का अहं अवचेतन की स्थिति को स्वीकार करता है--

"जब चिड़िया व्यस्त हैं, चुगना छोड़कर
तै करती
कब फलेगा किसका गर्भ
कितना काम बाकी है
किसके नीड़ में ।"[2]

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यान्तर - पृष्ठ - 8
2. " , " - " - 1

चेतन स्तर पर कवि सोचता है कि व्यक्ति का होना ही, उत्पन्न होना ही कठिन स्थिति है कवि का अहं पुकार कर कहता है--

"मैं ही गया था
मैं ही रहा हूँ लौटकर
भाप का
अहसास सा बचता
गिरता उधर बूँद सा
लुढ़कता शरीर
अपने आतंक से मगर डगमग
एक पैर छोड़कर
मैं बचा लाया फिर
बासी संकल्प, मैं लालची
अब मेरा क्या हो ?"[1]

कवि का संकल्प अनुचित है। अहं के वशीभूत होकर कवि अपनी वास्तविक स्थिति को खो चुका है--

"सहस्त्रार
काफी पीछे की घटना है
औरों का दावा
मैं नहीं करता
मैं कौंधा हूँ
अपने नाम के अँधेरे में
गिरती कंदील सा।"[2]

---

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यान्तर - पृष्ठ - 11-13
2. " , " - " - 13

पराग से जुड़ते ही कवि सोचता है कि मैं परंपरावादी हूँ--

"राम जिसे कहता हूँ
वह मेरी नींद है
ईसा, मोहम्मद भी नींद है
मगर मैं सिर्फ
पैतृक सपनों का आदी हूँ ।"[1]

अहं जुड़ते ही कवि शक्ति हीनता का अनुभव करता है यह वह स्थिति है जब आदमी हताश हो जाता है--

"आदमी इतना हताश मेरे
नहीं ठीक - फिर ?"[2]

कवि में अंतर्द्वन्द्व चल रहा है क्षण भर में क्या होगा यह कवि समझ नहीं पा रहा--

"ज्वार से पहले
व्हेल गा रही है ।"[3]

कवि सोचता है कि व्यक्ति को वास्तविकता को पाये बिना प्रसन्न नहीं होना चाहिए । मंथरा जैसी कुटिल स्त्री की मंत्रणा से राम को राज्याभिषेक से वंचित होकर वन जाना पड़ा । इस प्रकार संसार में कुछ लोग भोग के शिकार होते हैं तो कुछ योग के--

"मंथरा रही है अयोध्या

---

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 13
2. " , " - " - 14
3. " , " - " - 14

दूर मरी पड़ी
मेरी मिल्टेज नाभि में
भजन कहाँ ?
भोग
लोग कुछ नहीं बताये ।"[1]

कवि पुनः चेतना की स्थिति में होता है तब धन, पद, यौवन की वास्तविकता जानना चाहता है वैसे कवि को इन सब भौतिक वस्तुओं से कोई लगाव नहीं है---

"जो आदमी शराब पी रहा है
जिस आदमी को
बुखार चढ़ रहा है
जो आदमी
तिजोरी में बंद है
जिस आदमी को प्रेम हो गया है
जो आदमी साँस साधे है
जो है
प्रधान मंत्री कहीं का
उससे बचो ।"[2]

चेतना की स्थिति में कवि अनुभव करता है कि प्रत्येक वस्तु नाशवान है ऐसी स्थिति में उसे स्वास का आभास होता है---

"हम कुछ पीले
पढ़ते संसार को

---

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 14
2. " , " - " - 20

क्या खाद पानी में हूँ
फूट पाना
याद आ जाए कोंपलों को
चिड़ियाँ तो
आती चली जाएंगी
बावजूद
सूखी टहनियों
दरकी शाखों के
न आएं फूल
कोई काँटा ही हरियाकर
उग आए ।"[1]

व्यक्ति का जीना तभी सार्थक होता है जब वह सांसारिकता को समझ सके कवि जब दस वर्ष का था चारों तरफ युद्ध छिड़ा था । भारत और पाकिस्तान पृथक हुए थे उसने सुना था--

"हिटलर ने खुद को गोली मार ली
फिर टूटी बेड़ियाँ ।"[2]

बचपन में कवि कल्पना लोक में खोया रहता था । आज उसे अनुभव होता है कि हिटलर और गोड्से दोनों को देश प्रेम था । आज वह पूरी तरह से समर्थ हो चुका है । साम्प्रदायिकता में कितना रक्त पात हुआ । नाश-विनाश की सारी परिस्थितियों का चित्रण कर सकता है । रोम, पेरिस, वाशिंगटन इत्यादि का । सारी शक्तियों के रहते हुए भी कवि के मन में अंतर्द्वन्द्व चल रहा है--

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 21
2. " , " - " - 23

"दृष्टि इधर मेरी कमजोर हो गई है
अपनी आवाज तक
बर्दाश्त नहीं
शोर, चकाचौंध, धूम धाम भरी रात में
बनाओ आकाश !
खुशी या खेद
मुझे क्या होना चाहिए ।"[1]

चेतन स्तर पर कवि यह इसे स्पष्ट करता हुआ कहता है कि संसारिक परिस्थिति, संसार की राजनीति में भी लोग जीवित रहते हैं । बम्बई की वर्ली जैसी गन्दी जगहों में घर बनाकर भजन गाते हैं, प्रसन्न होते हैं । हांगकांग जैसे सुंदर जगह पर भी लोग प्रसन्न हैं ।

कवि सोचता है कि मुझ में स्वयं विकसित होने की स्थिति है हर प्रकार का सामना करने की उसमें शक्ति है हर प्रकार की परिस्थिति का सामना कर सकता है राजनीति से दूर स्वयं में प्रतिबद्ध व्यक्ति दोहरी तेहरी वृत्ति का शिकार न होकर वह स्वयं में स्थित हो सकता है--

"क्रांति उतर सकती है
अगर तुम्हें
खिलना आ जाए ।"[2]

कवि सोचता है जिस स्थिति में मैं हूं वह अनुकूल भी हो सकती है प्रतिकूल भी । फिर कवि अहं से ग्रस्त होता हुआ कहता है कि मैं प्रकृति पर विजय प्राप्त कर चुका हूं मैं आदि मानव नहीं हूं । मैं प्रगति कर चुका हूं अब मैं बीज को बेल में बदल सकता हूं, उत्पत्ति नाश का सूत्र पा चुका हूं--

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 23
2. " , " - " - 27

"मैं इस शती का कीर्तिमान
न क्षत्रों की धरती पर थोप आया हूँ
मैंने समुद्रों की छाती चीरकर
पूरी पृथ्वी सिल डाली है
कल वह रसायन भी पा लूँगा मैं
बीज को बेल में बदलने का
सूत्र ।"[1]

अपना महत्व स्थापित करता हुआ कवि कहता है कि मैं अनन्त इच्छाओं को प्राप्त कर चुका हूँ ।

कवि फिर यह सोचता है कि तुम कितना ही प्रयत्न करो मन की इच्छाएं नहीं बदल सकतीं--

"अपनी सुरसा मांगों में कैद
सारा फैलाव मन का है
मन जो उच्छिष्ट है
हर बार ताजाकदर्थ वह
मल की तरह
सुबह शाम बन रहा है ।"[2]

सुरसा ने मुख खोला तो सारा ब्रह्माण्ड उसमें समा गया । मन के लिए नहीं कहा जा सकता है कि उसका कोई अन्त है परिस्थितियों के संदर्भ में कैकेयी ने संपूर्ण व्यवस्था बदल दी थी । दशरथ बूढ़े हो गए कवि मन पिछली इच्छाओं को उत्पन्न कर रहा है--

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 39
2. " , " - " - 40

"चैन नहीं कैकेयी
के खुले केशों को
अपलाप होता है
दशरथ की आँखों का
मोतिया बिंदु भरे
कोई असर नहीं होता
मन छमा छमा बेशरम
पिछेली इच्छाएं ईजाद कर रहा है ।"[1]

यौवन में व्यक्ति सक्रिय रहता है

"हर पिता ययाति है
सब महाद्वीपों पर
सब समय कोशिश यह रही है
शरीर धर्मा
पुरुष जाति की
इंद्रियन पुरस्कार
भरे धमनियों में
रक्त की जगह पस असमदार ।"[2]

यहाँ यौवन इंद्रियासक्ति का प्रमाण है कवि बचपन से यौवन तक कहीं भी स्थिर नहीं रहा । कवि सोचता है कि तुम्हें जो मानव शरीर मिला है उसका सदुपयोग करो जिस तरह ओस की एक बूंद सारे वन को हरित कर देती है—

"तुम किसी धू-धू जलते हुए

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 41
2. " , " - " - 42

जंगल में

शायद

तलाश कर रहे हो ओस की ।"[1]

अहं ग्रस्त कवि अपने अस्तित्व की सामाजिकता को भी स्पष्ट करना चाहता है वह बताना चाहता है कि समाज में उसकी स्थिति क्या है कवि इतना कठोर हो गया है कि दूसरों को देखकर आद्र नहीं होता है । उस पर किसी संवेदना का समाज का कोई असर नहीं होता पतंगा लौ की ओर जाता है आज लौ पतंगों के पीछे है । आज कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से प्रेम नहीं करता । "जन्म विज्ञापन दुर्भाग्य का", यहाँ विज्ञापन स्पर्धा का प्रतीक है । आज नया नागपाश दिखाई पड़ता है जिसमें कोई बचेगा नहीं ।

कवि अहं की द्वंद से तुलना करते हुए सोचता है कि राजनीति रूपी बाज चिड़ियों को पकड़ने के घात में रहता है चीड़िया कृतज्ञ है । बाजरूपी राजनीतिज्ञ, समाज में कहते हैं ये दूँगी वो दूँगी । राजनीतिज्ञ ऊपर से रक्षक और भीतर ही भीतर उनका रक्त चूसते हैं । बाज वास्तव में अपना अधिकार जमाना चाहता है ।

कवि व्यवस्था को ललकारता है नये नागपाश में व्यक्तियों को भ्रम दिया गया है वह नये नागपाश का विरोधी है । अहं की वास्तविकता को समझता हुआ कवि अपना निर्णय देता हुआ कहता है नागपाश में हनिश्चय देना चाहता है । अहं की स्थिति को समझते हुए भी कर नहीं पा रहा है । करने के लिए प्रयत्नशील है सारी व्यवस्था पर कवि चोट करता है । यहाँ सूदखोरी चलती है जहाँ रूढ़ियाँ हैं जहाँ एक ओर हमलावर हमला करते हैं । भारत वह जैसा दिखाई देता है

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 43

जिसमें कोई चेतना नहीं । प्रेम तर्कहीन हो चुका है । अहं की स्थिति तथा समाज के प्रतिरूप को कवि देखता है कवि इतर कवियों को भी नहीं छोड़ता, मजाक उड़ाता है--

"पृथ्वी पर एक एक व्यक्ति प्राय कवि है
प्रकाशित होता है
चुक जाता है कोई
एक संस्करण में
कोई सौ पचास तक
पगार लेता है
असफल हो सफल
दाह संस्करण के आने तक
कोई नहीं रुकता
संस्तुतियां सुनने को
फिर भी लोकैषणा
तुम्हें लुभा रही है ।"[1]

सभी दर्शनों का मजाक उड़ाता हुआ कवि अपना नया दर्शन स्थापित करता है ।

चित्रांकन में कवि अनुभव करता है कि ईश्वर अंधकार है ईश्वर अलक्ष्य है किंतु अलक्ष्य होते हुए भी अपने अस्तित्व को संबोधित कर रहा है वैसे ईश्वर का कोई रूप नहीं । आध्यात्मिक प्रकृति को अपनाए हुए कवि ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है तो उसे मानता भी नहीं ।

---

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 51

कवि में निरंतर अंतर्द्वन्द्व चल रहा है वह सोचता है कि--

"जरूर कहीं भितर खोट है
वरना क्यों दुनिया में
श्रेष्ठी और निर्धन
सेश्वर निरीश्वर
धुआँ धार सज्जन
[कतरन चूहों की]
पाला खाए मनस्ताप का
पड़े हैं चार अरब आदमी ।"[1]

संसार में कैसे-कैसे लोग हैं इन सबका अन्तर्द्वन्द्व कवि में चल रहा है। वियतनाम, ईरान-ईराक का युद्ध, बाल नारी वर्ष की घोषणा - 20वीं शताब्दी में समस्त विश्व की परिस्थिति का चित्रण करता है और समुद्र का रूपक बांधता हुआ कवि कहता है कि आचार संहिता रची गयी है, उस पर कोई चल नहीं रहा समुद्र के गर्भ में आग लगी है और आक्तोपस सारी मछलियों को खा रहे हैं ऐसी स्थिति में आचार-संहिता का कोई महत्व नहीं रह जाता--

"चौतरफा घेरकर
कोमल काया
किसी उद्भिज्ज की
चूस जाते आक्तोपस ।"[2]

कवि अपने अहं का नाश करता हुआ कहता है कि तुम्हारा जो मैं है अर्थात् तुम्हारा और मेरा अंतर समाप्त हो जाना चाहिए और मेरा

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर - पृष्ठ - 73
2. " , " - " - 67

में सारे विश्व में परिवर्तित हो जाना चाहिए । कवि के आत्मसंघर्ष में एक चिंतन नहीं है कवि मानवता एवं इन्सानियत में ही अहं को परिवर्तित करना चाहता है ।

फ्रायड यह मानता है कि अंतर्द्वन्द्व के परिणामस्वरूप मानव मन में, एक पक्ष की इच्छाओं की अपूर्ति से, कुण्ठाओं का निर्माण होता है इन कुण्ठाओं से बचने के लिए वह अनेक विध प्रतिक्रियाओं का सहारा लेता है, जिन्हें अहं की सुरक्षात्मक गतियां कहा जाता है इससे मानव को अचेतन रूप से स्वयं को दोष व ग्लानि से मुक्त करने में सहायता मिलती है ।

1.2 दमन :-

इस प्रवृत्ति के द्वारा हम अनेक प्रकार के प्रत्यक्षों, प्रेरकों, स्मृतियों आदि का चेतन अनुभव से बहिष्कार कर सकते हैं । फ्रायड के अनुसार - "जब हमारी प्राथमिक और पाशविक प्रवृत्तियां हमारे अंतःकरण में बहु नैतिक विचारों के प्रतिकूल होती है और उनमें संघर्ष करती है उन्हें अचेतन में धकेल दिया जाता है । स्पष्टतः दमन का वार सामयिक है ।"[1] दमन के परिणामस्वरूप समाज स्वीकृत व्यवहार किया जाता है, परंतु जब संघर्ष बड़े तीव्र होते हैं दमन से कई प्रकार के विकृत व्यवहार पैदा होते हैं । दमन से व्यक्ति प्रमुख रूप से असुरक्षित रहता है । "उर्वशी" में पुरुरवा अपने सांसारिक प्रेम को सामाजिक भय एवं सांसारिक असफलताओं के कारण दमन ही करने का प्रयास करता हुआ प्रतीत होता है--

"झुके हुए हम धनुष मात्र हैं, तनी हुई ज्या पर से
किसी और की इच्छाओं के बाण चला करते हैं ।"[2]

- -

2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 44

प्रेम में, सामाजिक असफलता के पश्चात उसी परम तत्व की प्राप्ति की लालसा से पुरूरवा सन्यास ग्रहण करता है । पुरूरवा ने सन्यास वृत्ति के कारण भौतिक आकर्षणों की ओर से मुख मोड़ लिया, परंतु लाख प्रयत्न करने पर भी वह अपने मन के सौंदर्याकर्षण को पृथक करने में सफल नहीं हुआ, अतः सांसारिक आकर्षण को उसने आध्यात्मिक सत्ता के प्रति स्थानांतरित कर लिया ।

"आत्मदान" नाट्य काव्य में गौतम द्वारा शाप ग्रस्त अहल्या में हीन भावनाओं का समावेश हो जाता है यही कारण वह बार-बार स्वयं को धिक्कारती है । वह समाज में स्थान प्राप्ति की इच्छुक है । इसीलिए धार्मिक तथा नैतिक जीवन व्यतीत करती है । मानव जन्म प्राप्त करके भी सत्कर्म न करने के हेतु अहल्या अत्यंत दुःखी है । मानव शरीर प्राप्त कर गौतम की सेवा करनी चाहिए किंतु उसने जघन्य अपराध किया है । अहल्या शनैः शनैः सांसारिक सुखों से विमुख होने का प्रयास करती है और विषय वासनाओं को दमन करने का प्रयास करती हुई कहती है--

"मैं भटक गयी रूपों में
दृश्यों में
गंधों में
तब भी तुम तटस्थ बने
चले गये तपको मुझे छोड़कर
हिमवान की शिखर पर
जब तक थी निर्द्वन्द्व
तुम साथी थे सरित प्रवाह में
- -

जब घिरी भंवर में
तुम मुझे चल दिये अकेले
सिद्धि पाने की चाह में ।"[1]

"सीता समाधि" में सीता समाज में स्नेह तथा आदर का स्थान प्राप्त करना चाहती है । इसलिए वह काम भावनाओं को परिष्कृत एवं समाज स्वीकृत स्वरूप में प्रकट करती है ।

फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर सीता का जीवन उसकी दमित वासनाओं का परिष्कृत रूप है प्रस्तुत नाट्य-काव्य में सीता के अचेतन मन की विभिन्न दशाओं के अनेक चित्र अंकित है ।

सीता सन्यासी का जीवन व्यतीत करती है । सांसारिक मोह का परित्याग करती है, भौतिक आकर्षणों से मुख मोड़कर वह अपनी काम भावना को आध्यात्मिक सत्ता के प्रति स्थानांतरित कर देती है ।

"सूर्यपुत्र" ने कुंती काम की तीव्र इच्छा को सामाजिक-धार्मिक अथवा नैतिक कारणवश दमन कर लेती है । विशाखा के प्रति पुत्र स्नेहातिरेक में जब वह विनती करती है तब उसकी इन भावनाओं में दमन का प्रतिरूप दिखाई देता है—

"विशाखा ! मैं नहीं मिटा सकती इस शिशु को नाम हीन
मेरे और सूर्य के प्रचण्ड तेज से
पोषित यह बालक
सभ्यता के इतिहास में एक नया प्रतिमान बनकर जियेगा ।"[2]

कुंती अहं के विनाश के साथ ही पुत्र से अभिन्नता प्राप्ति के लिए रोती गिड़गिड़ाती है ।

---

1. बलदेववंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 46
2. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र, पृष्ठ - 17

"इला और अमिताभ" में अमिताभ अपनी काम-भावनाओं को परिष्कृत एवं समाज स्वीकृत रूप में प्रकट करता है । फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर अमिताभ का दैन्य उसकी दमित भावनाओं का परिष्कृत रूप है अचेतन मन की विभिन्न दशाओं के अनेक चित्र अंकित है कहीं पर वह अपने लौकिक प्रेम का भावना का दमन करता है कहीं पर उसका परिष्कार --

"दर्शन की चिन्ता का स्वाभाविक, शुचि विकास
होता आध्यात्म में
तत्वदर्शी झंटो न अर्थ और काम में ।"[1]

प्रेम में सामाजिक विफलता के पश्चात पुनः समाज में सम्मानित स्थान प्राप्ति की आकांक्षा में संलग्न इला को मायामोह का परित्याग करते देख अमिताभ हर्षित होता है और इला को शुभ संदेश पहुँचाता है जिसकी अभिव्यक्ति इला इस रूप में करती है--

"इसी तरह दिन-दिन निरंतर
प्रभु और प्रभु पुत्र की उज्ज्वल ज्योति की ओर
उन्मुख और अग्रसर
अधिकाधिक शांति की
उपलब्धि कर सकूँगी
और इस तरह कृत कृत्य
व आप्त काम बन सकूँगी ।"[2]

यहां पर स्पष्ट है कि काम भाव का समुचित विकास न होने पर अमिताभ मानसिक रोगी हो गया है अतः इला को व्यवहारिक क्षेत्र में

- -

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ - पृष्ठ - 29
2. " , " - " - 71

सफल होते हुए देखअमिताभ स्वयं भी तृप्त होता है ।

"जानकी जीवन" में फ्रायड के मनोविश्लेषण के अनुसार अयोध्यावासियों की शिष्टता उनकी दमित भावनाओं का परिष्कृत रूप है लंका विजय के उपरांत अयोध्या लौटने के पूर्व वहां के निवासियों के अचेतन मन की विभिन्न दशाओं अनेक चित्र अंकित है--

"आभा आयी नवल मुख की खो गयी म्लानतायें,
वर्षा मानों अवधपुर में हो गयी हो सुधा की ।"[1]

भक्त की कातरता का अत्यंत महत्व है । अयोध्यावासी राम के सौंदर्य पर मुग्ध होकर प्रेम सागर में निमग्न होते हैं । प्रभु-प्रेम में निमग्न होने में उन्हें असीम आनंद की उपलब्धि होती है । प्रति पल वे प्रभु के सामीप्य के लिए व्याकुल रहते हैं । अहम के विनाश के पश्चात ही भक्त और भगवान एकरूपता को प्राप्त होते हैं--

"खिला स्वयं पुष्पक नंदि ग्राम को
समुत्सुका हो जनमण्डली खिंची ।
अंची जनों से भर ग्राम वीथियां,
बढ़ी चढ़ी उमड़ी बड़ी नदी ।"[2]

यह समस्त विनय व्यापार आराध्य के सामीप्य लाभ के लिए ही है ।

राम के दिव्य स्वरूप को निहारते हुए अयोध्यावासी अपने मन की अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करने लगे--

"रूपी मनमोहक यान चंद्रिका

---

1. राजाराम शुक्ल "राष्ट्रीय आत्मा", जानकी जीवन,पृष्ठ-30
2. " , " ," -34

प्रजा जनों की कुसुमावली छुरी ।
अनन्त आँखे पहना उठीं उन्हें,
मनोरथों की कल कंज-मालिका ।"[1]

राम के दिव्य रूप का वर्णन करता हुआ या चेतन मन में व्याप्त नारी-सौंदर्य को समाज-स्वीकृत रूप प्रदान करने में सफल होते हैं--

"मिली महा प्रेम प्रमोद पूर्ण हो
सखी सहेली, मिथिलेश नन्दिनी ।
समस्त श्वश्रु भगिनी सुभागिनी,
सुभामिनी गद्गद् ग्राम देवियाँ ।"[2]

पारिवारिक विरक्ति राम के अहं का विनाश करती है और वे माँ के चरणों में गिर पड़ते हैं--

"शरीर का सम्यक भान भूल वे
अधीर माँ के पद पद्म में गिरे
सिंधु सु अम्बाम्बक अ ज अहं से
मृणाल जैसे कर कुंज से छिने ।"[3]

1.3 स्थानांतरण :-

इस मानसिक रचना में संवेग या भाव एक व्यक्ति से हटकर दूसरे पर केंद्रित हो जाते हैं । फ्रायड ने उन समस्त भावनाओं को, जिनके द्वारा सुख की अनुभूति होती है, "काम" के अंतर्गत ही माना है ।[4]

- -

1. रामाराम शुक्ल "राष्ट्रीय आत्मा", जानकी जीवन - पृष्ठ - 34
2. " , " - " - 36
3. " , " - " - 36
4.

उर्वशी में जब उर्वशी पुरूरवा के प्रेम संबंधी भावनाओं का स्थानांतरण स्वीकृत रूप में करती है तब उसका चेतन मन मोह माया में लिप्त विगत दिनों का स्मरण करके अत्यंत व्याकुल हो जाता है ।

अतीत में प्रिय मिलन संभव न होने से पुरूरवा भी स्वयं को धिक्कारता है--

"क्षुधा और आया उस दिन उज्ज्वल मेघों के वन से
नीति भीति, संकोच-शील का ध्यान न   लाना था
मुझे स्वप्नवत उस सपने के पीछे-पीछे जाना था ।"[1]

पुरूरवा का   अत्यंत प्रबल है भौतिक सुखों की अपेक्षा पुरूरवा उस परम तत्व [सौंदर्य] की खोज में रत है यही कारण है पुरूरवा में हीन भावनाओं का समावेश हो जाता है--

"दृष्टि का जो पेय है वह रक्त का भोजन नहीं है
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है ।"[2]

व्यक्ति के मन के प्रबल काम भाव का स्थानांतरण हो जाने से उसके मन में ग्रंथि नहीं पड़ती, यदि काम भावनाओं को अचेतन से बाहर निकाला नहीं जाता तब व्यक्ति मानसिक रोगी हो जाता है यही स्थिति पुरूरवा की है ।

"सीता समाधि" में सीता अपने भौतिक प्रेम की पीर को राम के प्रेम में परिवर्तित कर देती है । सांसारिक प्रेम का स्थानांतरण आध्यात्मिक प्रेम में करके वह समाज सम्मत कार्य करती है । इस समाज सम्मत कार्य के कारण उसे मानसिक सुख प्राप्त होता है--

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 23
2. " , " , " - 47

"जब से सीता वन में आई, नई प्रेरणा पाई जनने ।
कार्य-कुशलता शोभा अनुपम, भरी सभा में अपनेपन में ।
श्रम दम से सब हर कर बाधा, सुविधा जीवन में साधा ।"[1]

सीता समाज स्वीकृत कार्यों के द्वारा समाज में सम्मान प्राप्ति की इच्छुक है इसीलिए वाल्मीकि की सेवा करती है । धार्मिक तथा नैतिक भावनाओं के द्वारा सामाजिक जीवन को प्रोत्साहित करती है ।

"वाल्मीकि मुनि का सुंदर यह आश्रम है संस्कृति का पावन
पलते हर्षित हम उस पर है, हिल मिल रहते सुखी यहाँ जन
श्रम दम वीर यहाँ के रक्षक, बलधर रिपु के वह है भक्षक ।"[2]

"सूर्यपुत्र" में कुंती असामाजिक अनैतिक भावनाओं का स्थानांतरण समाज-स्वीकृत रूप में करती है । युद्ध के समय कर्ण के सम्बद्ध स्वप्नों को धिक्कारती हुई वह कहती है सांसारिक सुखों की ओर आकर्षित होकर उसने अपकर्म किया । कर्ण का परास कुंती कोशादर्शी की उन्मुक्त करता है । कर्ण अपनी माता कुंती को सांत्वना देते हुए कहते हैं कि युद्ध में वह उसके किसी पुत्र का विनाश नहीं करेंगे ।

"इला और अमिताभ" अपनी भौतिक प्रेम की स्थिति को आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तित कर देता है । समाज सम्मत कार्य के कारण उन्हें मानसिक सुख प्राप्त होता है । शांतिकुंज की स्थापना अमिताभ इसी उद्देश्य से की--

"एकांत त्रयी प्रदेश में अपने भूखंड पर
उसने शांति-कुंज का निर्माण
और अध्यापन ।"[3]

---

1. राजेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 238
2. " , " , " - 240
3. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ, पृष्ठ - 67

अमिताभ के चेतन में भौतिक सुखों से विरक्ति हो गई है । उन्हें सांसारिक एवं शारीरिक सुख झूठे लगते हैं । प्रिया के सुखद स्पर्श से उन्हें अरुचि हो गई है केवल मानव सेवा ही उनके लिए सुखद है ।

"जानकी जीवन" में अयोध्यावासी अपने भौतिक प्रेम को राम के प्रेम में परिवर्तित कर देते हैं उन्हें मानसिक सुख की प्राप्ति होती है उनके मन की वासनाएं तृप्त होती है और मन संतुष्ट होता है--

"हुआ सुखी शोभित राज सद्मयों,
अपार हर्षोत्सव नाद से भरा ।
उमंग उल्लास विकास-पूर्ण हो,
किसी कृती का मुख पद्म क्यों खिला ।"[1]

सीता का पराह अत्यंत सबल है । इसीलिए वह आदर्शवादी हो जाती है । ईद सीता को सांसारिक सुखों की ओर आकर्षित करता है, यह व्यक्ति की काम-भावनाओं से संबंधित है परंतु पराह व्यक्ति को आदर्श की ओर उन्मुख करता है--

अधार्मियों से व दुःअन्द्र आदि से,
निधार्मियों से खल दृष्टि-वृंद से ।
विपत्तियों से हमको उबारता,
सतीत्व ही एक अमोघ अस्त्र है ।"[2]

सीता के मन का प्रबल काम वेग राम पर निरंतर छाया रहता है सीता के ये दमित-भाव प्रभु प्रेम में परिवर्तित होकर लोक कल्याण का कार्य करते हैं--

- -

1. रामाराम शुक्ल " राष्ट्रीय आत्मा", जानकी जीवन -पृष्ठ-42
2. " , " -" -53

"विलासिनी से वन वासिनी भली ।
दिया नरों के मन में महत्व था,
विलासियों से वन-वासियों । तुम्हें ।"[1]

1.4 तादात्म्यीकरण :-

जब व्यक्ति अनेक प्रयत्न करते हुए भी कार्य में असफल रहता है तब उसका साहस क्षीण होने लगता है । व्यक्ति अपने-आपको, अपने आचरण और क्रियाओं को किसी अन्य व्यक्ति के अनुसार बना लेता है ।

"उर्वशी" में पुरुरवा की मानसिक दशा कुछ ऐसी है वह विषम वासनाओं से दूर भागता-भागता थक गया है, परंतु उस परम तत्व का आकर्षण उन्हें सम्पूर्ण ग्रहण कर लेने के विवश करता है । पुरुरवा के परात्म में, जो काम शक्ति की परिचायक है तथा द्वंद में जो आदर्श का समर्थक है, फिर द्वन्द्व में होता है ।

"आत्मदान" में अहल्या गौतम से तादात्म्य स्थापित कर लेती है उनके प्रेम में तल्लीन हो जाती है । आत्मीकरण की इस अवस्था में गौतम की भक्ति ही उसे प्राण प्रतीत होती है--

"जहाँ तपस्या-लीन मेरी देह
अति क्षीण हुई
नहीं दीखती थी मानव, देव असुर को
एक ज्योति वृत्त में अहल्या
में घिरी हुई थी ।"[2]

"सीता समाधि" में सीता प्रकृति के प्रत्येक जड़-चेतन के साथ अपना

- -

1. बलदेव वंशी, आत्मदान - पृष्ठ - 42
2. राजाराम शुक्ल, राष्ट्रीय आत्मा, जानकी जीवन - पृष्ठ - 56

तादात्म्य स्थापित करती है आदि से अंत तक अपने आदर्शों के अनुरूप चलती है आदि से अंत तकअपने आदर्शों के अनुरूप चलती है । सुख में भी दुःख, तादात्म्य की एक अपूर्व स्थिति उस समय से ही प्रकट होती है जब सीता का आगमन होता है वन उपवन में फूल लगने लगते हैं--

"खेत-खेत में घूम घूम कर, गायों से मृदु बाल छुआती ।
लाल घघरिया पहिर मनोहर, विचर बसंती रंग हर जाती
कृषक कृषक का दुःख मिटाकर, सुख देती वह मान लुटाकर ।"[1]

पत्नी के रूप में श्री राम से तादात्म्य स्थापित करती है--

मृदु भाषी मृदु शीला मनहर, रानी की शोभा में अनुपम
सीता करती सेवा कुल की, आत्म-समर्पण कर निज प्रिय
लक्ष्मी ने भण्डार भरे सब, गए प्रजा के दुःख हरे सब ।"[2]

राम की अनुगामिनी बन कर वह भी वन को जाती है और भौतिक शक्ति का गर्वोन्मत्त मस्तक (रावण) चूर कर देती है । दूसरी बार निर्वासन के समय ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में आश्रय लेती है अपने पुत्र लव-कुश पूर्ण मातृत्व प्रदान करती है । वाल्मीकि आश्रम में रहकर लव-कुश उत्तम शिक्षा प्राप्त करते हैं ।

"इला और अमिताभ" में अमिताभ आध्यात्मिक प्रेम में लीन हो जाते हैं । आत्मीकरण की उस अवस्था में प्रभु भक्ति ही उन्हें अपने प्राण सदृश्य प्रतीत होती है ।

अमिताभ अनेक प्रयत्न करते हुए भी कार्य में असफल रहता है तब उसका साहस क्षीण होने लगता है, ऐसे अवसर पर असहाय होकर सहारा खोजता है । विषय-वासनाओं और आकर्षणों को बहुत सुंदर रूप में प्रस्तुत किया है--

---

1. रामेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 13
2. " , " , " - 59

"गृह बंधी जीवन में आध्यात्मिक साधना
कभी ठीक संभव नहीं
संतों की शिक्षा यही, अनुभव यही ।
परमतत्व ईश्वर का साहचर्य सतत रखना
चित्त को निरंतर ही प्रार्थना-उपासना में
ध्यान में निरत रखना,
संभव गृहस्थ के लिए कुछ नहीं वैसा
पत्नी का, पुत्र-मित्र-परिजन का स्नेह-प्रेम
साथ ही लगा रहता जोंक जैसा ।"[1]

"जानकी जीवन" में राम अयोध्यागमन के बाद अपने प्रेम का स्थानांतरण जन सेवा में करते हैं । राम अपने भाइयों के साथ मिलते हैं । वनवास की कथा प्रसंग सुनाते हुए कहते हैं कि कैसे उन्होंने चित्रकूट की मंदाकिनी का परित्याग करके दण्डकारण्य में प्रवेश किया शूर्पणखा, खरदूषण आदि के साथ युद्ध की घटना को सुनाकर राम हर्षित होते हैं ऐसे राम के अंतर्द्वन्द्व को जगह-जगह पर देखा जा सकता है । उनके व्यक्तिगत जीवन में सीता हरण के बाद उनकी मानसिक अस्थिरता का चित्रण कवि ने इस रूप में किया है--

"हम विकल लगे यों खोजने वीथियों में,
मणिधर मणि मानो खो जाता हो दुखी हो ।
सब परम निराशा-लीन प्रत्येक आशा,
कुछ अधिक बढ़े थे चक्षिणी मार्ग-द्वारा ।"[2]

और तृष्णा रूपी दामिनी प्रतिक्षण चमकती रहती है तथा उससे उनका शरीर दिन-रात झुलसता रहता है । जब राम अनेक प्रयत्न करते

- -

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ, पृष्ठ - 33
2. राजाराम शुक्ल "राष्ट्रीय आत्मा", जानकी जीवन, पृष्ठ - 63

हुए कार्य में असफल होते हैं ऐसी कठिन परिस्थिति में अनुमान, जामवन्तु सुग्रीव ही एक मात्र सहारा है जो रावण के पतन और लंका में जानकी के उद्धार में सहायक होता है ।

1.5 औचित्य स्थापन :-

मनुष्य काम भावनाओं का दमन करता है और इन भावनाओं को समाज-स्वीकृत रूप देकर औचित्य करता है किंतु कभी-कभी मनुष्य काम-भावना के अधीन होकर अपने व्यवहार के लिए झूठे कारण और युक्तियां प्रस्तुत करता है ।

"उर्वशी" में पुरूरवा में जब समाज-विरोधी अथवा अव्यवहारिक भावनाओं का समावेश हो जाता है तो अपने पुत्र का राजतिलक करके अपने कार्यों के औचित्य की स्थापना करता है । इस प्रकार पुरूरवा सन्यास ग्रहण करने को भौतिक कष्टों का निवारण बताकर सांसारिक आकर्षण के भेद को छिपा लेता है--

"पहुँच गया मेरा मुहूर्त, किरणें समेट अम्बर से
चक्रवाल के पार विजन में कहीं उतर जाने का
यह लो, अपने गर्मिमान सिर पर से इसे हटाकर
ऐल वंश का मुकुट आयु के मस्तक पर धरता हूँ
लो, पूरा हो गया राज्य-अभिषेक ! कृपा पुष्प की ।"[1]

"आत्मदान" अहल्या सांसारिक जीवन में असफल होने के कारण जवान से विरक्त हो गई है । उसे गौतम के अतिरिक्त अन्य कोई अपना

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 146

प्रतीत नहीं होता, इसीलिए वह बारम्बार गौतम का स्मरण करती है और स्वयं को सावधान करती हुई कहती कि शारीरिक सुख तो क्षणिक है केवल पति भक्ति ही, अंत समय तक साथ देती है--

"मैंने एकांत में
यह बुद्धि-संवलित
सुख तक सीमित कार्य है
नहीं सोचा था
इसके परिणाम दूरगामी है
संततियों को करते भ्रष्ट
एक व्यक्ति के "स्व" अर्थो में कार्य
नहीं जिनके साक्षी कोई आस-पास ।"[1]

इस प्रकार अहल्या गौतम भक्ति के औचित्य को स्वीकार करती है ।

"सीता समाधि" में सीता अपनी अव्यवहारिक भावनाओं को सुरक्षात्मक प्रस्तुत करके अपने कार्य का औचित्य स्थापन करती है । जब राम धर्म पालन में अपनी मर्यादा को बनाये रखने के लिए सीता की अग्नि परीक्षा लेते हैं तब--

"तपी अग्नि में देवी सीता, शुद्ध स्वर्ण सी निखर रही थी ।
भाव सुमन मृदु दीप्ति नयन की, प्रेम कांति मुख निखर रही थी
स्वाहा ही प्रति मानो क्षण क्षण, बरस रही शुचिता के शुचि कण ।"[2]

सीता पुनः अश्वमेध यज्ञ के समय अपनी पवित्रता को सिद्ध करने के लिए धरती में प्रविष्ट होती है--

---

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 35
2. रामेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि - पृष्ठ 213

"पड़ी धरा में दरार गहरी, शब्द भयंकर उआह सी क्षण ।
ठिठक खड़े हो गए पर चित्र लिखे से वहवत सब जन ।
निकला सिंहासन द्युतिकारी, चंवर डुलाती अनुपम नारी ।"[1]

"सूर्यपुत्र" में जब कर्ण अपनी हीन भावना का दमन करता है तब उन भावनाओं को समाज स्वीकृत रूप प्रदान कर औचित्य स्थापना करता है औचित्य स्थापन की इस क्रिया से उसे मनोबल प्राप्त होता है कर्ण की इस भाव की अभिव्यक्ति दुर्योधन इस रूप में करता है--

"रहता था अविचिचिर सदा ही रणांगन में
अपराजेय पौरुष था, अपूर्व रण कौशल
देखा था दुर्योधन ने वैसा अनन्य रूप
नठनजित् नरेश के अद्भुत पराक्रम में
देखा था मित्र की भुजाओं का अपूर्व बल
देखी थी शस्त्र संधान की अजेय
अद्भुत प्रणाली
हुआ था मंत्र मुग्ध
हर्ष से उत्फुल्ल ।"[2]

"इला और अमिताभ" में अमिताभ सांसारिक प्रेम की असफलता को छिपाने के लिए दार्शनिक भाव से शरीर की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हैं निरंतर प्रभु नाम स्मरण करते हैं--

"ध्यान में लगे रहते हुए भ
अपनी कमजोरियों पर सतर्क दृष्टि और
उनसे त्राण पाने के लिए

---

1. रामेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 280
2. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र, पृष्ठ - 55-56

सदा विनीत हो करते प्रार्थना
अपनी सामर्थ्य का अभिमान छोड़कर
समर्पित मन, बुद्धि और हृदय से ।"[1]

"जानकी जीवन" में राम जब काम-भावनाओं का दमन करते हैं तब वह उन भावनाओं को समाज स्वीकृत रूप प्रदान करते हैं । अयोध्यावासी राम का गुणगान करते हैं राम के सद्गुणों को स्पष्ट करते वे कहते हैं--

"कल्याण पर्व प्रिय पावन आज आया
पाया जनेश अपनी रुचि का जनों ने
श्री राम राज्य वह था निज राज्य ही है
होगी न यों सुखवती अमरावती भी ।"[2]

अयोध्यानगर निवासी राम की स्तुति का कारण भौतिक कष्टों का निवारण बताकर संतुष्ट होते हैं और अपनी भावनाओं को इस रूप में प्रकट करते हैं--

"प्यारा नराधिपति नीरधि-सा भरा हो,
आयें जहाँ जलद जीवन जीवनों का,
फूल-फला, हरित-पूरित जो बनाएं ।"[3]

1.6 दिवास्वप्न :-

आदमी सपनों में सांस लेता है । सपनों में जीता है, और जब सपने टूटते हैं, तब वह बिखर जाता है, मर जाता है । आदमी और सपनों का संबंध बड़ा पुराना है ।

---

1. डा. देवराज, इला और अमिताभ - पृष्ठ - 74
2. राजाराम शुक्ल, राष्ट्रीय आत्मा, जानकी जीवन, पृष्ठ - 97
3. " , " , " , " - 98

फ्रायड यह मानता है कि प्रत्यक्ष जगत में अपनी इच्छाओं की पूर्ति में असमर्थ होकर व्यक्ति जब उत्पादक अथवा अनुत्पादक कल्पनाओं में खोकर उनकी पूर्ति का काल्पनिक आनंद लेने का प्रयत्न करता है तो उसकी स्थिति दिवास्वप्न होती है ।[1]

प्रमुख रूप से ऐसी संसार में दो इच्छाएं यश प्राप्ति और लैंगिक प्रेरणा की प्राप्ति होती है । बहुधा इन दोनों इच्छाओं की पूर्ति एक ही दिवास्वप्न द्वारा हो सकती है । इसमें प्राय: भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों कालों के घटक वर्तमान होते हैं । ऐसे दिवास्वप्न में निमग्न होना प्राय: बीमारी का प्रारंभ कहा जाता है ऐसे व्यक्ति का वास्तविक जगत से संबंध टूट जाता है, पर वह शीघ्रता से मानसिक रोग का रोगी नहीं बन पाता । यदि दिवास्वप्न का उचित उपयोग किया जा सके तो परिस्थिति को काबू में लाने की शक्ति निर्माण हो जाता है ।

"उर्वशी" में पुरुरवा अंतर्द्वन्द्वों की व्यथा से तड़पड़ाता हुआ दिवास्वप्न देखने लगता है उसके सारे प्रश्न गूंज कर शून्य में विलीन हो जाते हैं । फिर एकाएक प्रकृति का गान उसे सुनाई पड़ता है ।

"जहां शीतल हरित, एकांत मण्डप में प्रकृति के
कंटकित युवती-युवक स्वच्छंद मिलते हैं ।"[2]

वस्तुत: यह गान धरती का नहीं, बल्कि पुरुरवा के अचेतन के स्तर पर उबलते हुए द्वंद का गान है जो अहं के "सेंसर" के कारण गगनचारी हो गया है । उस गगनचारी मन को द्वंद आलिंगन पाश में जकड़ी उर्वशी की ओर संकेत करता है । पुरुरवा की कामनाएं उद्वेलित होती है, चुंबनों

1.

2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ -

के स्पर्शों का उसे आभास होता है और वह स्पर्श पाने की तृष्णा की चीत्कार को सुनता है ब पर--

"मैं न रुक पाता कहीं
फिर लौट आता हूँ पिपासित
शून्य सेसाकार सुषमा के भवन में ।"[1]

शून्य [कल्पना के दिवास्वप्न] से साकार सुषमा भवन तक विभ्रमित पुरुरवा दौड़ लगाता है । उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती है । वह कहीं भी ठहर नहीं पाता है । काम और यशग्रंथि से पीड़ित मानसिक रोगों की स्थिति पुरुरवा की है । उसके रोगोपचार के लिए उन्मुक्त रूपसी नारी उर्वशी की सर्जना हुई है, किंतु अपने मनोग्रंथियों के कारण पुरुरवा, स्वेच्छा से समर्पित रूपसी नारी उर्वशी को आलिंगन में कसे रहने के बाद भी संभोगानंद से वंचित ही रहता है । पुरुरवा सहज नर नहीं है । वह एक मानसिक रोगी है उसके रचनाजन्य सारे क्रिया-कलाप उसी स्तर पर घटित होते रहते हैं । इसीलिए वह जल, प्रसून, पल्लवों को चूमता और वल्लरी को बाहों में भरकर हृदय से लगाता है किंतु पास में पड़ी उर्वशी से कतरा रहा है । इस प्रकार केवल ग्रंथि के तनाव को ढोता हुआ पुरुरवा एक प्रकार से मानसिक विक्षिप्तता का शिकार हो गया है । कल्पना जगत की उड़ान की शैथिल्य के पश्चात चेतना के धरातल पर लौटते ही उसे फिर अनुभव होता है--

"रेंगने लगते सहस्रों सांप सोने के रुधिर में ।
चेतना रस की लहर में डूब जाती है ।"[2]

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ -
2. " , " , " - 50

उसके अंतर में काम-भावना उद्वेलित हो रही है और वह इस की लहरों में डूब जाता है । कल्पना के प्रबल वेग में उसे यह याद नहीं रहता कि जिस उर्वशी से वह क्रीड़ा कर रहा है वह कामिनी है । अन्तर्द्वन्द्वों से निरंतर संघर्षरत रहने के कारण वह मन के धरातल से क्रिया के धरातल पर उतर नहीं पाता--

"आरती की ज्योति को भुज में समेटे
मैं तुम्हारी ओर देखता एकांत अपलक मन से
रूप से अगम उद्गम की भेद बुनता हूँ
सांस में सौरभ, तुम्हारे वर्ण में गायन भरा है ।
सोंचता हूँ प्राणों को गंध की इस लहर से ।
और अंगों की विभा वीथियों से एक होकर
मैं तुम्हारे रंग का संगीत सुनता हूँ ।"[1]

पुरूरवा उर्वशी के शीतल, सुखद उन्मत्त स्पर्श से अपने को अपने को एक क्षण के लिए अलग करना चाहता है, किंतु वह देखता है कि उसका सारा प्रयत्न बेकार है, उसके लिए उपयुक्त केवल उर्वशी है । उसका अहंकार जागता है और वह अपने पराक्रम को याद करता है और उसके मन में क्षोभ उत्पन्न होती है और अन्ततः वह अपनी पराजय को स्वीकार करता है--

"फूल के आगे वह असहाय हो जाता
शक्ति के रहते निरूपाय हो जाता
×   ×   ×   ×   ×

---

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 50

विह हो जाता सहज बाण से

जीत लेती नारी उसे मुस्कान से ।"[1]

अपनी पराजय को स्वीकारते हुए वह एक कदम सहजता की ओर बढ़ता है क्योंकि उसे अपनी बेबसी का कारण ज्ञात हो गया, जिसे उसने स्वीकृति दी --

"मैं तुम्हारे बाण का बीधा हुआ खग ।"

दूसरे ही क्षण वह एक दूसरी स्वीकृति दे देता है--

"कौन कहता
मैं तुम्हें छोड़कर आकाश में विचरण करूँगा ।"[2]

तत्काल वह अनुभव करता है कि उर्वशी ही उसके मन को शांति पहुँचा सकती है । इंद की अवस्था तक आते ही उसके मन शरीर एक हो जाते हैं । एक स्तर पर आ जाते हैं । वह सामान्य मानव सा सोंचने, समझने और अनुभव करने लगता है ।

पुरुरवा की चेतना देव और मनुज के इस अंतर को स्पष्ट करती है, किंतु संस्कार जन्य मान्यताएँ तथा यश कामना की चाह भी उतनी ही तीव्र हुआ करती है । जितनी कामेच्छा इसीलिए पुरुरवा उर्वशी के यशः गान को क्रिया सम्पन्न करते हुए पुरुरवा अपनी सुपात्रता को सिद्ध करता है ।

मानव का उद्गम स्त्रोत रति-शक्ति और प्रजनन शक्ति है । और मानव अपनी काम-क्रिया के द्वारा सहज रूप से मनुष्य के उद्गम

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 52
2. " , " , " - 52

को प्राप्त करना चाहता है । काम के पूर्वानुभव का आवेग पुरूरवा में जागृत होता है और वह भाव तीव्रता को स्वप्नों सा अनुभव करने लगता है अर्थात् वे स्मृतियां आकार ग्रहण करने लगती है--

"विस्मृतियां निस्तल समाधि से बाहर निकल रही है ।
लगता है चंद्रिका आज अपने में घूम रही है ।"[1]

स्मृतियों के तीव्रावेग में बहते हुए वह अनुभव करता है--

"तिमिर शांति का   तिमिर अंतर्मन की आभा है
दिन में अंतस्थ भावों के बीच बिखर जाते हैं
पर हम चुनकर सामंजस्य करते पुन: निशा में
जब आता अंधकार धरती अशब्द होती है ।"[2]

पुरूरवा के समाधि प्रक्रिया की सार्थकता उसके तर्कों में भी प्राप्त होती है । संभोग एवं समाधि के विभिन्न स्तरों का उद्घाटन पुरूरवा इस प्रकार करता है--

"महाशून्य के अंतर-गृह में, उस अद्वैत-भवन में,
जहां पहुंच दिक्काल एक हैं, कोई भेद नहीं है ।
इस निरभ्र नीलान्तरिक्ष की निर्जर मंजूषा में
सर्ग-प्रलय के पुरावृत्त जिसमें समग्र संचित है ।"[3]

पुरूरवा उर्वशी के संवादों द्वारा कामाध्यात्म्य का प्रतिपादन किया गया है । पुरूरवा संभोग के द्वारा प्रकृति और पुरुष के महामिलन की घोषणा करता है समाधि   पुरूरवा का यह कथन है कि--

- -

1.   दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 63
2.
3.   दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 67

"जो अनेक कालों के अधियाले में
तुम्हें खोजता फिरा तैरकर बारम्बार मरण को,
जन्मों के अनंक कुंजों, वीथियों, प्रार्थनाओं में,
पर, तुम मिली एक दिन सहसा जिसे शुभ्र मेघों से
एक पुष्प में अमित युगों की आभा-सी ।"[1]

पुरूरवा अपने इस उत्तर में उर्वशी के सहयोग से प्राप्त संभोगानंद के प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है । तनत्व से मुक्त होकर वह स्वयं को हल्का-फुल्का कर रहा था और संभोगानंद से उल्लसित उसका मन उसी सुख में निमग्न हो जाना चाहता था । अत: शैथिल्य काल में स्वप्नों के लोक में प्रवेश कर जाने को व्याकुल हो जाता है । वह संभोग के सघन क्षणों के आनन्द के समूचे जीवन का तिरस्कार करना चाहता है, किंतु देह के स्तर पर यह संभव नहीं है । इसी कारण वह चेतना के सिंधु के पार जाकर शून्य अंबर [दिवास्वप्न] में प्रणय को प्रस्थापित करने का प्रयत्न करना चाहते हैं । उसका यह प्रयत्न असंभव है । प्रत्यक्ष में जिसको पाना असंभव है, उसे अवचेतन के स्तर पर जाने का प्रयत्न ही दिवास्वप्न है । उसका पश्चात्ताप इस बात का प्रमाण है--

"कहां उच्च शिखर वह, काल का जिस पर अभी विलय था
और कहां यह तृषा ग्राम्य नीचे आकर बहने की
पर्वत की आसुरी शक्ति के आलोचन में ।"[2]

संभोगानंद को पुरूरवा प्रथम पंक्ति में स्वीकार करता है पर ग्राम्य तृषा कहकर तिरस्कृत भी करता है शैथिल्यजन्य असमर्थता में फिर स्वप्न के अतिरिक्त कौन सा मार्ग शेष रह जाता है ? स्वप्नों की ओर अभियान करता हुआ पुरूरवा प्रश्न करता है--

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 71
2. " , " , " - 74

"भ्रांत स्वप्न या जान बूझकर मुझे भ्रमा रही हो ।"[1]

उर्वशी उत्तर देती है - भ्रांति नहीं, अनुभूति, जिसे हम सब ईश्वर कहते हैं और पुरुरवा अनुभूति में कल्पना का योग करके स्वप्नों में तैरने लगता है । सर्जना में पुरुरवा अचेतन के स्तर पर द्वंद की अवस्था को इस प्रकार व्यक्त करता है--

"विधि-निषेध, सत्य ही स्मात जल पर की रेखाएं हैं
कोई लेख नहीं उगता भीतर के अगम सलिल पर ।
और ज्वार जो भी उठता अपर अचेत-अतल से,
विधि-निषेध का उस पर कोई जोर नहीं चलता है ।"[2]

तृप्ति की राह में पुरुरवा निरंतर प्रयत्नशील है वही अवचेतन से ज्वार को उठा रहा था यही कारण है कि पुरुरवा को स्वीकार करना पड़ता है--

"स्यात योग सामास उपेक्षा भर है इस स्वीकृति की,
हम निसर्ग के बंद कपाटों को न खोल सकते हैं,
अशेष स्यात साधनाएं प्रयास है थकी हुई प्रज्ञा को
अन्वेषण में, किसी भांति भी, निरत किये रहने का ।"[3]

पुरुरवा का मन क्रिया से दूर रहकर शैथिल्य के कारण स्वप्नों के अन्वेषण में रत रहता है किंतु कल्पना के थकते ही उसे पुनः क्रिया की ओर लौटना पड़ता है । उसका निर्णय है कि उर्वशी के उपकार को नकारा नहीं जा सकता । उर्वशी के उपकार को स्वीकार कर पुरुरवा भ्रमित हो जाता है और इस निष्कर्ष पर पहुंचता है--

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 74
2. " , " , " - 84
3. " , " , " - 84

"जहां जहां तुम मिली निष्पलक नयनों की आभा से
रहा सींचता मैं, आगे तुम जहां-जहां जाओगी,
साथ चलूँगा मैं सुगन्ध से खिंचे हुए मधुकर सा
या कि राहु जैसे विधु के पीछे-पीछे चलता है ।"[1]

पुरुरवा के संभोगानंद का यही कामाध्यात्म्य है । गंधमादन पर्वत पर एक वर्ष पर्यंत पुरुरवा-उर्वशी के साथ रमण करता रहा उधर प्रतिष्ठानपुर के अंतःकक्ष में औशीनरी प्रार्थना करती रही और मंत्रीगण तथा प्रजाजन पुरुरवा के दर्शन के आँखें बिछाये रहे । एक वर्ष पर्यंत विलास निमग्न राजा के राज्य तथा उसकी आत्महीनता का परिणाम [दिवास्वप्न] है । सर्जना की आँखें तथ्यों की ओर से बंद है जो तथ्य सामने आते हैं वह यह है कि स्वप्नों में खोया हुआ पुरुरवा रूप और संभोग के दरिया में डूबता उतराता जब कभी अपने अनुत्तर दायित्वों को पराह में करवट लेते या कसमसाते हुए पाता था तब वह प्रकृति पुरुष रूप-अरूप, योग-भोग, समाधि-संभोग आदि के सपनों में स्वयं को गर्क कर देता था । इस प्रकार एक वर्ष उसके लिए एक निमिष बन गया । मुक्ति के पश्चात इंद की शिथिलता में अहं के धरातल पर आते ही पुत्रेष्टि का दूसरा सपना देखने लगा । प्रतिष्ठानपुर आते ही रानी को राज पुत्र, प्रजा को राजा और सभी को धर्मानुष्ठानी होने का प्रमाण देने के लिए वह लालायित हो उठा । एक वर्ष पुत्रेष्टि यज्ञ में बीत गया । सुभ्रांत व्यक्ति की दोहरी ज़िंदगी जीने के लिए यह बहुत बड़ा प्रमाण है किंतु प्रजा के समक्ष अभिनय की असफलता, औशीनरी के प्रति उत्तरदायित्व भी - दोनों से व्यथित पुरुरवा अंत में सन्यास ग्रहण करता है ।

"सीता समाधि" में प्रथम जगत में अपनी इच्छाओं की पूर्ति में असमर्थ होकर कल्पनालोक में विचरण करने लगती है । प्रथम राम से

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 96

प्रथम साक्षात्कार के समय कल्पनाओं में खो जाती है, सीता की यह स्थिति दिवास्वप्न की है--

"चित्र लिखे से राम दीखते, छिपती लेखा बदली धेरे ।
आई सुध मति की गति खोई, स्वप्न रहा या माया कोई ।"[1]

"सूर्यपुत्र" में सूर्य की काम कुण्ठा दिवास्वप्न का रूप लेती है कल्पनालोक में विचरण करते हुए सूर्य सोचने लगते हैं--

"धरती का यह अंक कितना सुंदर है अभूतपूर्व ।
कितने मोतियों भरे हैं तालाब, गुलाब, झंपा
और मौलासिरी के पेड़ ।"[2]

सूर्य के आनंद में अकस्मात मधुर भावनाएं जागृत होती हैं--

"इस सुख का लालित्य कितना वैभवपूर्ण होगा
कितना संतोषमय
यह उनके मुख झलक आये
शिशु मुख में एक मिठास घोल रहा था ।"[3]

सूर्य को प्रतीत होता है कि अंतर में गूंजनेवाली काम की बंशी प्रकृति में भी सब ओर बज रही है ।

"गवाक्ष से झांका तो उनको बिखरे हुए बादल दिखाई दिये
हरी द्रुम पर कोंपले नहीं थी पृथा के रेशमी अधर थे प्रतीक्षाकुल ।"[4]

- -

1. राजेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 28
2. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ - 11
3. " , " , " - 8
4. " , " , " - 9

सूर्य की काम कुण्ठा अधिकाधिक सशक्त हो जाती है--

"सूर्य को लगा कि दिशायें केवल प्रेम चाहती है
सारा कार्य का प्यार किसी एक संबंध को समर्पित है
जो शरीर के आह्वान पर
सूर्य की विह्वलता से रसस्नात होकर
झूम-झूम कर लिपटने को ही स्वर्ग-सिद्धि मानता है ।"[1]

सूर्य की काम कुण्ठा कभी संयम का पाठ पढ़ाना चाहती है
तो कभी इंद्रियों की चेतना में पराजय का भव दिखाती है--

"सूर्य ने दिन का अधिकांश भाग
चुपचाप घूमते हुए
मन को प्रतिक्षण उद्वेलित करते
विचारों में डूबे
इस प्रकार व्यतीत किया ।"[2]

इस प्रकार सूर्य की काम कुण्ठा उनके अंतर्द्वन्द्व और तीव्र करती है ।

"इला और अमिताभ" इला जब यथार्थ में भली-भाँति स्वीकृत नहीं होती तो दिवास्वप्न देखने लगती है परिस्थितियों से भागकर कल्पना-जगत में विचरने लगती है । असफलताओं और कठिनाइयों से हताश होकर हवाई किले बनाने में सुख की प्राप्ति करती है--

"वह सब कुछ पाप था
उत्सुक प्रतीक्षा में पता-ध्वनि को टोहना,
रस भीनो स्थितियों की, बातों की
यादों पर मोहना

- -

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ - 9
2. " , " , " - 8

क्वारी अभिलाषा की अंजलि में फूल भरे
स्वप्निल समर्पणों का
नतमुख किसी की बाट जोहना
सुख रे न वह अभिशाप था ।"[1]

इला कल्पनालोक में विचरण करती हुई अपने अपराध को स्वीकार करती है--

"बोध सूर्य की तालिम किरणों के सामने
        का खुलना
ज्ञान प्यासी प्रज्ञा की परती जमीन में
तर्कना का हल चलना,
चेतना, विहंगी के राग रंगे पंखों पर
जग के रहस्य तुलना
वह सब कुछ पाप था ।
-----भ्रम था, प्रलाप था ।"[2]

इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप इला में हीन भावनाओं का उदय होता है । किसी वस्तु का यथार्थ मूल्य नहीं होता इसके कारण आसपास की वास्तविक दुनिया उसे नीरस लगने लगती है कि वह उसमें सब दिलचस्पी खो बैठती है--

"लेकिन मैं इस स्थिति को कि मैं अभी
वही पुरानी इला हूँ - अपने अमिताभ की
उत्कट अनुरागिनी, प्रेमिका उपासिका -
किसी तरह की वल्ला का कारण नहीं मानती,

- -

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ, पृष्ठ -
2. " , " , " -

पहले की तरह मैं आज भी
तुम्हारी प्रेमिका और प्रशंसिका से भिन्न
अपनी कोई भूमिका नहीं पहचानती ।"[1]

दिवास्वप्न में विचरनेवाली इला का दाम्पत्य जीवन दु:खी होता है क्योंकि दिवास्वप्नों में वह पति की ऊँची कल्पना किये रहती है किंतु अमिताभ उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकता ।

"महास्वप्न का मध्यांतर" में गरीबों का दिवास्वप्न आज की परिस्थितियों को उजागर करता है आज का दिवास्वप्न, गरीब व्यक्ति का उसकी मृत्यु से समाप्त होता है । अप्रत्यक्ष रूप से राजा ही क्यों न बने अंतत: दो गज जमीन-रंग शाला प्राप्त होती है--

"सपना पैदा हुआ
आँखों में गरीब की
जागीर बन गई
नौकर, रईस, रनिवास, रंगशाला
कारिंदे आ गए
रात भर गरीब
नहीं सोया
सूर्योदय होते ही भागा
चला नहीं भागा नगर छोड़कर
दुल्हन बनी
फसल खड़ी थी इंतजार में
फूल, चिड़िया
एक पूरा का पूरा
संसार ।"[2]

---

1. डा. देवराज, इला और अमिताभ, पृष्ठ - 72
2. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर, पृष्ठ - 70

आदमी यह जानता है कि मृत्यु से पहले उसे कुछ बनना है, इन्सान बनता है मानवता सीखनी है किंतु अहं, इदं, परार्ह के संघर्ष से व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात् व्यक्ति स्थिति से हट जाता है--

"राजा ने बनवाया मकबरा
उस पर अभी भी लिखा है--
आदमी न भी भागता
भूख प्यास के पीछे छोड़
आँख मूँदकर
तो भी यही पाता
दो गज जमीन ।"[1]

आज आदमी की मानसिकता इतनी बदल गयी है कि वह आदमी नहीं रह गया है वह चाहता है कि विन्ध्याचल पहाड़ भी झुक जाए । अक्सर आदमी परिस्थितियों से मेल नहीं खाता है । मानसिक रूप से विशिष्ट आदमी पर परिस्थितियाँ जो प्रभाव डाल रही है वही वंशानुक्रम में न आ जाए यह सोचकर आज का आदमी परेशान है । क्या आनेवाली शताब्दी उसे स्वीकारेगी ।

2. एडलर के व्यक्ति मनोविज्ञान के आधार पर :-

प्रत्येक व्यक्ति अन्य से भिन्न है और अपने में किसी न किसी प्रकार की हीनता के लिए है यह हीनता आंगिक भी हो सकती है और मानसिक भी इससे प्रेरित व्यक्ति अपने अंदर आत्म श्रेष्ठता का विकास करने में प्रयत्नशील होता है, अर्थात् वह श्रेष्ठ की भावना अपनाता है । एडलर के अनुसार - "हीनता से ग्रस्त व्यक्ति ही उसे दूर करने के प्रयास में अपने अंदर आत्म श्रेष्ठता को विकसित करता है वह हीनता को छिपाने

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यान्तर - पृष्ठ - 71-72

के लिए श्रेष्ठता का व्यवहार करता है वह अपने को सर्वोपरि रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है ।"[1] इन दोनों के मध्य संघर्ष प्रारंभ होते ही व्यक्ति में अस्थिरता आजाती है यदि वह इनको सुलझाने में असफल सिद्ध हुआ तो समाज से उसका संपर्क टूट जाता है । व्यक्ति जब कभी शक्ति हीनता का अनुभव करते हैं तब वे अपनी श्रेष्ठता की भावना को ऊंचा उठाते हुए सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगते हैं । एडलर का कथन है – "जब व्यक्ति अधिक समय तक श्रेष्ठ भावना को बनाए रखता है तब सामाजिक कार्यों के प्रति उत्साह दिखाता है तब उसकी जीवन शैली उपयोगी सिद्ध होती है ।"[2]

"सूखा सरोवर" में राजकुमारी का कुण्ठा जनित प्रेम अधिक सशक्त होकर मन के अचेतन स्तर का त्याग न कर सबल प्रेम भावना के रूप में उसके अचेतन स्तर पर प्रकट होता है । राजा के समक्ष आक्रोश प्रकट करती हुई वह कहती है—

"इस नगरी की मुट्ठी भर प्रजा
जिसका नायक
एक अनुपम पुरुष था ।
केवल एक पुरुष
जिस निज पौरुष से
प्राणों की बाजी लगाकर
मुक्ति दी थी मुझे
चरणा में उठ गई होती गढ़ी में
यदि वह नायक न होता ।"[3]

1.

2.

3. लक्ष्मीनारायण लाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ – 75–76

प्रेम की असफलता पुन: संघर्ष करने का प्रयत्न करती है । कभी-कभी संयम का पाठ सिखाती है, कभी अपनी ही इंद्रियों की चेतना में पराजय का भ्रम दिखाती है—

"द्वन्द्व है अनेकों
में घिरी हूँ जैसे
अजान बाहुओं में ।"[1]

राजा हीनता ग्रंथि से ग्रस्त है अपने मूल रूप में वह नगरी का शासक है तथा जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि है । वह राजा होते हुए भी स्वयं को प्रजातुल्य समझता है इसीलिए विनम्रतावश सिंहासन पर नहीं बैठता । उसके ऊपरी आत्मश्रेष्ठता के भाव अंतस में प्रजा की तुलना में आत्म हीनता को बराबर बनाए है तभी तो वह कहता है--

"मैं तो कुछ भी नहीं हूँ
सब कुछ प्रजा है
उसने मुझे केवल प्रतिनिधि चुना है,
ले तो प्रजा से
जो व्यथा मन में है रहेगी
कथा क्यों बनाऊँ मैं ।"[2]

उसके अंदर आत्म श्रेष्ठता की अनुभूति जब तीव्र हो जाती है तो वह छोटे राजा से द्वन्द्व युद्ध करता है किंतु दूसरे ही क्षण हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होता हुआ—

"जा मैं ने अभिषिक्त किया तुमको ।"[3]

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल, सुखा सरोवर, पृष्ठ - 77
2. " , " , " - 52
3. " , " , " - 54

कहकर छोटे राजा को सिंहासन सौंप कर सन्यास ग्रहण कर लेता है उसकी त्याग भावना में पलायनवृत्ति स्पष्ट दिखलाई पड़ती है वह सब दायित्वों को "बोझ" समझने लगता है--

"माथे पर अपना बोझ
प्राणों पर सबका बोझ
आंखों पर उनका बोझ
जिन्होंने चुना था मुझे
जिन्होंने बनाया मुझे
जिन्होंने जन्म दिया
जिन्होंने कर्म दिया ।"[1]

जब वृद्ध सन्यासी उसे निर्बल पलायनवादी कहता है तो वह चुपचाप स्वीकार कर लेता है ।

"उर्वशी में अन्तर्द्वन्द्वों के सिद्धांतों में अनेक की अभिव्यक्ति होती है । गंधमादन पर्वत पर जब उर्वशी पुरुरवा से मिलती है तो उसके अंतर में आत्मसंघर्ष छिड़ जाता है । वाक दृष्टि से उसमें आत्म श्रेष्ठता की भावना अधिक प्रबल है कभी वह पुरुरवा को जाग्रत अवस्था में लाने का प्रयत्न करती है तो कभी अपने सौंदर्य के गर्व में भरकर पुरुरवा के हृदय में कोमल अनुभूति जगाना चाहती है । पुरुरवा के द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर कर्तव्य की ओर उन्मुख करती हुई उर्वशी कहती है--

"जिस मधुर भूमिका में जन को दर्शन तरंग पहुंचाती है,
उस दिव्य लोक तक एमें प्रेम की नाव सहज ले जाती है ।"[2]

- -

1. लक्ष्मीनारायण लाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 66
2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 94

एडलर का कथन है कि अंतर में हीनता-भाव से ग्रस्त व्यक्ति बाहर आत्म श्रेष्ठता का प्रदर्शन करता है । पुरूरवा में यह भाव पूर्ण रूप से समाहित है व इस हीनता-श्रेष्ठता के संघर्ष में अंत में उसकी अंतःस्थ हीनता की भावना विजयिनी होती है, जिसके परिणामस्वरूप वह सन्यास ग्रहण कर लेता है ।

"एक कंठ विषपायी" में कंप्लेक्स ग्रस्त चिड़िया से वंचित सुलभ की पीड़ा, शिव द्वारा अपहृत सोन चिरैया (सती) से वंचित दक्ष की मनोव्यथा को व्यंजित करती है । शंकर के प्रति उसमें हीन भावना जागृत होती है, वीरिणी के प्रति वह कहते हैं--

"मैंने नहीं देवि
उसने ही
मुझे विवश करके
अपमानित किया
बनाया अपना शत्रु
मेरी भोली-भाली कन्या को बहकाया ।"[1]

हीन भावनाओं से ग्रस्त दक्ष आत्म श्रेष्ठता प्रदर्शन करने के लिए यज्ञ का आयोजन करता है और शंकर को आमंत्रित न करके उनका अपमान करता है । इस हीनता-श्रेष्ठता के संघर्ष में अंत में उसकी अंतःस्थ हीनता की भावना विजयिनी होती है, जिसके परिणाम स्वरूप सती अपने शरीर का त्याग कर देती है । द्वारपाल वीरिणी को सूचना देता हुआ कहता है--

"वैसे ही महाराज
क्रोधातुर

- -

1. दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृष्ठ -18

महादेव शंकर पर रोष करते
यज्ञ मंडप में घुसे
वैसे ही अनायास
भगवती सती के पास
विद्युत सी कौंध गई
भस्म हो गया उसमें
सुंदर सर्वांग, अंग गौर वर्ण
और दूसरे ही पल
भगवती सती का अधजुलासा शव
सामने पड़ा था ।"[1]

शंकर भी अपने अंतर में हीनता ग्रंथी से ग्रस्त है । इस प्रकार शंकर के संपूर्ण आचरण में हीनता-श्रेष्ठता की भावनाएं उपलब्ध होती है । वरुण को संबोधित करते हुए शंकर कहते हैं--

"ठहरो
हाँ, कह देना विष्णु और ब्रह्मा से,
सन्ध्या तक
सती में न आई यदि चेतनता
तो मेरा क्रोध देव भोगेंगे ।
कह देना-
होगा दिग्दाह रुधिर वर्षा के साथ-साथ
पूरा ब्रह्माण्ड भस्म कर दूंगा ।"[2]

"आत्मजयी- में नचिकेता हीनता क से ग्रस्त है हीनता की भावना अंत में विजयिनी होती है । नचिकेता अपने को आत्महत्या

- -

1. दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृष्ठ - 39
2. " , " , " - 98

के लिए पानी में डुबा देता है । वह वास्तव में मरने से पहले ही पानी से बाहर निकाल लिया जाता है, लेकिन अचेतावस्था में । इसके पश्चात वह स्वयं को यम को समर्पित करता है और तीन वर प्राप्त करता है । क्रोध शमन, प्रसन्नता और मृत्यु रहस्योद्घाटना एडलर की मान्यता है कि व्यक्ति अपने को सर्वोच्च सर्वशक्तिमान रूप में अन्य पर स्थापित करने में श्रेष्ठता की भावना से प्रेरित निष्कपण आचरण करने लगता है और इस पर वह अपने को सर्वोपरि रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करता है । नचिकेता जब अपने पिता वाजश्रवा को जीर्ण गायें दान में देता हुआ देखता है तो हीनता ग्रंथी से प्रेरित होकर अपने आपको सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान रूप में स्थापित करता हुआ पिता को अमर्यादित शब्द कहने लगता है ।

नचिकेता दैनिक आवश्यकताओं के साथ-साथ बहुत कुछ सोचता है । सही अर्थों में वह सुखी जीवन जीने की अपेक्षा सार्थक जीवन जीने का अभिलाषी है । एक दृढ़ जिज्ञासा जो मुख्य रूप से नचिकेता में उपलब्ध है, सार्थ जीवन को प्रेरित करती है । नचिकेता चरम सुख को पाने, भौतिक सुखों को नकारने वाला व्यक्ति है । वह अमर जीवन का इच्छुक है । अमर जीवन से तात्पर्य उन मूल्यों से जो व्यक्ति का अतिक्रमण सार्वकालिक हो जाते हैं । निराशा के चरम क्षण का अनुभव करके भी वह जीवन लालसा से पूर्ण है और अपने अस्तित्व को कायम रखता है ।

आत्मश्रेष्ठता की से युक्त होकर नचिकेता निष्क्रिय जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता वह सूर्य के समान गतिमय रहना चाहता है । उसके प्रश्न पिता की मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं तथा वह जीवन बोध का उल्लंघन करता है तथा नयी दृष्टि और नये जीवन बोध का पक्षधर बनने के कारण तर्क से काम लेता है—

- -

"मेरे पिता
तुम और तुम्हारी दुनिया
एक दूसरे की थकी हुई प्रति क्रियाओं में युगों से
बासी सी लगती है सीमित कुछ लोगों तक
बरसा किसी लगती जीवन की अतुल राशि
कार्यक्रम, आय-व्यय, रीति-नीति
पेचिदे व्यवहारों की दुनिया
सिद्ध नहीं विकृत स्वभावों से निष्कासित
जीने से पहले ही बीती सी लगती ।"[1]

नचिकेता रूढ़ीवादी समस्याओं और प्रश्नों की गांठ खोलना चाहता है। गुप्त मंत्रणाओं, रहस्यमय काना-फूसियों, पेचिदा मंत्र जाप और पाखण्ड से गन्धित स्मृतियों के प्रति ठोस प्रश्न उसके मन में उठते हैं।

नचिकेता अनुभव करता है उसे किसी अज्ञानी पिता ने सागर में फेंक दिया था, किंतु डूबते उतराते उसे आशा की किरण मिलती है वह उसीका सहारा लेकर बढ़ता हुआ किसी टूटे-फूटे मंदिर के समीप पहुंचता है किंतु वह भी डूबने लगती है और उसका देवताओं के प्रति भी विश्वास खण्डित हो जाता है ऐसी परिस्थिति में व्याकुल होकर बुध्दिविहीन होकर मूर्ति के सहारे वह खड़ा हो जाता है। यही उसका विद्रोही मस्तिष्क है और यही व्यक्ति मात्र की जागरूकता है। नचिकेता के सामने अस्तित्व की सार्थकता का प्रश्न स्पष्टत: उपस्थित है--

"अस्तित्व एक घातक तर्क भी हो सकता है
एक पाशविक भावना भी इस तरह
कि युद्ध और कलह जरूरी लगे

---

1. कुंवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ - 47

स्वार्थ और छल से जीना मजबूरी लगे
यदि यथार्थ है मृत्यु भी
इस तरह कि वह जीवन पर छा जाये
और हम उसे रोम के व्यवहार में बोले ।"[1]

आत्मश्रेष्ठता का यह जितना दंभ कुछ समय के लिए अपने अंतर में विकसित होता है और अपने अंत में नचिकेता आत्महीनता की ग्रंथि से पराजित हो जाता है उसे प्रतीत होता है कि आज के जीवन में नैराश्य ही नैराश्य है । व्यथित निराशा का पुंज है अतीत उसकी रक्षा में असमर्थ है और भविष्य एक प्रवाह है । निराशा का ग्रास बनेगा फिर कौन ? ऐसी स्थिति में वर्तमान की यथार्थता वरेण्य है न कहीं मुक्ति है न कहीं अन्य मार्ग ही । नचिकेता निराशा से ऊपर उठकर भी उसी में उलझता प्रतीत होता है । स्थिति विकट हो जाती है वह जिधर भागता है उधर पहले से एक अनिश्चित उरावनी छाया दिखाई देने लगती है । आज की दुनिया में सर्वत्र छीना-झपटी अत्याचार पाशोषण अनाचार का दौर नचिकेता इन सबसे तंग हो चुका है--

"मुझको इस छीना झपटी में विश्वास नहीं
मुझको इस दुनियादारी में विश्वास नहीं
हर चरण प्रगति का घातक पड़ता है
हम जीते आपा-धापी और दबावों में
हम चाहे जितना पायें कम ही लगता ।"[2]

"संशय की एक रात" में राम अपने अंतर में हीनता की ग्रंथियों से ग्रस्त है । इस प्रकार एक क्षण के लिए उनके हृदय में साहस वेग उमड़ पड़ता है

---

1. कुंवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ - 49
2. " , " , " -

किंतु दूसरे क्षण फिर हल्केपन में तृण तुल्य तैरने लगते हैं यहाँ सूक्ष्म रूप में यह व्यंजित होता है कि राम के ऊपरी आत्मश्रेष्ठता के भाव अंतस में जनता की तुलना में आत्म हीनता की अनुभूति बराबर बसाए हैं तभी तो कई बार उनका शौर्य दुर्बल पड़ जाता है--

"क्या सोंचते जनक जी ?
बंधु बांधव और
पुरवासी सभी क्या कह रहे होंगे ?
स्वयं सीता
सोंचती होगी
क्या ? ?"[1]

राम का अंतर्द्वन्द्व यहीं समाप्त नहीं होता । आत्मश्रेष्ठता की भावना से ग्रस्त होते हुए सीता को प्राप्त कर निष्क्रिय जीवन व्यतीत करना नहीं चाहते बल्कि गतिशील रहना चाहते हैं और समाज द्वारा प्रशंसा प्राप्त करना चाहते हैं--

"आज तक मैं निमित्त ही रहा
कुल के विनाश का
लेकिन
अब नहीं बनूंगा कारण
जन के विनाश का ।"[2]

इसी प्रकार राम के इस संपूर्ण आचरण में चलनेवाली हीनता ग्रंथियों की छाया प्राप्त होती है तथा सीता का परित्याग करके जन विनाश का कारण न बनकर अपने आपको धन्य मानने में संघर्ष स्पष्ट है । इस संघर्ष के परिणामस्वरूप राम अपने जीवन के प्रेम का तिरस्कार करके

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 7
2. " , " , " - 32

अभाव व पीड़ा के काँटों को छिपने को तत्पर हो जाते हैं--

"सत्य की मिथ्या पताकाएं लिये
अपने स्वार्थ के ये खड्ग
जन के हाथ में
जो भी लड़ेगा युद्ध
होगी आस्था की वंचना ही
ऐसा युद्ध ऐसी विजय
ऐसी प्राप्ति
सब मिथ्यात्व है
नर संहार के व्यामोह के प्रति
वितृष्णा से भर उठा हूँ।"[1]

राम की आत्म श्रेष्ठता का यह द्वन्द्व अपने अंतिम रूप में पुनः आत्म हीनता की ग्रंथि से पराजित हो जाता है उन्हें ज्ञात होता है सीता के परित्याग से मरूस्थल की खोज में भटक रहे हैं--

"कितनी बार कुपथा
बालुओं को
स्वयं के पद चिन्हों व्यूहों से
घिरे बैठे रहे
दुर्ग भिमाते रहे
प्रति सांझ
सीता मुख बनाते
प्रति सांझ
किंतु प्रति बार

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 24

संशय
निश्चय ही भटकाता रहा ।"[1]

राम सोचते है कि मैं किसी के प्रति दयवान नहीं रह सका प्रत्येक से ममता तोड़कर मैं अपने स्वार्थ के वशीभूत हो रहा । सीता के सुख दुःख का भी मैं ही कारण बना हूँ—

"ओ अशोकों को छाँहवाली
जानकी ।
जानते भी क्यों गये हम
स्वर्ण मृग हित ?
क्यों गए पथ भूल ?
उस वंचक पदों में
सर्प बनकर सौमित्र रेखा
क्यों नहीं लिपटी ।"[2]

काल्पनिक सुख की तृष्णा में भटकते हुए राम की हीनता ग्रंथि अत्यंत सजग हो उठी है उन्हें लगता है कि वह प्रकृति के उन्मुक्त शिखर भी आज उनका उपहास कर रहे हैं। नियति नटी उनके जीवन में भयानक भयंकर अट्टाहास करती प्रतीत होती है—

"हम अपनी समस्याएं लिये
भटके सार्थ के
टूटे हुए संदर्भ है ।
मरुथलों की गरम जलती हवाओं की भांति
असत्कारित

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 4
2. " , " , " - 6

अवांछित
हर गाछ से ।"[1]

राम का आत्म हीनता से पीड़ित श्रेष्ठता का अहं अपनी चरम सीमा पर पहुंचता है तो वे परिषद के निर्णय को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाते हैं । "जानकी जीवन" में कैकेयी में हीन भावनाओं के कारण क्षोभ की उत्पत्ति होती है । चौदह वर्ष के पश्चात राम पुन: आगमन पर दु:खी होती हुई कैकेयी पश्चात्ताप के आंसु बहाती हुई कहती है—

"हैनि मेरा गहन वन में राम-सा लाल प्यारा
सीता जैसी सरल हृदया स्नेहशीला वधु भी ।"[2]

पुत्र वधु सीता को समक्ष पाकर उसके अंतर में द्वन्द्व उत्पन्न होता है । कैकेयी सोचती है उसने स्वार्थ के वशीभूत होकर राम को बनवास दिया जिसके परिणामस्वरूप पति की मृत्यु हुई और उन्हें एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ा ।

"मेरी प्यारी भगिनि ! तुम्हा स्नेहशील सखियों ।
पाती ऐसे विषम दुख क्यों हाय वैधव्य द्वारा ?
मेरे प्यारे परम धन वे शौर्य के ताज मेरे
रोते-धोते विकल वधुहा ! क्यों हमें छोड़ जाते ।"[3]

भरत कर्तव्य में लीन होकर, अनुज के वियोग में इस तरह वैराग्य धारण न करते । लक्ष्मण दैत्यों से युद्ध करते वन में न भटकते होते । हनुमान जी संजीवनी लाकर लक्ष्मण जी की रक्षा की वरन उसे पुत्र वियोग भी झेलना पड़ता होता ।

---

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 8
2. राजा राम शुक्ल, राष्ट्रीय आत्मा, जानकी जीवन, पृष्ठ - 74
3. " , " , " , " - 75

कैकेयी राम के वनवास की घटना का स्मरण करती हुई हीन भावनाओं से ग्रस्त होकर पुनः बंधुओं को संबोधित करती हुई कहती है--

"मैसी होती मुदित द्युति क्यों कीर्ति क्यों कीर्ति मेरी,
मिट्टी में यो तरल तनुहा । उर्मिला क्यों मिलाती,
बाटी होती विकट अटवी मांडवी के लिए क्यों ?
जाती तू क्यों असुर पुर में पुत्रि सीते । सभीते ।"[1]

सीता भी अपने अंतर में हो हीनता ग्रंथी से ग्रस्त है । कैकेयी की दयनीय स्थिति उसकी हीनता ग्रंथी को और बढ़ावा देती है--

"सीता बोली निरख उनको शोक से दग्ध होती
आँसू भीगे सुविधु मुख से धैर्य देती हुई यों--

"अच्छा होता रजनिचर जो मार डाले मुझे तो,
माता ऐसी विकल तुमको देखते क्यों फिरो मैं ।"[2]

उर्मिला को त्यागपूर्ण जीवन का स्मरण करके निःश्वास लेती हुई सीता कहती है--

"मैंने असुरपुर में ऊर्मिला को व्यथा को ?
सौदा प्यारी चरण-रज है, आर्य की इंगिता हो
होने पायी जब व पद की वंदना वंदिनी से ।"[3]

"इला और अमिताभ" में अमिताभ हीनता ग्रंथि से युक्त है । आत्म श्रेष्ठता की भावना से ग्रस्त होकर वह इला का परित्याग करता है ।

- -

1. रामाराम शुक्ल, राष्ट्रीय आत्मा, जानकी जीवन, पृष्ठ - 76
2. " , " , " , " - 78
3. " , " , " , " - 80

आत्मश्रेष्ठता का यह अहंकार कुछ समय तक रहता है इसके पश्चात उसका संघर्षशील अंतर हीनता की ग्रंथि से पराजित हो जाता है ।

"उत्तर प्रियदर्शी" में अशोक के मन में आत्महीनता ग्रंथि उस समय उठती है जब वह आतंकवादी आक्रांता के रूप में कलिंग लक्ष्मी का निर्ममता से धर्षण कर चुकने के बाद अपने जन-जन के अनातंकित उदार सोल्लास वात्सल्य द्वारा मन के कल्मष के परिष्कार की कामना करता है—

"पर सन्ध्या की धीरे-धीरे गहराती अरुणावली
अनुराग-रंगी कब होगी ?
कब घर घर की धूम शिखाओं का सोंधापन
वे आँखें आँजेगा ?
कब मांजेगा मेरे मन का कल्मष
मेरे जन-जन का वात्सल्य
अनातंकित, उदार, सोल्लास ?
मुग्ध नील नलिनी से अपने
नयनों से
ओ रात
नक्षत्र-नीहार ।"[1]

अशोक की क्षीण मन:स्थिति पुन: दर्पस्फीत आत्मश्रेष्ठता का रूप धारण कर लेती है । किसी स्थिति को भोगकर ही मानव उससे उभर सकता है । यदि मनुष्य निजी अनुभूति के स्तर पर किसी भोगी हुई स्थिति से उद्धार नहीं पा सकता तो किसी बाहरी आदेश, उपदेश के द्वारा तो यह और भी असंभव है तो भी उसे पीड़ा और प्रायश्चित से

---

1. अज्ञेय, उत्तर प्रियदर्शी, पृष्ठ - 16

गुजरना पड़ता है दोनों स्थितियों में अंतर्मन की पूरी प्रक्रिया अशोक पर छायी रहती है ।

"एक पुरुष और" में विश्वामित्र के संपूर्ण आचरण में हीनता की ग्रंथि उपलब्ध होती है । वशिष्ट की तपस्या विश्वामित्र के लिए ईर्ष्या का कारण बनती है । वशिष्ट के पास गाय है, विश्वामित्र उसे हर कीमत पर प्राप्त करना चाहते हैं चाहे शस्त्र, शास्त्र से या अन्य किसी विधि से । इसी प्रक्रिया में ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने की इच्छा भी उनके मन में जागृत होती है और एक अन्तर्द्वन्द्व पहले ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त करने के लिए तपस्या में लीन होने पर वशिष्ट से संघर्ष मोल लेने में होता है । मेनका के रूप सौंदर्य के वशीभूत होकर उनमें आत्मश्रेष्ठता की भावना विकसित होती है ।

विश्वामित्र अपनी आत्मश्रेष्ठता की भावना से ग्रस्त होते हुए मेनका से कहते हैं कि स्वर्ग के अधिकारी सोचते होंगे कि तुम्हें भोगने से मेरा तप भंग हो जाएगा और मैं अपने ही पद से पदच्युत हो जाऊंगा लेकिन अब मैं व्यवस्था के द्वारा अपना अधिक शोषण नहीं होने दूंगा और अपने तप के संपूर्ण समय को तुम्हारी आत्मा में उतारकर जो कुछ आज तक अपने लिए था, पूरे समाज के लिए हो जाऊंगा--

"तुम्हारी आत्मा में आने से मेरी साधना की एकांतता
केवल अपने लिए न होकर
एक पूरे युग को समर्पित होगी ।"[1]

विश्वामित्र में आत्महीनता की अनुभूति बराबर बनी हुई है तभी तो उनका साहस क्षीण पड़ जाता है । मूल समस्या उच्च पद प्राप्त करना

- -

1. डा. विनय, एक पुरुष और, पृष्ठ - 119

है । ब्रह्मर्षि के पद की प्राप्ति इसी प्रक्रिया का चरम परिणाम है । विश्वामित्र ने जब सुना कि वह उच्च पद प्राप्त नहीं करते तो उनमें उसकी प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी । वाल्मीकि में तपस्या के बाद भी उच्च पद प्राप्त न होने तथा मेनका को पाकर उसके रूप सौंदर्य पर विमुग्ध होने तक की मनः स्थिति कुंठा के सिद्धांतों से मेल खाती है युंग ने कहा है कि ऐंद्रिक आकांक्षाओं तथा आध्यात्मिक के मध्य जो संघर्ष होता है दूसरे शब्दों में व्यक्ति के परसोना एवं उसकी छाया के मध्य होनेवाले संघर्ष कह सकते हैं । वाल्मीकि कभी तो मेनका के प्रति आकर्षण का अनुभव करते हैं, तो कभी ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त कर विश्वामित्र पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं ।

"एक पुरुष और" में मेनका आत्मश्रेष्ठता की भावना प्रकट होते ही सृजन प्रक्रिया को अवंना का विषय कहती है सृजन की प्रक्रिया को वैध घोषित करती हुई कहती है--

"यह सोचना गलत है कि
जीवन में कुछ अवैध होता है
अवैध होता है मात्र कोई अस्वीकृत
या कोई आत्म हंता क्षण
सृजन की कोई भी प्रक्रिया
अवैध नहीं होती-----।"[1]

"सूर्य पुत्र" में कर्ण जब अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध के लिए तत्पर होता है उसी समय कर्ण के पौरुष को देखकर उसमें हीन भावनाओं का उदय होता है । उसका साहस बल रहित होता है किंतु प्रत्यक्ष रूप में कर्ण को ललकारते हुए अर्जुन कहता है--

---

1. डा. विनय, एक पुरुष और, पृष्ठ - 122

"तो आओ परीक्षा दो शौर्य की
पर पहले परिचय दो स्वयं का, कुल का
कहीं ऐसा न हो बाद में, मुझे हो कष्ट
किसी अनाम की
किसी अयोग्य की हत्या का भागी बनूं मैं ।"[1]

"महाप्रस्थान" नाट्य-काव्य में महाभारत के उपरांत, नर संहार और परिजन - विछोह से संतप्त पांडव दल हिमालय के ऊपर चढ़ने के लिए जाता है । समग्र रचना एक तनावपूर्ण स्थिति में है । युधिष्ठिर समूह या सामाजिक कल्याण के लिए व्यक्ति की महत्ता और स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहते हैं क्योंकि सामूहिक, सामाजिक हित के नाम पर राज अ त शक्ति संपन्न हो जाता है । उसके भयंकर परिणाम होते हैं--

"जिस दिन राज-व्यवस्था ही
संपूर्ण समाज
और मानवता का
प्रतिनिधित्व करने लगेगी
विश्वास करो
यह पृथ्वी
एक विशाल कारागार में परिणत हो जाएगी ।"[2]

युधिष्ठिर विरक्त है जब कभी शासन व्यवस्था के बारे में सोचते हैं उन्हें अनुभव होता है कि धर्म का उदय, राज्य में नहीं व्यक्ति की प्रज्ञा में होता है । ऐसे व्यक्तित्व को राज्य से अधिक महत्व देना चाहिए अन्यथा

- -

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ - 48
2. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 104

"राज्य के
अ त शक्ति सम्पन्न होने का अर्थ ही है
व्यक्ति का स्वत्वहीन होना
राज्य की गरिमा को
व्यक्ति की गरिमा का पर्याय होने दो ।
किसी भी व्यवस्था का
व्यक्ति से बड़ा हो जाने का अर्थ होगा
अमानवीय तंत्र ।"[1]

"अग्निलोक" में सीता जब सुनती है राम दिग्विजय यात्रा पर निकले हैं तब उनमें आत्मश्रेष्ठता की ग्रंथि जागृत होती है एवं वाल्मीकि के समक्ष वे कहती है--

"पर गुरुदेव, सच्चाई कुछ और है
मैं पत्नी नहीं, प्रेयसी हूँ
नहीं प्रेयसी नहीं, प्रेमिका--
शुभ की प्रेमिका ।
मैंने राम से विवाह ही नहीं किया,
मैंने राम से प्यार किया है ।
इनके हाथों में मेरा हाथ नहीं सौंपा गया
मैंने स्वयंवर रचाया
जिसमें सारी भरत-भूमि के युवराज आये थे,
मैं ने अपने हाथों से,
इनके माथे में वरमाला डाली थी
मैंने इनके ऊपर तन-मन न्योछावर किया था ।
पर ये--

- -

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ -

ये न जाने किस मिट्टी के बने हैं
इन्होंने देखकर भी नहीं देखा
सुनकर भी नहीं समझा ।"[1]

राम के द्वारा परित्यक्त सीता में निरंतर संघर्ष चलता रहता है । आत्महीनता की भावना उसमें तीव्र रूप धारण करती है जबकि उसे ज्ञात होता है कि अश्वमेध यज्ञ में उसके स्थान पर स्वर्ण प्रतिमा रखी जाने वाली है--

"गुरुदेव
अब मुझे अस्तित्व का एक-एक पल नरक भोग लगता है ।"[2]

राम के संपूर्ण व्यक्तित्व में आत्महीनता की एवं श्रेष्ठता की भावना का संघर्ष चलता है सीता को खोकर राम एक बार फिर पलायनवादी बन जाते हैं--

"जब देवी थीं और मेरा स्वर्ग मेरे सामने था
और क्या इस परिताप की भावना से हटकर
मैं अपने हाथों से अपना गला घोटूं ।"[3]

राम का अंतर्द्वन्द्व यहीं समाप्त नहीं होता आत्मश्रेष्ठता की भावना से ग्रस्त होते ही उनके जीवन में गतिशीलता आती है सीता के भू प्रवेश के बाद राम में नया बोध प्रस्फुटित होता है दु:खी राम प्रतिज्ञा करते हैं कि नये सिरे से राम राज्य की स्थापना करके उससे सीता की प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे--

"अच्छा तो यह है

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 44
2. " , " , " - 64
3. " , " , " - 64

कि मैं इन आँसुओं को अपने शेष जीवन में सींच दूँ
और जो राम-राज्य
अभी केवल देवी की यंत्रणा का ही इतिहास है
उसे देवी के गौरव का स्मारक बना दूँ ।"[1]

राम की ईमानदारी को यहाँ चिंतन, वचन और कर्म की एकरूपता के रूप में लिया जाता है क्योंकि नयेपन का बोध उनमें सौहार्द, विश्वास व सह अस्तित्व की भावना जागृत करता है ।

"शम्बूक" में साहसी, पराक्रमी शम्बूक राम के द्वारा बंदी बनाए जाने पर उनके सम्मुख आत्मसाक्षात्कार के लिए तत्पर होता है तब उसके अंतर में संघर्ष प्रारंभ होता है वह सोचता है कि प्रकृति के नियम तपस्वी को युद्ध करने की अनुमति नहीं देते नहीं तो मैं राम से युद्ध करता । राम के द्वारा उसकी आत्मश्रेष्ठता की भावना को ठेस पहुँचाई जाती है---

"तप नहीं है शूद्र का कर्तव्य
फिर से सोच लो शम्बूक
उसे सेवा करना ही है भक्ष्य
क्योंकि उसमें कर रहे हो चूक ।"[2]

इस पर शम्बूक उत्तर देता है - हे राम ! तप तो सृष्टि का आधार है । तप से ही संसार चलता है । तप ही त्रिदेवों की शक्ति है, तप से ही मनुष्यों को सबल प्राप्त होता है और फिर राम से पूछता है कि---

"मैं तुम्हीं से पूछता हूँ राम

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलीक, पृष्ठ - 64
2. जगदीश गुप्त - शम्बूक, पृष्ठ -

वही तप दुष्कर्म कैसे हो गया
वही कृत्य अधर्म कैसे हो गया ?
वही तप अपराध कैसे हो गया ?
राज्यदण्ड अबाध कैसे हो गया ?"[1]

इस प्रकार शम्बूक में राम की तुलना में आत्मश्रेष्ठता की अनुभूति बराबर बनी हुई है। कभी तो सात्स वेग से उमड़ पड़ता है। राम के द्वारा अपना वध किये जाने पर शत्रुता एवं अवहेलना से वह क्षुब्ध हो उठता है--

"जो तुम्हारे पक्ष हो
कुछ और अन्याय
तुम रहोगे मौन
भूलोगे समस्त उपाय
शासकों को
सदा यह दुविधा रही है राम
प्रजा को इससे द्विविधा रही है राम
मारते हो और कहते हो उद्धार।"[2]

शम्बूक राम पर अनेक प्रकार के आरोप लगा कर अपने भीतर की आत्म-श्रेष्ठता की भावना को बनाए रखता है वह राम पर आरोप लगाकर कहता है - जब दशरथ ने केवल राम को वनवास दिया था तो वे अपने साथ सौमित्र और सीता को क्यों लाए ? सीता का अपहरण राम का व्यक्तिगत कष्ट था फिर उस कष्ट से मुक्ति पाने के लिए राम-रावण के बीच भयंकर संग्राम समाज पर क्यों लादा गया।

- -

1. जगदीशगुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 50
2. " , " , " - 53

"सीता समाधि" में राम आत्मश्रेष्ठता और हीनता ग्रंथियों से ग्रस्त है। राम से उनका गुप्तचर यह समाचार सुनाता है कि कोई धाबी सीता का अपमान कर रहा था तथा कह रहा था--

"बिगड़ चली है स्त्रियाँ अवध की, उदाहरण बन रही जानकी
रात-रात पर धरती है, गई लाज सब आन मान की
बिना वस्त्र को परके पोटे, क्या घूरते हैं काले छींटे।"[1]

गुप्तचर के मुख से सीता के कलंक को सुनते हैं तो उनका अधिकार प्रवण हृदय विद्रोह कर उठता है। हीनता ग्रंथि से ग्रस्त राम अपने को सर्वोच्च शक्तिमान रूप में अन्यों पर स्थापित करने के प्रयत्न में श्रेष्ठता ग्रंथि से प्रेरित होकर कहते हैं--

"पाकर साखी प्रभु से सबकी, लाया पावन प्रिया संग तन
दोष रहित भोली पत्नी के, प्राण तंतु को कहँ छीन अब
डर कर जग से त्यागूँ नारी, तन मन से जो रामदुलारी।"[2]

राम जब पतिव्रता सीता का स्मरण करते हैं तो उनका अधिकार प्रवण हृदय विद्रोह कर उठता है उन्हें जनता पत्नी दोनों प्रिय है अत: उनके मन में आत्महीनता एवं आत्मश्रेष्ठता की भावनाएं समान रूप में उदित होती हैं--

"धर्म नहीं क्या राजा पति का, रक्षा स्त्री की सब विधि करना
दबी हुई है जो कीचड़ में, उसे उठाकर ऊपर धरना
दोनों ही हैं रथ के पहिए, साथ-साथ चलने चाहिए
जनता पत्नी दोनों प्रिय हैं, असमंजस कटु आन पड़ा है।

---

1. राजेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 217
2. " , " , " - 219

चरम कठिन है निर्णय करना, इन दोनों में कौन बड़ा है ।"[1]

आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रस्त राम अत्यधिक अनियंत्रित हो जाते हैं--

"त्यागी जाकर आह सुकोमल, क्या वह जीवित रह पायेगी
भानुवंश के अंश श्रेष्ठ का, भार सुखद क्या सह पायेगी
कौन क्रूर जो तजता अपनी, ऐसी बेबस पावन पत्नी ।"[2]

राम के अंतर मन में घोर संघर्ष है जिसके परिणामस्वरूप राम के अंतर में घोर संघर्ष है जिसके परिणामस्वरूप सीता को त्यागने को उद्यत होते हैं--

"मिलन न होगा इस जीवन में, मधुर सुखों का सुखद बदन से ।
त्याग अहम को वरण धर्म शुभ, जनता का नृपकरे लगन से ।
त्याग मोह ममता के साए, सत्य धर्म को हर अपनाए ।"[3]

निराशा से पीड़ित राम माता, पिता, बंधु और पत्नी और जग के नाते रिश्तों को झूठ मानते हैं वह तो सिर्फ असफलता की गाथा भर है आत्म श्रेष्ठता की भावना जागृत होते ही राम के हृदय में पुनः प्रजा के प्रति समर्पित होते हैं--

"जन सेवा का शुभ व्रत लेकर, भूप प्रजा का होता चाकर
त्याग व्यक्ति को हित समष्टि के, राम नृपति तू सर्वशक्ति धर
जन हित में बलिदान मर्मकर, भोंं भूप यह सत्य धर्म पर ।"[4]

सीता के भू प्रवेश के बाद राम पुवारा आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रस्त होते हैं--

- -

1. राजेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 220
2. " , " , " - 221
3. " , " , " - 221
4. " , " , " - 222

"दुख ही दुख देवी को देने, लिया जन्म क्या मैं ने निष्ठुर ।
समा नहीं क्यों जाता भू में, विडम्बना निज न्याय देखकर
छीनी पुत्रों से मातावर, कैसा यह उपहार मनोहर ।"[1]

आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रस्त होकर सीता राम का तिरस्कार करती है । सीता यह सोचती है कि स्वर्ण मृग के लालच में आकर उसने स्वयं अपने जीवन को नष्ट किया और आज विवेकहीन जन उसे हसने चले हैं---

"कैसे कठोर गर्जन करते, बढ़ते आते हैं असभ्य जन
मुझे निगल जाने को कैसे आते भोग फाड़ मुख अनगिनत
वीर भूमि की मैं हूँ नारी, जो न काल से जाए हारी ।"[2]

आत्मश्रेष्ठता की ग्रंथि से ग्रस्त होते ही उसका अहं जागृत होता है । सीता गुरुदेव से कहती है---

"रघुकुल के सच्चे बच्चे को, लेकर गुरुवर आप जाइए ।
लिया भिखार टोकरे में निज, सत्य लोक में इन्हें सजाइए ।
जाओ देव कमण्डल तज कर, बन प्रोफेसर ऐनक सजकर ।"[3]

सीता के हृदय में वात्सल्य उमड़ पड़ता है---

"बीत गए युग अब तक कितने, बोल सकी न हि अपनी वाणी ।
अपमानित हूँ स्वतंत्र होकर, सद्म न मुझे मान की हानी
शासन के न हि योग्य अनाड़ी, तिरस्कार से गई निकाली ।"[4]

- -

1. राधेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 281
2. " , " , " - 276
3. " , " , " - 276
4. " , " , " - 275

राम भी यह सोचते हैं कि मैं काल्पनिक सुखों की तृषा में भटकता रहा उन्हें लगता है सुख और स्वार्थ की झोंक में उन्होंने सीता का परित्याग किया--

"मन ही मन का सदैव सोचा, न हि अपनों का ध्यान किया कुछ
दुख इतना देकर भी उनको, देखा प्रेमी नहीं दिया कुछ
प्राण प्रेम पर कर न्योछावर, न्याय अंध दृग खोले निष्ठुर ।"[1]

उनकी हीनता ग्रंथि अत्यंत सबल हो उठती है उन्हें लगता है कि उनके बच्चे स्वयं उनका उपहास उड़ा रहे हैं--

"पूछ रहे थे बच्चे कातर, क्या माँ ने अपराध किया था ।
इतनी अच्छी प्यारी माँ को, तुमने जो दुत्कार दिया था ।
रह घन तम में बन में छिपकर, देती थी वरदान अमित वर ।"[2]

राम को अपने चारों ओर निराशा का भयानक अन्धकार व्याप्त होता हुआ दिखाई पड़ता है वे सोचते हैं कि मैं कभी भी नियम परतंत्र नहीं बना और इसी कारण मैं सीता को उसका अधिकार नहीं दे पाया--

"तव इच्छा से अपनी तुमको, छाई गई नहीं वह वन में ऐसे ।
अपनी करनी का तुमने प्रभु, उत्तर उनसे माँगा कैसे
प्रेम परीक्षा राम तुम्हारी, थी लेने की उसकी बारी ।"[3]

एल्फ्रेड एडलर का कथन है कि प्रत्येक श्रेष्ठता के प्रदर्शन में हीनता की कमी रहती है । राम के आत्मश्रेष्ठता की भावना निश्चय ही अपने अंतर में आत्महीनता से पीड़ित है--

- -

1. राजेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 282
2. " , " , " - 283
3. " , " , " - 285

"रखो राम परितोष जनों का, धर्म और मैं कायरता का ।
करो राज निष्कंटक जग में, मति से अब निष्ठुरता का ।
युग युग तक यह कथा तुम्हारी, सोखन सकती दृग का वारी ।"[1]

"आत्मदान" में अहल्या में आत्महीनता की ग्रंथि मिलती है । इंद्र से मिलनोपरांत उसके अंतर में भावनाओं का संघर्ष चलता है । आत्म-हीनता से ग्रस्त होती हुई वह सोचती है वह शाप ग्रस्त जन से विलग जीवन जीने के लिए विवश है किंतु इंद्र "सहस्त्राक्ष" होते हुए भी गतिमान हैं जो अपने प्रत्येक पग में गति रखते हुए सृष्टि के किसी भी पदार्थ के बंधन में बंध कर नहीं रुकते--

"कोषहीन" तुम शापित
फिर पूज्य रहे
मैं अयशापिनी
शिला हुई परित्यक्ता
तुम व्याप्त विश्व में विचरण रत
मैं भूतों से दूर अस्पृश्या
तुम समर्थ घूमते दिशा-दिशा मायावी
मैं इस मरघट में
निर्वासित एकाकी ।"[2]

अहल्या आत्मलघुता का अनुभव करती है उसे ज्ञात होता है कि वास्तव में वह विवेकहीन एवं निर्दयी है । अपने हृदय की वासना से संचालित होकर अपने प्रारंभिक जीवन के सुखद निवास का परित्याग करती है अहल्या का जीवन आकर्षण और विषाद का द्वन्द्वस्थल बन जाता है--

- -

1. राजेश्वरी अग्रवाल, सीता समाधि, पृष्ठ - 285
2. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 17-18

"सभी ओर से अब मेरी
अंतर्वाणी घिरराई है
गहरेपानी में स्थित
तड़पती मछली जैसी प्यास
यह मेरी ही टीस
दिशाओं में फैली है ।"[1]

पति और प्रेमी इन दोनों के मध्य संघर्ष की स्थिति में अहल्या जड़ता को प्राप्त होती है । इंद्र से मिलनोपरांत उसके अंतस में संघर्ष उत्पन्न होता है । अहल्या सोचती कि सुख स्वार्थ की झोंक में उसने आत्म विश्वासी, अमृत धाम (गौतम) का परित्याग किया । काम की शापमयी प्रतिध्वनि के माध्यम से जैसे वह स्वयं को अभिशाप देने लगती है इस प्रकार अहल्या के समस्त आचरण में "कवि" ने आत्महीनता की ग्रंथि के भीषण अन्तर्द्वन्द्व में डूबे हुए मन का अत्यंत स्वाभाविक एवं सशक्त चित्रण किया है । अहल्या का जीवन में हाहाकार चल जाता है---

"वह मेरे सुख का प्रश्न का स्खलन
बने बनाये मार्गों बंधनों को तोड़
आत्म-साहस स्वीकार किया
नहीं था कल्मष कार्य
यह इंद्र मिलन
एक एक व्यक्ति का
इतिहास-बोध निरपेक्ष स्वार्थी कृत्य
व्यक्ति निष्ठा ।"[2]

---

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 15-16
2. " , " , " - 45

अहल्या में आत्म हीनता की ग्रंथि अत्यंत प्रबल हो उठती है उसे अनुभव होता है कि प्रकृति भी आज उसका उपहास उड़ा रही है--

"आँधी हवा पत्तों में नहीं
अब जड़ों में उलझ रही
पीपल की इन ध्वनियों
नीरवता के ढंग
रोने की ध्वनियाँ
आपस में गुंथि-गुंथि हैं
--यही हमारी सम्मिलित हँसियाँ
गूंजी थीं कभी
वायु में ।"[1]

3.युंग के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के आधार पर :-

युंग ने व्यक्ति के अचेतन का द्विविधा विभाजन किया है - सामूहिक अचेतन एवं वैयक्तिक अचेतन । वैयक्तिक अचेतन द्वारा व्यक्ति जीवन में दमित अनुभवों के आधार पर विकसित होता है । युंग ने कहा है कि "अचेतन चेतन के असामंजस्य के कारण "परसोना" अर्थात् ऐंद्रिक आकांक्षाओं तथा नैतिक आकांक्षाओं में द्वन्द्व उपस्थित होता है ।"[2]

युंग ने चेतन एवं अचेतन को परस्पर पूरक माना है और इन दोनों के सम्मिलित रूप में मानव के मानसिक (psyche) व्यक्तित्व का निर्माण होता है । उनके अनुसार व्यक्ति के मूलत: दो प्रकार है - अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी । अन्तर्मुखी व्यक्ति बा पर्यावरण से विमुख होकर आत्म केंद्रित रहता है और सर्वदा अपने विषय में सोचता है । इसके विपरीत

- -

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 26
2.

बहिर्मुखी व्यक्ति बाह्य जगत से संबंधित सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में क्रियाशील होता है ।

"सूखा सरोवर" में चेतन एवं अचेतन मन के आवेगों में सामंजस्य न होने के कारण राजा में द्वन्द्व छिड़ता है । उसका यह संघर्ष ऐंद्रिक आकांक्षाओं एवं आध्यात्मिक आकांक्षाओं के मध्य होता है । इस स्थिति में आध्यात्मिक आकांक्षाओं की विजय होती है इसलिए वह सिंहासन की अभिलाषा करनेवाले व्यक्ति को मानवता का घोर शत्रु कहता है—

"पता नहीं किस निर्मम ने
किसी अमानवीय क्षण ने
किस मनोबल से
निर्मित किया था
सिंहासन को ।"[1]

"उर्वशी" में युंग ने चेतन-अचेतन के असामंजस्य के कारण परशोना अथवा ऐंद्रिक तथा नैतिक आकांक्षाओं के मध्य संघर्ष की जो स्थिति बतलाई है वह पुरूरवा में मिलती है । पुरूरवा कभी जीवन के प्रति आकर्षण का अनुभव करता है तो कभी विषाद में डूब जाता है—

"देह प्रेम की जन्मभूमि है, इस शैशवस्थली की
ममता रखती रोक उसे अति दूर देश जाने से
बाधक है यह प्रेम आप ही अपनी उर्ध्व प्रगति का ।"[2]

"एक कंठ विष पायी" में युंग की अन्तर्मुखीवृत्ति से युक्त होकर उनका

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ – 53
2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ – 62

आत्मविश्वास क्षीण होता है । सती के देह त्याग का समाचार सुनते ही निष्कम्प आचरण करने लगता है—

"जन संकुल राजमार्ग नीरव
जन हीन नगर
चिड़ियों के नुचे हुए पंखों से
सारे घर,
सारा क्रम छिन्न-भिन्न
पूरा परिवेश भग्न
और व्यक्त इन सारी स्थितियों पर
तनी हुई
जड़ आकृति मग्न ।"[1]

युंग ने चेतन-अचेतन के असामंजस्य के कारण "परसोना" की जो स्थिति बतलाई है वह शंकर में उपलब्ध होती । सती का परित्याग करके कठिन जीने में अपने को धन्य मानने में तो संघर्ष स्पष्ट हो जाता है । इस संघर्ष के परिणामस्वरूप शंकर अपने जीवन को अमृत - सती के प्रेम का तिरस्कार करके अभाव व पीड़ा को वहन करते हैं ।

"आत्म जयी" में नचिकेता में आत्म संघर्ष बाल्य जीवन के मध्य काल से प्रारंभ हो जाता है तथा यह द्वन्द्व समयानुसार अपनी चरम सीमा को प्राप्त होता हुआ दिखाई देता है । अंत में जीवन और मृत्यु का संघर्ष भी प्रारंभ होता है । नचिकेता में जीवन और मृत्यु का द्वन्द्व चेतन-अचेतन के असामंजस्य के कारण होता है । नचिकेता "मृत्यु मुखात्प्रमुक्त" होकर कुछ क्षणों के लिए जीवन की निरंतरता का अनुभव करता है जिसका प्रसार एक ओर अतीत से है जब नचिकेता मरण भीति से मुक्ति पाकर अस्तित्व की चिरन्तता का अनुभव करता है तब

- -

1. दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृष्ठ - 98

जागृति का बोध होता है । इसके पूर्व तो वे है बौद्धिक धरातल, परतंत्रता पुरानी रूढ़ीवादी जीवन दृष्टि आस्तिकता के प्रति विद्रोह करता है ।

ड. युंग ने व्यक्ति के दो रूप माने हैं - 1. अन्तर्मुखी 2. बहिर्मुखी । राम अन्तर्मुखी व्यक्ति है, अपने ही विचारों में लीन एकांत प्रिय है "संशय की एक रात" नाट्य-काव्य के प्रारंभ में राम के विचार इसी रूप में प्रकट हुए हैं--

"ऐसा युद्ध
ऐसी विजय
ऐसी प्राप्ति
सब मिथ्यात्व है
नरसंहार के व्यामोह के प्रति
वितृष्णा से भर उठा हूँ ।"[1]

लक्ष्मण बहिर्मुखी व्यक्ति है । उनकी रुचि अपने चारों ओर के संसार में है तथा राम एकांत प्रियता की अपेक्षा लोगों की संगत तथा शांति की अपेक्षा क्रियाशीलता को पसंद करते हैं उनकी दृष्टि में--

"कितने ही लघु हों
इससे क्या ?
सार्थक है
स्वत्व है हमारा
कर्म--
हमारी जलती हुई आँखों में
झंपी हुई मुट्ठी में

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 24

छिपे हुए ओठों

इन यंत्रित पैरों में

संकल्पित प्रज्ञा है ।"[1]

युंग ने चेतन-अचेतन के असामंजस्य के कारण "परसोना" अर्थात् नैतिक आकांक्षाओं या आध्यात्मिक आकांक्षाओं के बीच संघर्ष की जो स्थिति बतलाई है वह राम में उपलब्ध होती है । राम के मन में द्वंद और पराहं का संघर्ष इनके परस्पर असामंजस्य का ही परिणाम है । युद्ध के प्रति स्वीकारात्मक दृष्टिकोण और नकारात्मक दृष्टिकोण दोनों में ही मानव मूल्यों के प्रति स्थापित भाव निहित है और वही दृष्टिकोण परिवर्तन के बावजूद भी उनके व्यक्तित्व की मूल संवेदनात्मक अन्विति को बनाए रखा है । युद्ध की अस्वीकृति में मानव की मानवता पर अधिक विश्वास करने की उनकी प्रवृत्ति निहित है । यहाँ युद्ध की आवश्यकता को जन्म देनेवाली अमानवीय दानवीय प्रवृत्तियों के लिए अस्तित्व की परिकल्पना के लिए ही अवकाश नहीं रहता, किंतु इस प्रकार की दृष्टि अव्यावहारिक है । मानवीय प्रवृत्तियों के साथ ही यथार्थ जगत में उसके सक्रिय प्रतिरोध की आवश्यकता अनुभव होती है जिससे सब प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त हो सके । संशय से संकल्प और युद्ध की अस्वीकृति से स्वीकृति तक की मानसिक यात्रा में राम के व्यक्तित्व का युंग के सिद्धांतों से संबद्ध किया जा सकता है । अभियान की तैयारी के पूर्व राम का यह अन्तर्द्वन्द्व युंग के सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से सामने लाता है--

"युद्ध नियति है

प्रश्न नहीं

मैं ने संकल्प बलोपत

---

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 14-15

गिरा दिया है प्रश्नों को
इस अपरिमित ज्वारों में ।"[1]

"उत्तर प्रियदर्शी" में अशोक कभी भौतिक सुख-सुविधाओं में लिप्त रहता है तो कभी जीवन के प्रति व्यामोह, वितृष्णा के भाव उसमें जागृत होते हैं । भिक्षु से भेंट होने पर करुणा से चीत्कार करता हुआ कहता है—

"युद्धांत यहाँ यात्रांत हुआ
खुल गया बंध । करुणा फूटी
आलोक झरा ! यह झिंकर
मुक्त हुआ गत शोक ।"[2]

नाट्य-काव्य के प्रारंभ में अशोक के अंतर्मुखी व्यक्तित्व को प्रधानता दी गई है । वह बाह्य पर्यावरण से विमुख होकर आत्म केंद्रित रहता है । कलिंग विजय के उपरांत अशोक अपना यशोगान सुनने में लीन रहता है—

"गाओ नाभी
भर चारण-गण ।
प्रियदर्शी परमेश्वर
राम-रामेश्वर के यश गान से ।"[3]

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 84
2. अज्ञेय, उत्तर प्रियदर्शी - पृष्ठ - 49
3. " , " - " - 15

4. ओटोरैंक, केरन हार्नी, एरिक फ्रोम के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सिद्धांतों के आधार पर :-

मनुष्य के विकास में समाज और संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों का मानसिक विकारों से निकट का संबंध है वह मानसिक रोग की तीव्रता के स्वरूप को निर्धारित करता है । मनोविकृतियों के स्त्रोत केवल आंगिक दोष और मानसिक रोग ही नहीं, इनके अतिरिक्त व इनसे मिलकर समाज और संस्कृति के कुप्रभाव, दोष, खींचातानी भी व्यवहार में असामान्यताएं उत्पन्न करते हैं । इसलिए ओटोरैंक, केरन हार्नी, एरिक फ्रोम आदि मनोवैज्ञानिकों ने परिवार की भूमिका, सांप्रदायिक संबंधों और सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर विशेष रूप से ध्यान दिया है ।

राइक ने यह स्वीकार किया है कि - "अधिकतर मानसिक ग्रंथियों की उत्पत्ति काम-वृत्ति की असंतुष्टि एवं उसकी विषमताओं के कारण होती है ।"[1]

हार्नी का कथन है कि - "मनुष्य संतोष की कमी के साथ आहार, धन संपत्ति, अनुराग और अपनी व्यक्तिगत स्थिति का परित्याग कर देता है ।"[2] प्रतिस्पर्द्धा, परस्पर सहयोग एवं प्रगतिशीलता इन स्थितियों में यदि व्यक्ति स्वयं को असुरक्षित पाता है तब वह स्नायु विकारों से ग्रस्त हो जाता है - "ऐसा व्यक्ति तीन दिशाओं में मुड़ जाता है प्रथम तो वह व्यक्तियों से हट जाता है दूसरे उनका विरोधी बन जाता है तीसरे उनसे दूर हो जाता है ।"[3]

---

1. Otto Rank, Will Therapy Truth and Reality P-134
2. Horney K. New ways in Psychoanalysis-50-53
3. Horney K. Neurotic Personality-P-113

फ्रौम ने व्यक्ति के पर्यावरण के साथ सामंजस्य के लिए उसके समाज के प्रति प्रेम को महत्व दिया है । उसके अनुसार - " प्रेम सौहार्द एवं क्रियात्मक शक्ति इन्हीं गुणों के कारण व्यक्ति का समुचित विकास होता है । इस असामंजस्य में कभी-कभी अस्वस्थ सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का भारी प्रभाव रहता है । इसप्रकार स्वस्थ समाज जहां निर्माणात्मक विकास करता है वहीं अस्वस्थ उसमें ध्वंसात्मक गुणों को बढ़ा देता है ।"[1]

"उर्वशी" में पुरुरवा के प्रेम व त्याग का संघर्ष नाम दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी प्रणय-भावना संस्कृति, समाज द्वारा स्थापित त्याग के आदर्श से समन्वय न कर पाने के कारण उसमें संघर्षरत हो रही है किंतु वास्तव में पुरुरवा के त्याग का आदर्श संस्कृति निर्मित न होकर केवल उसके मिथ्या भ्रम का परिणाम है अत: उसमें द्वन्द्व का सामाजिक रूप उपलब्ध होता है ।

"आत्मदान" में अहल्या में मानसिक तनावों की उत्पत्ति अधिकतर काम-वृत्ति की असंतुष्टि के कारण हुई है । गौतम का स्मरण करती हुई अहल्या अपनी व्यथा को व्यक्त करती हुई कहती है--

"तुम थे असमर्थ स्वयं ही देव
मुझे रोक पाने में
कुछ थे - रोक गति मेरी
कुछ तुम्हारी थी निःसहायता
तुम तपस्या के पथिक
इंद्रिय-साधक हो अनुपम
जब तक तुम बांध रहे मुझे

---

1. Erich Fromm, The Sane Society - P- 362

मैं बंधी रही संयम शीला
जब भटकी
तर्काश्रद पाकर स्व मति का
तुमने त्याग दिया
नहीं रोका
नहीं संभाला ।"[1]

"इला और अमिताभ" में अमिताभ में मानसिक संघर्ष का उदय काम-वृत्ति की विषमताओं के कारण होता है । इस संघर्ष की सृष्टि में समाज का प्रमुख हाथ है । इला उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति इस रूप में करती है--

"तुम्हारा यह ख्याल कि ईश्वर ने तुम्हें
तुम्हारे भौतिक व्यक्तित्व को
ठीक वहाँ दण्डित किया जहाँ
उसने
वासना से प्रेरित हो पापाचार किया था
भ्रम खाये चित्त की
भीरु कल्पना भर है,
सच यह कि उस कुत्सित प्रतिशोध का
सारा दायित्व
रूढ़िबद्ध समाज पर है ।"[2]

केरन हार्नी ने बतलाया है कि अनसुलझे अन्तर्द्वन्द्वों के परिणाम स्वरूप व्यक्तित्व में तीन प्रकार के परिवर्तन हो सकते हैं - ये पुरूरवा में भी मिलते हैं प्रथम वृत्ति के परिणामस्वरूप पुरूरवा विनम्रता की प्रवृत्ति

- -

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 28
2. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ, पृष्ठ - 88

को विकसित करता है । दूसरी वृत्ति में पुरूरवा में शत्रुभाव के दर्शन होते हैं तभी तो पुरूरवा कहता है--

> जब मनुष्य चीखता, व्योम का हृदय दरक जाता है,
> सहम-सहम उठते सुरेंद्र उसके तप की ज्वाला से ।
> और कहीं हो क्रुद्ध मनुष्य करदे आह्वान प्रलय का,
> स्वर्ग, सत्य ही, दूर गगन से भू पर आ जायेगा ।
> क्या लेंगे साहाय्य मनुष्य का ? हम मनुष्य क्या कम हैं ।"[1]

तीसरी वृत्ति के परिणामस्वरूप पुरूरवा अपने दोषों को देवताओं पर आरोपित कर संतुष्ट होता है--

> "जिसने भी की प्रीति, वही अपने विदीर्ण प्राणों में
> लिये चल रहा व्रण, शोणितमय तिलक प्रेम के कर का,
> और चोट जिसकी जितनी ही अधिक, घाव गहरा है,
> वह उतना ही कम अधीर है व्यथा-मुक्ति पाने को ।"[3]

"आत्मदान" में अहल्या कामवृत्ति की अतृप्ति के कारण इंद्र के प्रति आकर्षित होती है उसका कहना मान लेती है--

> "मैं सागर पर लहराती
> चकोर की प्यास थी
> आँधियों में झूलती
> महावृक्ष की निष्क्रिय एक पत्ती
> सूर्य की परिक्रमा करती
> धरती की यंत्र बंधी
> तृप्त हूँ मैं

---

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 141
2. " , " , " - 142

सक्रिया
मंत्र मुक्ता
इस चरम क्षण में ।"[1]

दूसरी वृत्ति में आत्मोच्चता की भावना को उदित करती हुई अहल्या कहती है—

"नहीं
कहो यह कोई पाप कर्म नहीं
यह व्यक्ति का अपने प्रति
सर्वोच्च न्याय है
अपनी रुचि का सत्कार
आत्माभिव्यक्ति है यह
मैं प्रस्तुत हूँ
स प्रहार सहने को
मैं प्रस्तुत हूँ
तिरस्कार सहने को ।"[2]

तीसरी वृत्ति में जन विलगता, बाहरी दबावों के प्रति संवेदनशीलता, सबसे स्नेह व सहानुभूति की प्राप्ति की कामना उदित होती है ।

"सूर्यपुत्र" में बाल्यावस्था की अस्वीकृतियाँ कर्ण को चिंतित बना देती है । कर्ण नित्य प्रति सोचते हैं कि वे माता-पिता द्वारा पृथक किए गए हैं और अपने कार्य शक्तियों का विरोध करनेवाली दुनिया में जी रहे हैं —

---

1. बलदेव वंशी, आत्मदान, पृष्ठ - 14
2. " , " , " - 13

"लगने लगा सभी करते हैं आक्षेप
कौन है मेरा पिता यह न बता सकता हूँ ।"[1]

दुर्योधन के द्वारा आश्रय प्राप्त कर कर्ण में उसके प्रति अत्यधिक सहिष्णुता का उदय होता है—

"सभी विचित किये राज्य सौंप कर सखा को
लेकर अनुमति तथा आवश्यक निर्देश
विदा ले दुर्योधन से
कर्ण चले बिखराने सौरभ स्वराज्य
अंगी देश में ।"[2]

भीष्म की कटुक्तियाँ कर्ण में "अर्जुन के प्रति शत्रुभाव को बढ़ावा देती है—

"कर्ण की तन गईं मुष्ठियाँ, वक्र हो गया मुख
एक आवेग दौड़ गया रग्-रग में अवर्णनीय
फूत्कार करता सा उठ पड़ा आसन से
आँखों से निकल पड़ी चमकती चिनगारी ।"[3]

"अग्निलोक" में सीता वनवास के माध्यम से कवि ने सीता के चरित्र को मानवीय पहलुओं के रूप में प्रस्तुत करना चाहा है । बाल्यकाल की अस्वीकृतियाँ उनके पुत्रों लव-कुश को चिंतित बना देती है । सीता के भू प्रवेश के बाद यह हीनता की भावना प्रबल रूप में दिखाई देती है जिसकी अभिव्यक्ति कुश करते हैं—

"भैया, मैंने कहा था न,
हम इस संसार में अकेले

---

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ – 51
2. " , " , " – 56
3. " , " , " – 85

हम स्वयं ही अपने माता-पिता हैं
यहाँ कभी कोई सहारा नहीं मिलेगा ।"[1]

"एक पुरुष और" में एरिक फ्रोम के सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । मेनका के रूप सौंदर्य पर मुग्ध होने के बाद विश्वामित्र में ऐसी प्रतिक्रिया होती है जो उनकी इयत्ता को बनाये रखने में समर्थ होती है । विश्वामित्र की हीन भावनाओं की अति क्रोध में परिणत हो जाती है और विश्वामित्र अपनी इच्छाओं को संकल्पों में बदल देते हैं । इसी परिवेश में विश्वामित्र—

"पौरुष पराहत होने की नियति
स्वीकार नहीं करता ।"[2]

वह सोचते हैं कि कल्याण के यज्ञ में आहुति देना और वह भी निर्भीकता के साथ क्रांति की दिशा में बढ़ाये जानेवाला सच्चा कदम है ।

"इला और अमिताभ" में इला की काम कुण्ठाएं मानसिक असंतुलन उत्पन्न करती है । पर्यावरण से असामंजस्य उसमें क्रूरता, दूसरों द्वारा शोषित किये जाने आदि की भावनाओं को उत्पन्न करता है—

"देह के सुखों को नहीं, प्रिय मैंने चाहा है
तुम्हें केवल
सुख और शांति में तुम्हारी संतुष्टि मेरा
धर्म विमल ।
स्त्रीमठ में पहुँच व्रत धर्माएं ओट लूँगी
मैं कठिनतर,
निश्चय ही याद किंतु प्रिय की सताएगी

---

1. भारत भूषण, अग्निलोक, पृष्ठ - 56
2. डॉ. विनय, एक पुरुष और, पृष्ठ - 83

आठों पहर ।
निष्ठुर समाज ! तेरे जकड़बन्द घेरे में
जगह नहीं
मुझ प्यार को मेरे, जाती हूँ, तेरी
ही जीत सही ।"[1]

"अग्निलोक" सीता अनेक खतरों को लेकर मन-हीमन भयाक्रांत है । वह इसी भ्रम के कारण कोई सही निर्णय नहीं ले पाती । प्रस्तुत नाट्य-काव्य में सीता का ऐसा व्यक्तित्व उभरता है, जो सही होता हुआ भी विवश है और जीवन को समाप्त कर देने का खतरा मोल लेता है क्योंकि वह स्वयं को भ्रम के कारण कमजोर मानती है और असामंजस्य तत्वों का सामना नहीं कर सकती वाल्मीकि के समक्ष कहती है--

"इस विशाल विश्व में अब मुझे कहीं ठौर नहीं है
लोग कहते हैं कि मैं धरती से जन्मी थी,
तो अब वही धरती मुझे अपनी गोद में समाले
वह मेरी अंतिम शरण हो-
जाती हूँ ।"[2]

राम द्वारा परित्यक्त सीता आंतरिक रूप से भयभीत है उसके लिए कुछ भी ऐसा नहीं है जो उत्साहवर्धक हो जीवंत हो ।

"महास्वप्न का मध्यांतर" में आदमी जिन इच्छाओं को जाती है कवि भी उनमें से एक है यहाँ इच्छाओं से तात्पर्य व्यक्ति की अवचेतन स्थिति से है--

"खोए जाने पर लगता हूँ

---

1. डॉ. देवराज, इला और अमिताभ, पृष्ठ - 49
2. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 54

क्या मिलेगा कोई
मैं हर मुई ह को
टुकड़े-टुकड़े हो जाने के बाद भी
कभी-कभी मिलता हूँ
इसी सब कुछ मैं से
जो मैं हूँ, एक
एक निष्याधि निराकार
सन्नाटा फूट पड़ता है
अभी एक मछली अभी एक कछुआ
सारे समुद्रों का पानी
चुल्लू के लिए
कम पड़ता है
आदिम याददाश्त
वनस्पतियों के
कोंपला-लिपि अंकन के पहले
हर उल्के गमिका तक ।"[1]

कवि फिर भी हर हालत में अपने अहं को बनाए रखता है । कवि की दृष्टि में तुम, मैं अर्थात् अहं, इंद दो अलग-अलग छोर है--

"सब कुछ से बाहर मैं
इतना निविड़ प्यास हूँ
सब मेरे भीतर तुमुल सा धधक रहा ।"[2]

कवि का कथन है कि मैं भ्रम का पुत्र है--

"जब से होना हुआ जीव का

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर, पृष्ठ - 113
2. " , " , " - 113-14

मैं धाड़मार कर
हँसता आया हूँ
हर उलक
पैवस्त मैं
जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न तक में
पराया हूँ
सब नाम भ्रम है ।"[1]

अहं और इदं में इतनी दूरी नहीं है जितनी आग और राख में । शराब जिस तरह धीरे-धीरे आदमी की सारी धमनियों में फैल जाती है उसी रूप में कवि अहं और इदं को एक करना चाहता है—

"जब तक मैं फैल नहीं जाऊं
शराब-सा
तुम्हारी धमनियों में
बजने न लग जाऊँ ।
और यह हो चुका है कई बार हो भी रहा है ।"[2]

कवि स्वयं को मनोसामाजिक रूप में स्वीकृत करना चाहता है । आदमी अपनी मानसिक स्थिति को समाज से जोड़ना चाहता है । कवि वराह से चला है आदमी किस तरह पैदा हुआ, किस तरह पुरानी यादें आदमी का पीछा करती है उनसे छूटने के लिए कवि का अहं किस रूप में कार्य करता है लेकिन उसका इदं उसे स्वीकार नहीं करता फिर वह यह अनुभव करता है कि केवल भ्रम है । अहं की स्थिति इदं में मिलने पर अहं का परिष्कार होता है और एक स्वस्थ समाज का निर्माण होता है ।

- -

1. कैलाश वाजपेयी, महास्वप्न का मध्यांतर, पृष्ठ - 114
2. " , " , " - 114

-:: पंचम अध्याय ::-

समकालीन नाट्य काव्य और स्वप्न मनोविज्ञान

1. फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त

1.1. स्वप्न एक मानसिक प्रक्रिया

1.2. स्वप्नों का निश्चित अर्थ

1.3 स्वप्नों में सुदूर अतीत के अनुभवों की प्राप्ति

1.4. स्वप्नों में एक से अधिक अर्थों की प्राप्ति

2. एडलर के स्वप्न सिद्धान्त

2.1. स्वप्न सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

2.3 स्वप्न व्यक्ति की क्रियात्मक सृजनशीलता के अंग

2.4 स्वप्न भविष्य दर्शन के बोधक

3. युंग के स्वप्न सिद्धान्त

3.1 स्वप्नों का वर्तमान समस्याओं से सीधा सम्बन्ध

3.2 स्वप्न सामूहिक अचेतन मन की भाषा

पंचम अध्याय

समकालीन नाट्य - काव्य और स्वप्न मनोविज्ञान

स्वप्न व्यक्ति के आंतरिक पक्ष का सबल माध्यम है । चरित्र के बाह्य पक्ष का पता तो कई बातों से चलता है पर चरित्र के आन्तरिक पक्ष को उजागर करने वाले माध्यम बहुत कम है जिनमें स्वप्न एक सबल माध्यम है ।

स्वप्न और मिथक में यह अन्तर है कि स्वप्नों की अनुभूति एक ही व्यक्ति करता है, कोई अन्य उसका भागीदार नहीं होता, किन्तु मिथक सामूहिक स्वप्न है पुरामानव के सामूहिक स्वप्न और सामूहिक अनुभव है, और स्वप्न व्यक्ति की सुप्तावस्था प्रागैतिहासिक घटना या आस्था है ।

मिथक और स्वप्न दोनों में काम-वासना की प्रधानता स्वीकार, करता हुआ फ्रायड काम वासना का प्रभाव तथा जीवन रक्षा से सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है । फ्रायड का कथन है कि काम (सेक्स) का परिशोधन व्यक्ति को महान बना देता है । फ्रायड ने काम की सृजन से स्थूल की परिव्याप्ति की ओर भी संकेत किया है ।

फ्रायड का अनुयायी एडलर यह मानता है कि स्वप्न व्यक्ति की क्रियात्मक सृजनशीलता के अंग है स्वप्नों में संघर्ष या कठिनाइयों पर विजय प्राप्त होती है और भविष्य पक्ष का बोध होता है ।

युंग यह प्रतिपादित करता है कि स्वप्नावस्था में हमारा अचेतन मन सक्रिय बना रहता है स्वप्न वर्तमान समस्याओं को हल करते हैं और स्वप्नों का पूर्व अथवा आदर्श रूप सामूहिक अचेतन में विद्यमान रहता है ।

1. फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त

1.1 <u>स्वप्न एक मानसिक प्रक्रिया</u> - समकालीन नाट्य काव्य "आत्मजयी" में कुंवरनारायण ने नचिकेता के द्वारा देखे गए स्वप्नों का विशद रूप में वर्णन किया है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न एक कायिक घटना नहीं बल्कि मानसिक घटना है।[1] वास्तव में स्वप्न निद्रा काल का मानसिक जीवन है, जो हमारे जाग्रत जीवन से कुछ सादृश्य रखता हुआ भी अधिकांश उससे बहुत कुछ भिन्नता रखता है। आत्मजयी में नचिकेता का अचेतावस्था में देखा गया स्वप्न उस तथ्य को उभार कर लाता है जहाँ आत्म हत्या का भौतिक या शारीरिक स्वरूप गौण हो जाता है तथा मानसिक स्वरूप प्रमुख हो उठता है।

विश्वजित सर्वमेध के यज्ञ में सर्व संपत्ति की दक्षिणा के दान का नियम है। तदनुसार वाजश्रवा ने भी अपने सारे धन का दान किया किन्तु उसमें दान की महिमा पूरी तरह से प्रतिष्ठित नहीं थी। सर्वस्व दान के अनन्तर उसकी दक्षिणा के रूप में प्राप्त द्रव्यों को दूसरे पुरोहितों सभासदों के लिए जब वाजश्रवा ने आज्ञा दी तब उन दक्षिणाओं की हीनता को देखकर नचिकेता में श्रद्धा उपजी।

सकाम कर्मों द्वारा जो वैराग्य हुआ उसके कारण वाजश्रवा ने सर्वस्व दान के द्वारा सर्व कर्म सन्यास प्राप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु कर्मों के द्वारा जो इन्द्रियाँ शिथिल हो गई है, वे सन्यास करने पर भी जीवन के आगे आने वाली उच्च वृत्ति को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो पाती। सन्यास में प्रथम तो अवश्य सब कुछ छोड़ दिया जाता है, परन्तु फिर शम, दम आदि जो इन्द्रिय और मन के साधन है की सहायता

Freud - A General Introduction to psychology p-82

Freud

से बुद्धि द्वारा एवं पदार्थ के विवेक में समझा पड़ता है वाजश्रवा में वह सामर्थ्य नहीं थी अतः पिता के कृत्यों से असहमत नचिकेता कहता है कि पिताजी ! आप यद्यपि सर्व कर्म सन्यास का प्रसंग चला रहे हैं तथापि इस वृद्धावस्था में आपके द्वारा यह संभव नहीं है

" पिता, तुम भविष्य के अधिकारी नहीं -
"क्योंकि तुम "अपने" हित के आगे नहीं सोच पा रहे,
न अपने "हित" को अपने सुख के आगे ।
तुम वर्तमान को संभा तो देते हो, पर महत्व नहीं ।
तुम्हारे पास जो है उसे बार-बार पाते हो
और सिद्ध नहीं कर पाते कि उसमें
तुम्हें संतुष्ट किया ।"[1]

पिता के कृत्यों से असहमति के कारण वह आत्म हत्या के लिए प्रवृत्त होता है और स्वयं को पानी में डुबो देता है, किन्तु मरता नहीं अचेतावस्था में स्वप्न देखता है . . . यम से साक्षात्कार । यम उसके अन्तर्मन में स्थित मृत्यु का पौराणिक रूप है --

"एक पाशविक भावना भी - इस तरह
कि युद्ध और कलह जरूरी लगे,
स्वार्थ और छल से जीना मजबूरी लगे ।
यदि यथार्थ है मृत्यु भी

- -

1. कुंवरनारायण आत्मजयी .. पृ. 4

तो मृत्यु भी यथार्थ हो जा सकती है
इस तरह कि वह जीवन पर छा जाये -
एक संभावना से बढ़कर आवश्यकता बन जाये
और हम उसे रोज़ के व्यवहार में बोते, सिखायें, फैलायें । [1]

आत्महत्या का प्रयत्न के बाद नचिकेता स्वयं को जिस स्थिति में पाता है, उसका संकेत इन पंक्तियों में मिलता है -

" एक घर
जिसमें न दरवाज़े
न बाहर निकलने के रास्ते
केवल दीवारें ।" [2]

नचिकेता का मानसिक विक्षोभ अत्यंत तीव्र हो गया है उसकी हताशा इस बात की सूचक है -

" जिधर भागे
उधर आगे पहले ही से एक कठिन अनिश्चय,
पीछे आ खड़ी होती एक नयी दीवार
जो पहले न थी,
एक डरावनी छाया
और निकलते पाँवों को
धकेल कर आगे ढकेलते
धमकी इरादों के निर्मम इशारे ।
चाहे भाई हो, चाहे आज, चाहे कल -

---

1. कुँवरनारायण "आत्मजयी" - पृ. 7 2.-वही- पृ. 40 3.-वही- पृ.40

नचिकेता के सम्मुख आत्महत्या के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प शेष नहीं बचता ।
पेरों को तोड़ता, ऊंचाइयों को पीछे छोड़ता,

"अंधेरों में फैलता वह डूब पड़ता है -
नीचे और नीचे - एक नापता हुआ
नभिकुण्ड - सागर ।" [1]

इसके पश्चात किसी तरह का भय नहीं व्यापता क्योंकि जो व्यथा उसे भयभीत कर रही थी, वह अब नहीं बचती -

"सहसा नीचे कठोर धरती की चोट नहीं
शीतल जल की कोमल गहराई पा जाये
मानो भय चरम व्यथा हो - मृत्यु नहीं, वह तो
केवल कोई अद्भुत विराम-सा आ जाये ।" [2]

नचिकेता की मृत्यु की आशंका से वाजश्रवा विक्षुब्ध होता है वाजश्रवा जब अपनी दक्षिणाओं को इन कार्यों को करने में असमर्थ देखता है, तब मानों नचिकेतात्मक वैराग्य रूपी अपने पुत्र से उसमें स्वयं ही श्रद्धा का प्रवेश हो जाता है जो उसका जन्म है -

एक लम्बी सजा बाद
पहचानी गई कोई बेगुनाह सच्चाई
न जो बन्द थी
भीतर के अन्धेरे में कहीं' ।" [3]

---

1. कुंवरनारायण "आत्मजयी" पृ. 64
2. - वही - पृ. 45
3. - वही - पृ. 20

वाजश्रवा की इस ग्लानि का भी किंचित आभास मिलता है कि वह स्वयं अपने पुत्र की मृत्यु का कारण बना है उसे प्रतीत होता है -

"जैसे मर्मान्तक एक चीख दीवारों तक में गड़ जाए ।
जैसे सदैव के लिए स्याह परदा दर्पण पर पड़ जाए"। [1]

वाजश्रवा सुखी वस्तुवादी है और संभवतः इसी लिए कर्मठ और व्यावहारिक भी । अपनी आशंका के बावजूद भी वह नचिकेता के उपचार में प्रवृत्त हो जाता है -

"जैसे मर्मान्तक एक चीख दीवारों तक में गड़ जाये ।
जैसे सदैव के लिए स्याह परदा दर्पण पर पड़ जाये ।" [2]

1.2 <u>स्वप्नों का निश्चित अर्थ</u> - फ्रायड स्वप्नों की सार्थकता को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि - "स्वप्न अर्थहीन न होकर पूर्णतः सार्थक होते हैं, जिसकी व्याख्या वैज्ञानिक पद्धति पर की जा सकती है ।" [3] "आत्मजयी" में नचिकेता अपने को जानने के लिए तैयार है इसके लिए वह पूरी तरह ईमानदार है वह जैसा है ठीक उसी रूप में अपने को जानने के लिए तैयार है । अपने स्वप्नों की स्वयं व्याख्या करने के लिए जिस धैर्य, साहस, अलगाव की जरूरत है वह नचिकेता में विद्यमान है । "आत्मजयी" के प्रारंभ में ही वाजश्रवा की संग्रहवृत्ति और यज्ञ की आहुतियों में निहित हिंसा का विरोध एक सार्थ करता है । बीमार गायों के दान अर्थात सब कुछ संचित करने के क्रम में केवल निकृष्ट अथवा व्यर्थ वस्तुओं से मुक्ति पाने के प्रयास में निंदा करते हुए नचिकेता वाजश्रवा को चुनौती देता है ।

- -

1. कुंवरनारायण, "आत्मजयी" पृ. - 46 (2) -वही- पृ. 46

3. Freud, Interpretation of Dreams - p-10

" तुम जिन वस्तुओं को प्रिय या अप्रिय कहते
यदि केवल उनमें हूँ,
तो मुझे भी त्याग
मुझसे जो उत्तर कुछ मांगो ।"[1]

नचिकेता का यह कहना कि और देना ही है तो मुझे दो बदले में वाजश्रवा का शाप - " मृत्यवेत्वा ददामि ।"[2] में निहित कटु सत्य का साक्षात्कार करते ही, पूर्णतः हतप्रभ, दुविधाग्रस्त नचिकेता उद्विग्न हो जाता है -

" लोभ के वशीभूत गदगद श्रद्धाओं के मेले में
भीड़ के प्रपंच बीच शंकित जिज्ञासु -
अशुभ उपस्थित हूँ ।
मैं अपनों के हठात सत्यों से वञ्चित हूँ ।
उनके विशुद्ध विश्वासों से हारा हूँ ।
उनकी नादानी से
कुछ ऐसे अपराधी साबित हूँ
मानों अपना ही हत्यारा हूँ ।"[3]

नचिकेता की इन अदमित इच्छाओं को प्रतिरोध के अंकुश से बचने के लिए छद्मवेश धारण करके व्यक्त होना पड़ता है, जिससे स्वप्न की वस्तु क्लिष्ट होने के लिए बाध्य होती है ।

- -

1. कुँवरनारायण - "आत्मजयी" पृ. - 13
2. -वही- पृ. - 14
3. -वही- पृ. - 18

1.3 स्वप्नों में सुदूर अतीत अनुभवों की प्राप्ति - फ्रायड ने स्वप्नावस्था में अपनी तुष्टि के प्रयत्नशील होने वाली इन दमित इच्छाओं को एक ओर सुदूर अतीत काल से अचेतन में अवस्थित मानता है और दूसरी ओर स्वप्नों को रात्रि के ठीक पूर्व दिन की अतृप्त कामनाओं के रूप में स्वीकार करता है इस सम्बन्ध में उसका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है कि " संभव है कि प्रत्येक स्वप्न में उपस्थित होने वाली वस्तु का सम्बन्ध पूर्व दिवस के अनुभवों के साथ जोड़ा जा सके ।"[1] नचिकेता स्वप्न में पूर्व दिवस की दमित इच्छाओं का अवलम्ब लेकर सुदूर अतीत की दमित इच्छाओं की तुष्टि पाना चाहता है यम के आत्मज्ञान के उपदेश से नचिकेता तृप्त नहीं हुआ अतः यह अतृप्त इच्छा पूर्व दिवस की भावनाओं की स्थानीय है । असंयमित कामोपभोग, जीवन की सर्व ग्रासी वासना के संस्कार निश्चय ही नचिकेता के अचेतन में भरे हुए हैं, जो इस अतृप्त मन वासना के साथ सम्बन्ध जोड़कर उन स्वप्नों की रचना कर देते हैं । उग्र या सौम्य भावनाओं को नचिकेता अन्यों पर आरोपित कर सन्तुष्ट होना चाहता है । कोई ऐसी भावना नहीं, कोई ऐसा विचार नहीं है, जिसके अस्तित्व से नचिकेता का अवचेतन मन बेखबर हो जिन विचारों को उसका अचेतन मन कुत्सित या अनुचित मानता है, वे अवचेतन मन के लिए उतने ही सहज और स्वाभाविक है, जितने पवित्र या उचित माने जाने वाले विचार ।

" मैं रीत गया आत्मा को व्यय करके,
बदले में केवल एक कुण्ठा संचय करके ।"[2]

---

1. S. Freud, The Interpretation of Dreams - p-165

2. कुंवरनारायण, आत्मजयी - पृ. 18

नचिकेता का यह क्रमिक विकास ही उसके उस भावी कृत्य का एक सोपान बनता है, जिसे "आत्महत्या" की संज्ञा दी जा सकती है और जो विश्व की एक मात्र दार्शनिक समस्या के रूप में नचिकेता स्वयं अपने को लिए है प्रारंभ में नचिकेता स्वयं को समुद्र में फेंके गए एक शिशु की भाँति पाता है । वह शिशु प्रलय के झकोरों में तैरते -तैरते युवक बन जाता है और डूबने से बचने के लिए मंदिर में स्थापित देव मूर्ति का सहारा लेता है । पर जल बढ़ता ही जाता है और आखिरकार सुरक्षा के लिए मूर्ति के कंधों पर पाँव रखकर नचिकेता खड़ा हो जाता है । उसे प्रतीत होता है -

" अपने विश्वासों के कन्धों पर खड़ा हुआ
जीवन का एक स्थान बिन्दु
चेतना-केन्द्र, चिन्तित मनुष्य
भयभीत अधर में टँगा हुआ,
अस्तित्व -मरण के अधरों से
कुछ बचा कुछ लगा हुआ ... ।" [1]

नचिकेता का यह स्वप्न एक तरह का "नाइट-मेयर" अर्थात् दुःस्वप्न है, जिसके बीच में ही उसकी नींद टूट जाती है वह पुनः अपने वर्तमान एवं अस्तित्व के प्रति चिंतनरत होता है ।

नचिकेता के सम्मुख अपने अन्तर्द्वन्द्व से मुक्ति पाने का एक विकल्प प्रस्तुत होता है, और वह है - प्रीति - जो मानो उसकी कामना पूर्ति का एक अन्य पथ उसके लिए खोलती है । बड़ी तीव्र गति से वह उसकी ओर बढ़ता है क्योंकि--

- -

1. कुंवरनारायण , आत्मजयी -- पृष्ठ ... 22-23

"कई पहचानों के बीच भूल गया था
उस एक पहचान को
जिसकी तुम मुझे याद दिलाती हो ....।"[1]

नचिकेता वासनाओं के इस दुलार को अंतिम रूप से स्वीकार नहीं कर पाता -

" इसी अंधी चपलता को गले से लिपटाकर
मैं केवल विभाजित होता हूं - शान्त नहीं ।"[2]

मानव प्रीति में व्यापित है, किन्तु वासना उसे संकुचित बनाती है । प्यार को "रिक्त" करने वाली सिर्फ वासना है । अपनी तत्कालीन मानसिक स्थिति में नचिकेता को प्रीति का यह पक्ष और भी प्रताड़ित करता है । कभी-कभी बाह्य उद्दीपन द्वारा नचिकेता के स्वप्नों पर प्रभाव पड़ता है । जैविक रूप में नचिकेता पशु की ही भांति आचरण करता है जैसे अस्तित्व का संकट उत्पन्न होने पर पशु या तो डटकर आक्रमण करता है या भाग निकलता है या झुक कर स्वयं को संकट के हवाले कर देता है, ठीक उसी तरह नचिकेता की प्रतिक्रिया होती है । अंतर केवल इतना है कि जहां आक्रमण, पलायन और समर्पण ये तीनों ही विभिन्न प्रकार के मनोविकारों को जन्म दे सकते हैं, वहां मृत्यु को समर्पित नचिकेता में मूलभूत परिवर्तन यह होता है वाजश्रवा और यम जैसे विरोधियों, परिचारकों की उपस्थिति के फलस्वरूप नचिकेता मनो विकारों से मुक्त होकर "सृजन" "सौन्दर्य" "शान्ति" और मुक्ति के प्रति स्वयं को समर्पित करने में समर्थ होता है । पुत्र की जीवन रक्षा के लिए वाजश्रवा ने जो प्रयास किए, उनका संकेत आगे नचिकेता के इस उद्गार से ही मिल जाता है -

---

1. कुंवरनारायण - आत्मजयी -- पृ. 28
2. - वही - पृ. 32

"यह कैसा कोलाहल है मेरे आसपास ?
ये लोग मुझे क्यों घेरे हैं ?" [1]

1.4 <u>स्वप्नों में एक से अधिक अर्थों की प्राप्ति</u> -- फ्रायड ने यह बताया है कि स्वप्नों के प्रायः एक से अधिक अर्थ होते हैं यह नहीं लगता है कि उनमें अनेक इच्छाओं की पूर्ति के साथ-साथ व्यक्त हो रही हो, बल्कि यह भी होता है कि स्वप्नार्थों अथवा इच्छा पूर्तियों की श्रृंखला एक दूसरों पर आरोपित की जा सकती है जिसके मूल में सुदूर अतीत की इच्छा क्रियाशील होती हुई उपलब्ध होती है ।" [2]
नचिकेता के स्वप्नों में एक से अधिक अर्थों की अभिव्यक्ति होती है । वास्तव, यम अलाप में आत्महत्या का प्रयास आदि सब कुछ "स्वप्न" में देखी गई स्थितियाँ और घटनाएं बन जाती है "स्वप्न" के भीतर एक स्वप्न और उसके भीतर अचेतावस्था की परिकल्पना - सभी कुछ सुप्तावस्था में स्वप्न के अन्तर्गत घटित होती है । नचिकेता अंतर्चेतना के उत्तरोत्तर गहन स्तरों तक पहुँचने का प्रयास करता है नचिकेता की दुविधा बाह्य परिस्थितियों और स्थूल घटनाओं द्वारा प्रेरित हुई है, पर यह दुविधा जिस अन्तर्द्वन्द्व को बढ़ाती है, वह क्रमशः जटिल होता जाता है और "आत्महत्या" का प्रयास वस्तुतः नचिकेता के लिए आत्म शोधन का प्रयास बन जाता है । यह प्रयास उलझी हुई मानसिक ग्रंथियों को सुलझाता है । आत्महत्या का प्रयास व्यक्ति का कोई वैयक्तिक या नितांत आंतरिक निर्णय नहीं होता, वरन इस तथ्य का सूचक है कि व्यक्ति अपने परिवेश के साथ सामंजस्य बिठाए रखने में असमर्थ हो गया है । यह "अकेलापन" व्यक्ति का स्वयं अपने साथ सम्बन्ध विच्छेद न होकर परिवेश या समाज के साथ उसका सम्बन्ध विच्छेद होता है । पिता के

---

1. कुँवरनारायण, आत्मजयी -- पृ. 86
2. S. Freud, The Interpretation of Dreams - p219

कृत्यों से असहमति के कारण वह आत्महत्या के लिए प्रवृत्त होता है पर किन्हीं परिस्थितियों के परिवर्तित हो जाने के कारण, वह अपने परिवेश के साथ पुनः सामंजस्य बैठा लेता है ।"आत्मजयी" में "आख्या के पूर्वाभास की प्रक्रिया सामाजिक और स्थूल धरातल पर ठोस घटनाओं के साथ जुड़कर उतनी घटित नहीं होती, जितनी अचेतावस्था में देखे गए स्वप्न के अवचेतनात्मक स्तर । नचिकेता का अवचेतन भी अनेकानेक सामाजिक स्थूल संदर्भों से जुड़ा है । इसका एक सामाजिक संदर्भ, जो कृति से कहीं अधिक कृतिकार के वक्तव्य में मुखर हुआ है, दृष्टव्य है -" " जिस खूनी रात चौमुखी बढ़ती हुई हमारी भौतिक उन्नति, दूसरी ओर आत्मिक स्तर पर वह घोर असमय जो इस भौतिक प्रगति को अपने ही लिए अभिशाप बनाए ले रहा है । "[1] वैसे सामाजिक धरातल पर पिता-पुत्र के द्वन्द्व के पीछे उपनिषदकालीन मनुष्य को भी पाते हैं ।

2. <u>एडलर के स्वप्न सिद्धान्त</u>

2.1 <u>स्वप्न सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के रूप में</u> -- एडलर स्वप्नों को विचार प्रक्रिया का सम्पूर्ण अंश मानता है इस बात पर भी बल देता है कि इसका सम्बन्ध व्यक्ति की जीवन शैली से है ।"[2] नचिकेता के द्वारा देखे गए स्वप्न अपूर्ण हैं किन्तु अधिकांशतः सम्पूर्णतायुक्त स्वप्न उसे दिखाई देते हैं - नचिकेता केवल एक स्तर पर नहीं सोचता उसे हम अन्य परतों को खोलने के क्रम में पाते हैं, दूसरे धरातल पर वह दुःस्वप्न से आगे बढ़ कर एक स्नायुविकार पीड़ित युवा की मनो-ग्रंथियों के उलझते जाने के परिणाम स्वरूप हुए मनोविदलन का और अंततः उसकी

---

1. कुँवर नारायण, आत्मजयी - भूमिका पृष्ठ ... 7
2. Ansbacher H. L. Ansbacher R. R. The Individual Psychology of Alfred Adler - P-358

मनोवृत्ति के मार्मिक प्रयास बन पड़े हैं ।

एक स्तर पर, नचिकेता एक कुंठित व्यक्ति की भाँति स्वयं को पाता है । उसका विद्रोह पिता के प्रति उसे अत्यंत आक्रामक बना देता है पर पिता की ओर से प्रतिघात होते ही, नचिकेता की कुंठाएं बढ़ने लगती है । वह स्वयं को निर्वासित और व्यर्थ समझने लगता है यहाँ तक भयभीत होकर वह अपने अस्तित्व को मिटा देने का फैसला करता है जैसे पहले कहा जा चुका है - उद्विग्न करने वाले " आत्म" को समाप्त करने के प्रयास में ही उन्मुक्त करने वाले उसके "आत्म" का उदय स्वतः निहित है और अब, नचिकेता अपने आप को समर्पित करता है इस बार मृत्यु को नहीं अपितु जीवन के प्रति ।

नचिकेता की जीवन प्रणाली आत्म श्रेष्ठता की भावना से युक्त होती है अतः स्वप्न में उसका विजयवरण का संकल्प व्यंजित होता है । "भ्रष्ट अभिषेकों" के सम्मुख मस्तक न झुकाने और उन्हें मान न देने की इच्छा नचिकेता के शौर्य पूर्ण सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यंजक है --

" ओ मस्तक विराट,
इतना अभिमान रहे -
भ्रष्ट अभिषेकों न दूं मस्तक
न दूं मान ... ।" [1]

नचिकेता की पीड़ा एक संकट ग्रस्त युग में छटपटाते व्यक्ति की अस्तित्ववादी पीड़ा है और उसका साहस भी इस पीड़ा को झेलने की विवशता से उत्पन्न हुआ है

- -

1. कुंवरनारायण , आत्मजयी -- पृ. ... 3

नचिकेता के व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि वह मानव अस्तित्व की पीड़ा और विवशता को समझता है और उसे झेलने के एक मात्र उपाय "साहस" को भली भाँति पहचानता है --

" जब जब समर्थ विनाश
काल की विदेह अतिशयता को
कोई ललकारे
सीमा संदर्भहीन साहस को इंगित दो --- ।"[1]।

"आत्मजयी" का नचिकेता न केवल अपनी उद्विग्नता का निराकरण करने में समर्थ होता है, अपितु अपने पिता वाजश्रवा के साथ भी अंततः संगति बैठा लेता है। नचिकेता किसी प्रतीक्षा के लिए अभिशप्त नहीं, क्योंकि वह अपने में डूबकर अपने लिए एक सार्थक जीवन तलाश कर लेने में समर्थ है।

नचिकेता को हम क्रोध अथवा विद्रोह की मनोवृत्तियों से परिचालित नहीं पाते, बल्कि इसकी जगह साहस जैसे नितांत मानवीय गुणों का प्रतीक मान सकते हैं --

" वे जो लौट गयी केवल छूकर मुझे --
जीवती हुई पराई इच्छाएँ
जिनकी व्याकुल माँगों से
मैं विचलित नहीं, वंचित होता रहा
बात-बात बचा गयी मुझे
उन तमाम परिस्थितियों में बँट जाने से
जिनके आतंक, आग्रहों और आकांक्षाओं से झुक झुक कर गुजर कर
मैं घटा नहीं, वंचित होता रहा ।"[2]

---

1. कुँवरनारायण, आत्मजयी, पृष्ठ .. 28
2. - वही - पृष्ठ .. 33

नचिकेता के लिए आत्महत्या को अपनाना एक चुनौती भरा साहसपूर्ण कार्य है ।

2.2. <u>स्वप्न व्यक्ति की क्रियात्मक सृजनशीलता के अंश</u> -

एडलर की मान्यता है कि " स्वप्न व्यक्ति की सम्पूर्ण मानसिक क्रियाओं का सम्पादन करते हैं । "[1] नचिकेता के स्वप्न उसकी क्रियात्मक सृजनशीलता के अंश है उसके आत्म प्रतिष्ठापन की इच्छा को सन्तुष्ट करते हैं " ईश्वर क्या है " नचिकेता के मन में स्वयं भी अपने प्रतिपादन को लेकर दुविधा है, जिसका स्पष्टीकरण वह देना चाहता है । नचिकेता चाहता है कि उसकी प्रार्थनाएं दुहराई न जाएं अपितु नूतन विसर्जित कर दी जाएं --

" कीर्ति - स्तम्भ वह अदृष्ट आभा
सूर्य से सूर्य तक
प्राण से प्राण तक । "[2]

नचिकेता को अपनी उपलब्धियों के सन्दर्भ में प्रीति नहीं है उसमें एक नया पथ बनाने की आकांक्षा है उसका पिता वाजश्रवा क्रुद्ध होकर उसे यम के पास भेज देता है भूखा-प्यासा नचिकेता तीन दिन तक यम के द्वार पर उसकी प्रतीक्षा करता है लौटने पर यम अतिथि के प्रति इस अप्रत्याशित उपेक्षा के प्रतिकार स्वरूप तीन वरदान देता है - वाजश्रवा का नचिकेता के प्रति क्रोध शांत हो, स्वर्ग की नाचिकेताग्नि, मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन ।

कुंवरनारायण ने पहले और तीसरे वरदान को ही केन्द्र बनाकर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों के यथार्थ को उद्घाटित है । नचिकेता की समस्या मुख्यतः एक विचारशील व्यक्ति की समस्या है । नचिकेता मात्र सुखों को अस्वीकार करता है ।

---

1. Ansbacher H.L. Ansbacher R.R. The Individual psychology of Alfred Adler - P. 358

2. कुंवरनारायण, आत्मजयी - पृ. ..2

तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति-भर उसके लिए पर्याप्त नहीं । उसके अंदर एक बृहत्तर जिज्ञासा है जिसके लिए केवल सुखी जीना काफी नहीं, सार्थक जीना जरूरी है, जो उसे साधारण प्राणी से विशिष्ट बनाकर उन मनुष्यों की कोटि में रखती है जिन्होंने सत्य की खोज में अपने हित को गौण माना, भौतिक जीवन को स्वप्न माना, जिन्होंने ऐन्द्रिय सुखों के आधार पर ही जीवन से समझौता नहीं किया । बल्कि चरम लक्ष्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया, जो उन्हें पाने योग्य लगा नचिकेता की चिंता भी अमर जीवन की चिंता है । अमर जीवन से तात्पर्य उन अमर जीवन मूल्यों से है जो व्यक्ति का अतिक्रमण करके सार्वकालिक और सार्वजनीन बन जाते है -

"तेरी आँखों में एक अगम जीवन की ललक है
वह जिज्ञासु भाव इन्द्रियों से परे
सदियों अपलक है ।"[1]

नचिकेता जीवन की निरर्थकता, पराजय या संसार की निस्सारता के से अवगत है "मृत्यु" के सूक्ष्म अनुभव से नचिकेता ऐसे शाश्वतशाली मूल्य को पा लेने में समर्थ होता है जो मृत्यु की निष्क्रियता से मनुष्य को उबारकर उसके होने को कोई सार्थक समृद्ध और महत्वपूर्ण पहचान दे सके । दूसरे शब्दों में, मृत्यु भय से मुक्त कर मनुष्य में नयी दिलचस्पी उत्पन्न कर सके । नचिकेता के चरित्र की केंद्रीयता में दार्शनिक धारणा की प्रमुखता से मानवीय अनुभवों की गहराई तथा मनुष्य के समकालीन संकटों से संलग्न चिंता को प्रासंगिक और विश्वसनीय बनाया गया है । नचिकेता की

---

1. कुँवर नारायण - आत्मजयी. पृ. - 16.

मुख्य चिंता जीवन को सार्थकता देने वाले सत्य की खोज है और यह खोज एक व्यापक या विराट मानवीय पीड़ा के तहत जन्म लेती है । जिसकी गति जीवन के निजी और साधारण पहलु की संतुष्टि के साक्षात्कार की विकलता प्रस्तुत करती है जहाँ व्यक्ति मृत्यु में,, नितांत अकेला, नितांत विवश और नितांत असांत्वनीय हो जाता है -

" मैं जिन परिस्थितियों में जिंदा हूँ
उन्हें समझना चाहता हूँ
वे उतनी ही नहीं
जितनी संसार और स्वर्ग की कल्पना से बनती है।
क्योंकि व्यक्ति मरता है
और अपनी मृत्यु में वह बिल्कुल अकेला है
विवश
असांत्वनीय । [1]
तथा
डूबते हुए कुम्हलाए सूरज की तरह
इसमें एक अनुभव है पर खुशी नहीं
यह स्मारक
अपनी वृहत्तर आयु में मानो
एक नहीं कई एक मौतों का ठोस दर्द सह रहे" ।[2]

कवि की मुख्य चिंता एवं अधिकेता की मानवीय उपस्थिति, ठोस तथा जीवन प्रतिरूप को उद्घाटित होती है तथा कुंवरनारायण के कविता संसार को कलात्मक समृद्ध और प्रभाव पूर्ण बनाती है ।

---

1. कुंवरनारायण, आत्मजयी - पृ. 11   2. - वही- पृ. - 52

कुंवरनारायण की यह कविता उन्हीं की स्थापना के अनुसार "मूलतः जीवन की सृजनात्मक संभावनाओं में आस्था के पुनर्लाभ की कहानी है ।"[1]

इस कहानी को कवि ने अत्यंत सफलता से कविता का संस्कार दिया है और बराबर प्रयत्नशील रहा है जन्म, मृत्यु, आत्मा मोक्ष जैसे दार्शनिक तथा ठोस - वैचारिक परिदृश्य को आधुनिक संदर्भों में रूपांतरित करने तथा नचिकेता के चरित्र को समकालीन मनुष्य के समतुल्य प्रस्तुत करके सम्पूर्ण कविता को प्रासंगिक बनाने में । कुंवरनारायण ने औपनिषदिक मिथक द्वारा आधुनिक उपभ्रांत, असहाय, मनुष्य के संकट को प्रकट करना चाहा है । आत्मवादी दृष्टिकोण, "आत्मबोध" "अमर-जीवन" आदि पदावलियाँ अनीश्वर आत्मा दिव्य आत्मज्ञान, शाश्वत जीवन बोध आदि का अनुमान नहीं करना चाहिए इस विस्तृत भूमिका में निम्नलिखित कुछ प्रमुख बातें ही मिलती है - सार्थक जीवन, अमर जीवन मूल्य, आत्मबोध, मृत्यु दर्शन से जीवन के प्रति आस्था का विकास ।

सार्थक जीवन से कवि का अभिप्राय दर्शन जगत से नहीं, पर इस अति बौद्धिक बौद्धिक वैज्ञानिक भौतिकता- प्रधान युग में जहाँ मूल्यहीनता, विघटन, घोर स्वार्थ परायणता ने जीवन को एवं व्यक्ति को आक्रान्त कर रखा है, जिससे उबर कर स्वस्थ भावभूमि पर आने के उसके प्रयत्न बारंबार विफल हो रहे हैं, उसके पाश से मुक्त हो कुछ स्थायी एवं कल्याणकारी जीवन की प्राप्ती से ही है । यही वर्तमान असार जीवन को संसार की ओर मोड़ देता है ।

अमर जीवन मूल्यों से कवि का आशय इतना ही है कि आज के युग के मानव के लिए परम्परागत जीवन मूल्य अनुपयोगी एवं निरर्थक हो गये है अतः उनके स्थान

---

1. कुंवरनारायण - आत्मजयी - पृ. - 8.

पर वह युगानुकूल नये मूल्यों को प्राप्त करने या प्राचीन मूल्यों को युगानुकूल नये रूप देने की चेष्टा कर रहा है ।

यहाँ आत्मबोध का अर्थ आस्था का पुनर्लाभ है । आज के किंकर्तव्य विमूढ़ , विभ्रमित व्यक्ति में यह विश्वास बन गया है कि वह असार जीवन को संसार में बदल सकता है । वर्तमान की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण कर सकता है । तथा अणु युग के संभावित विध्वंस को जीवन मुक्त सृजन से कर सकता है, घोर निराशा को आशा का रूप दे सकता है, असुरक्षा को स्थायी सुरक्षा में बदल सकता है । आज के दिग्भ्रमित विश्व को उचित दिशा निर्देश दे सकता है ।

मृत्यु चिंतन से वैराग्य की प्राप्ती हो ऐसी बात नहीं मृत्यु चिंतन से मरणधर्मा जीवन पर विजय पाना या मृत्यु द्वारा नष्ट न किए जा सकने वाले जीवन तत्व को प्राप्त कर लेना, आशावादी दृष्टिकोण में, व्यक्ति में विकसित हो सकता है, उस समय उसे जीवन की उपलब्धि होती है वह वैराग्य से आवृत नहीं होता वरन् स्वस्थ, स्थायी, आत्मविश्वास से युक्त आस्थायुक्त व्यापक जीवन-मूल्यों से सम्पन्न होता है । मृत्यु सम्बन्धी चिंतन व्यक्ति को इतना आक्रान्त कर सकता है कि जीवन का वही एक मात्र यथार्थ बन जाये -

"यदि यथार्थ है मृत्यु भी
तो मृत्यु ही यथार्थ हो जा सकती है
इस तरह कि वह जीवन पर छा जाये
एक संभावना से बढ़कर आवश्यकता बन जाये
और हम उसे रोज के व्यवहार में बोलें, बिछायें फैलायें ।[1]

---

1. कुंवरनारायण - आत्मजयी - पृ. 15.

मृत्यु के सम्बन्ध में यह दृष्टि व्यक्ति को चरम निराशा की ओर ले जा सकती है। जीवन के अंतिम रहस्य को सहसा पा जाने के गहरे अंधेरे जैसे अबूझी मृत्यु उसे जीवन को फिर से जीने का नया बोध देती है। उसे अनुभव होता है कि जीवन शरीर से सम्बन्धित तो है किन्तु शरीर की सापेक्ष नहीं है -

"व्यक्ति दास ही नहीं देह का
स्वामी भी है
अनुशासित ही नहीं
मुक्त अनुशासक भी है इच्छाओं का
लक्ष्यहीन ऐन्द्रिय विचरण तो
साधन का उपयोग नहीं उपभोग मात्र है"।[1]

अतः जिस पल नचिकेता ने शरीर की मांगों को स्थापित करके अदृश्य ज्ञान का वरण किया उसी क्षण उसको गहरी शांति आ गयी। वह निराशा से आशा की ओर, जीवन की निरर्थकता से उसकी सार्थकता की ओर लौटने लगा -

"तुमको अपनी
घोरतम निराशा से बल लेना होगा
मृत्यु संस्कारों से अपना जीवन खाली कर
उस खालीपन को नया मर्म देना होगा
केवल शरीर के लिए नहीं
तुमको शरीर के बावजूद जीना होगा"।[2]

---

1. कुँवरनारायण : आत्मजयी : पृ. - 71.
2. - वही - पृ. - 73

नचिकेता की दृष्टि में ऐन्द्रिय तृप्ति वास्तविक तृप्ति नहीं है । उसे लगता है है कि संयोग के प्रत्येक रोमांच से वह घटित होता है पर कृतार्थ नहीं । ऐन्द्रिय तृप्ति एक बनावट है जो व्यक्ति को बांधती है, उसकी निस्सीम उड़ान को सीमित करती है -

"यौवन से संतुष्ट न होती
जीवन की परिभाषाएँ
पकड़ नहीं वह स्पर्श मात्र है
एक अनश्वर जिसके साथ-साथ चलती है
गहरी आत्मनिराशाएँ
जीवन पूर्ण कृतार्थ न होता
जब ऐन्द्रिय आभारों से ।"[1]

इसलिए नचिकेता वह संसार नहीं चाहता, अथवा उज्ज्वल भविष्य नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं चाहता । वह चाहता है एक दृष्टि जिससे जीवन अंधेरा होने से बचे उसे मर्त्य नहीं अमर्त्य का बोध चाहिए । नचिकेता अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण शुरू से ही अस्तित्व और मृत्यु की भयकता सम्बन्ध में व्याकुल जिज्ञासु है । नचिकेता मृत्यु की भयकता को अनुभव करता है और मृत्यु के साक्षात्कार के क्षण में भय से मुक्त होना चाहता है -

"यदि पीना ही हो ज़हर
उसे दो तरह से पिया जा सकता है
डरते-डरते
मरने से पहले ही मरकर
या उसी चरम भय से कोई सुधा बन पा
जीवन से भी ऊपर उठकर ।"[2]

---

1. कुँवरनारायण - आत्मजयी - पृ. 67. ।2।. - वही - पृ. - 73.

नचिकेता काव्य के अंत में "आत्मजयी" बनकर उपस्थित होता है । वह मृत्यु का वास्तविक अनुभव ही नहीं करता, मृत्यु से मुक्ति भी पा लेता है । और अपने अस्तित्व का प्रमाण देता है । वह निराशा और संत्रास के बीच भी अपनी अस्मिता का आग्रह करता है । अस्मिता का यही आग्रह नयी संवेदना से सम्पन्नता की ओर ले जाता है ।

"आत्मजयी" का नचिकेता कवि के पौराणिक व्यक्तित्व के आधुनिक चिंतन का प्रतीक है । इस विस्तृत काव्य में आधुनिक संदर्भों में उसके जीवन प्रश्नों को एक चिरंतन जीवन धारा के प्रश्नों से जोड़ने तथा उनका उत्तर पाने की शाश्वत अकुलाहट है । "आत्मजयी" मूलतः आधुनिक चेतना का काव्य है । इसमें कथा स्वल्प है और इस स्वल्प कथा में भी कोई घटनात्मक सूत्र नहीं, चिंतन है । कुंवरनारायण की आधुनिक चिंतना इसके एक-एक खण्ड में आधुनिक जीवन के कुछ संदर्भों को लेकर उन पर व्यक्त किए विचारों के अलग-अलग धरातल है । पूरे काव्य में कवि नये चिंतन से उद्दीप्त होकर भी जीवन को एक लम्बी परम्परा में देखना चाहता है । कवि के ही शब्दों में - " आत्मजयी में ली गई समस्या नई नहीं', उतनी ही पुरानी है, या फिर उतनी ही नई जितना जीवन और मृत्यु सम्बन्धी मनुष्य का अनुभव ।"[1] जिसकी परिणति व्यक्ति से तक प्रतिफलित है । आत्मजयी में नचिकेता को अपनी भिन्नता का भी बोध है -

" भीड़ रहित गुफा को फूल दो
तोरण मण्डप-चिह्न मन्दिर को दीपक दो ।"[2]

---

1. कुंवरनारायण - आत्मजयी - पृ. - 10 ।2. - वही - पृ. - 2

आशय स्पष्ट है - परम्परागत सामूहिक अभ्यर्थना की पद्धतियाँ नचिकेता को सर्वथा अग्राह्य है अपनी इस नयी साधना में वह स्वयं को बिलकुल अकेला भी नहीं पाता, न पाना चाहता है तभी तो आरंभ से अंत तक अपने और अपने गंतव्य के बीच विद्यमान किसी अनाम सत्ता को सम्बोधित करते हुए वह निरन्तर निवेदन करता है -

"क्षमा कर देना
मेरे उपहार - मेरे नैवेद्य-
असुविधाओं को छूते हुए,
अर्पित होते रहे जिस ईश्वर को
वह यदि अस्पष्ट भी हो
तो यह ये प्रार्थनाएँ सच्ची हैं ..... इन्हें
अपनी पवित्रताओं से ठुकराना मत,
चुपचाप विसर्जित हो जाने देना
समय पर ....सूर्य पर.
मुझ के अनुपयुक्त एक किंचित प्रयास को
फिर जूठा मत करना अपनी श्रद्धाओं से ,
इसके विघ्नों को बचाना अपने श्राप से
इसकी भिक्षुक विनय को छोटा मत करना
अपनी भिक्षा की दाय से
उपेक्षित छोड़ देना ।"[1]

---

1. कुंवरनारायण - आत्मजयी - पृ. - 2.

नचिकेता अपने मंतव्य को और उस पथ के साथी -सहचर के रूप स्वयं को मानो एकात्म करता हुआ कहता है -

"अवज्ञो -

असंदिग्ध विवरण को परीक्षा दो" ।[1]

नचिकेता अपने मंतव्य को बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत कर देता है उसका दृढ़ विश्वास है कि -

"पिछली पूजाओं के ये फूटे मंगल -घट
किसी धर्म-ग्रन्थ के
पृष्ठ- प्रकरण -शीर्षक -
सब अलग अलग ।
वक्ता के चढ़ावे के लालच में
बाँच रहे शास्त्र-वचन
ऊँघ रहे श्रोतागण .... ।[2]

"समर्थ जिज्ञासा" के साथ जोड़कर रखने के प्रयास के मूल में नचिकेता की यही दृष्टि निहित है । वह परम्परावादी न बनकर एक आधुनिक युवक के रूप में उपस्थित है -

"मुझे अभिशापों को दूँ मस्तक
न दूँ माथ ......

इससे अच्छा

चुपचाप अर्पित हो जा सकूँ

विभक्त प्रतीक्षाओं को ..... ।"[3]

---

1. कुँवरनारायण - आत्मजयी - पृ. 2 .

2. -वही - " -पृ. 3 . 3. वही - पृ. - 3

नचिकेता परम्परावादी ईश्वर के स्थान पर एक "अदृष्ट" ईश्वर की खोज को काम्य बताता है उसे विश्वास है कि नये बनाए ढांचे तोड़ने का एक कारण यह है कि वे निर्जीव हो चुके है और अब सृजनात्मकता की नई राहों में वैयक्तिकता मर्यादा स्वाभिमान तथा प्रतीक्षा के मूल्य कहीं अधिक प्रासंगिक है ।

नचिकेता एक जिज्ञासु व्यक्ति है आत्मा की स्वायत्तता का क्रम प्रथम अंक "पूर्वाभास" से प्रारंभ होता है, जिसमें एक प्रकार का उद्बोधन है, जो नचिकेता का आत्म कथन उतना नहीं जितना स्वयं करने का प्रस्ताव बिंदु प्रतीत होता है । "कठोपनिषद्" के मूलपाठ मे प्रसिद्ध मंगलाचरण है,

> "ओउम सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु
> सहवीर्यं करवाव है
> तेजस्वी नावधीतमस्तु । मा विद्विषाव है ।
> ॐ शान्तिः । शान्तिः ।। शान्तिः ।।। "[1]

यह"आत्मजयी" के पूर्वाभास की प्रेरणा प्रतीत होती है । अंतर एक है, कठोपनिषद् के मंगलाचरण में अध्यापक यम और शिष्य नचिकेता दोनों मिलकर भगवान से प्रार्थना करते है । तीनों प्रकार के तापों की शान्ति हो । वह परमात्मा हम दोनों की साथ साथ रक्षा करे । हम दोनों का भोजनादि के द्वारा साथ साथ पालन करे । हम दोनों साथ-साथ विद्या सम्बन्धी बल अथवा पराक्रम प्राप्त करते रहे । हम दोनों का पढ़ा हुआ पाठ तेजस्वी हो । हम दोनों परस्पर द्वेष न करे हमारे तीनों प्रकार के तापों की शान्ति हो ।"[2] "आत्मजयी" के "पूर्वाभास"

---

1. सुरेन्द्र देव शास्त्री , कठोपनिषद - पृ. 1 .

में तपस्या, इष्ट, मर्यादा, साहस, क्षमा, आदि का आवाहन है । दो भिन्न युगों और संस्कृतियों के भिन्न लक्ष्यों, उद्देश्यों, मंतव्यों का इससे परिचय मिलता है ।

कवि की कामना है कि उसे "सधिये तपस्याओं में भी सकने की क्षमता" मिले और "अमरत्व" रूपी "वह इष्ट" प्राप्त हो, जिसे सम्भावित करके मानवता सम्भावित हो ।"

आत्मजयी साधना का विकास प्रकृति की निकटता में अधिक संभव है । इसी-लिए मुकुट- अलंकार आदि राज प्रतीकों के स्थान पर साधक को धरित्री वह भूषा "भूमि" पर्याप्त प्रतीत होती है, जिसके पग "सागर प्रक्षालित" हों , उत्तरीय "शुभ्र-घन" हो, "जटा-जूट- वन प्रांतर" और माथा "उदित सूरज" सदृश्य हो । भौतिक सुख-सुविधाओं की उपेक्षा द्वारा ही आत्मचेतना का विकास होगा , यह विचार यहाँ स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है । जो इसका साधक आत्म-वादी दृष्टिकोण को निर्मित करने में सहायक हो सकता है, वह है - निष्कलंक मर्यादाओं के अमिट स्पर्श का स्मरण । इसमें संकेत यह है कि यह मर्यादा के प्रति आकर्षण का अर्थ प्रायः मर्यादा को अंतर्निहित कर देने जैसा होता है -

विराट प्रकृति और निष्कलंक मर्यादा को संबल बनाकर साधक सृजन के उस पथ पर बढ़ता है जहाँ -

"बात एक बनने का साहस-सा करती" ।[1]

कवि को यह भी ज्ञात है कि यह "बात" और "साहस" अतीत की बात और साहस से बहुत कुछ भिन्न है इसके लिए, वह मानो उपनिषदकारों से क्षमा प्रार्थना भी

---

1. कुँवरनारायण - आत्मजयी - पृ. - ।

करना चाहता है -

" तुम्हारे शब्दों में यदि न कह सकूं अपनी बात
विधि विहित प्रार्थना
यदि तुम तक न पहुंचे तो
क्षमा कर देना " ।[1]

"आत्मजयी" का कवि "उपनिषद" आदि के शब्दों में अपनी बात नहीं कह सकता उसका निवेदन प्राचीन विधि-विधान से विहीन भी होगा । एक और भी मौलिक अंतर आज के कवि तथा वैदिक साधक में है । वैदिक ऋषि को जहाँ यह भान रहता था कि उसके यज्ञ का देवता कौन है अथवा उसका फल किसे प्राप्त होता है, वहाँ उपनिषदीय आत्मवाद को अपना आदर्श मानने वाले "आत्मजयी" का कवि "पूर्वाभास" खंड में उपनिषदों की उसी दार्शनिक जिज्ञासा को प्रतिध्वनित करता है - कस्मै देवाय हविषा विधेम" अर्थात किस देवता को यज्ञ का अर्घ्य समर्पित हो अपनी भिन्नता को कवि ने हविष्य या समिधा के स्थान पर "उपहार" अथवा "नैवेद्य" कहकर स्पष्ट करना चाहता है । प्रस्तुत सन्दर्भ यदि ईश्वर प्रार्थना का न होता तो कदाचित शब्दावली कुछ दूसरी ही होती । कवि को एक और दुविधा का साक्षात्कार होता है - वह बात कहने का साहस अवश्य न जुटा पाता है पर उसका लक्ष्य अपनी प्रार्थना को "सच्ची" बताने के लिए आग्रहशील है -

---

1. कुंवरनारायण-- आत्मजयी - पृ. - 1.

"मेरे उपहार - मेरे नैवेद्य

समृद्धियों को छूते हुए

अर्पित होते रहे जिस ईश्वर को

वह यदि अस्पष्ट भी हो

तो ये प्रार्थनाएँ सच्ची है।"[1]

2.3. स्वप्नों में धर्म या रूढ़ियों पर विद्रोह :- स्वप्न का उद्देश्य वस्तुतः व्यक्ति की स्थिति का निर्णय करना है यही कारण है कि वह स्वयं अपने व्यवहार को मजबूत बनाता है एडलर के शब्दों में, "स्वप्न" उद्देश्य के प्रति प्रेरित करते है साथ ही संवेदनात्मकचित्त को उत्पन्न करते है।"[2] वाजश्रवा के क्रोध भरे कथन में निहित भाववस्तु महत्वपूर्ण है कि यदि नचिकेता वाजश्रवा के समस्त जीवनक्रम और आयोजन को मृत्यु मूलक मानता है - यह कह कर कि -

"मेरी आत्मा को बल दो" कहते हो

तुम्हारा हाथ ऊपर उठता है - एक वध और।"[3]

तो इसका उत्तर वाजश्रवा स्पष्ट रूप में देता है : मैं तुम्हे भी मृत्यु को देता हूँ। यह वाक्य आगामी स्थितियों का उद्घाटन नहीं करता, अपितु एक विस्तृत अन्तर्द्वन्द्व को सम्मुख लाता है। यह मानो वाजश्रवा ने वह वाक्य वस्तुतः कहा ही न हो, मानों वह स्वयं नचिकेता के ही अति संवेदनशील चित्त की प्रतिध्वनि हो। मूल कथा में संभवतः नाटकीयता को गौण बनाकर, उसमें चिंतन के तत्वों का समावेश किया है।

---

1. कुँवरनारायण : आत्मजयी - पृ. 8

2 Ansbacher H. L. Ansbacher R.R. The Individual Psychology of Alfred Adler - p. 361

3. कुँवरनारायण : आत्मजयी : पृ. - 7

इसीलिए "वाजश्रवा" खण्ड में ये पंक्तियाँ आती हैं -

" बाहर नहीं है संघर्ष वह

द्वन्द्व, प्रतिद्वन्द्व

घात, प्रतिघात...

कहीं अंदर है। "[1]

इस में यह संकेत है वाजश्रवा ने सचमुच वह दुर्वाक्य नहीं कहा था, केवल नचिकेता ने पिता से अपने तीव्र मतभेद की अनिवार्यता में इसे सुनकर, मानो अपने लिए नियति सदृश्य "वरण" कर लिया है। कवि की यह युक्ति इन पंक्तियों में भी प्रकट हुई है -

"यह समस्त विश्व रूप जो कभी कुरूप कभी सुंदर है,

बाह्य नहीं

मानव का इच्छा-पुरुष अंदर है। "[2]

नचिकेता, जो कृति के आरंभ में परम आत्मविश्वास और विद्रोही मुद्रा से युक्त अंकित हुआ था, इन तीन शब्दों - " मृत्यवे त्वा ददामि" - में निहित कटु सत्य का साक्षात्कार करते ही उद्विग्न हो उठता है यह उसके मन में घटित होती जा रही इस ग्रंथि का पूर्व परिचय देता है कि पिता की आत्मघाती नीतियों का सम्पूर्ण विरोध करने के लिए नचिकेता के सम्मुख अंततः एक ही मार्ग बचता है और वह है- स्वयं आत्मघात कर लेना। नचिकेता का निर्वासन क्रमशः बढ़ता जाता है और अंत तक आते-आते जीवन की सबसे बड़ी समस्या का सरलीकरण होता है "मुक्तिबोध" वस्तुतः एक निरन्तर गतिशील, आवर्तन - विवर्तन युक्त प्रक्रिया है। जिस प्रकार मृत्यु का, उसी प्रकार "मुक्ति" का भी बोध व्यक्ति को बार-बार करना पड़ता है। इसीलिए नचिकेता कहता है -

---

1. कुंवरनारायण, आत्मजयी, पृष्ठ -- 14   2. -वही- पृष्ठ .. 14

"क्योंकि इसके पूर्व निश्चित परिणामों में
घटित होकर भी मरा नहीं
बार-बार अकुण्ठ लौट आया हूं
क्योंकि इन समाधानों के बीच
चौंक चौंक पूछता रहा हूं
जीवन क्या है ?
मृत्यु क्यों ?
ईश्वर कहां ?" [1]

नचिकेता के लिए अस्तित्व की चुनौती प्रतिफल "मृत्यु" और "मुक्ति" के सीमाओं तक विस्तृत रहती है नचिकेता इन्हें स्वीकार करता है -

"मेधा
मैत्री
ममत्व
महत्वाकांक्षाएं ...
क्योंकि इनके अंत तक आकर भी
पूर्ण नहीं हुआ
क्योंकि इनके पूर्व निश्चित परिणामों में
घटित होकर भी मरा नहीं
बार-बार अक्षुण्ण लौट आया हूं ।" [2]

---

1. कुंवरनारायण , आत्मजयी - पृ. -- 100
2. -वही- पृ. -- 140

2.4 स्वप्न भविष्य दर्शन के बोधक - स्वप्न सभी विचारों के समान भविष्य की प्राप्ति के लिए व्यावहारिक प्रणाली को प्रस्तुत करते हैं इस सन्दर्भ में का यह मत सार्थक प्रतीत होता है कि " स्वप्न का कार्य भविष्य के व्यवहार को योजनाबद्ध करता है । "[1] अधिकेता के स्वप्न भविष्य बोधक है । अधिकेता की व्यथित मात्र की ये कामनाएँ --

" मुझे हाथ चाहिए - वत्सल
नेत्र-ममता से छलछल
आत्मीयता - जिसकी छाँह में पल सकूँ ।
सुरक्षा - जिसकी बाँह में पल सकूँ ।
अमरत्व - जो इन व्यर्थ यात्राओं का
साथी हो ।

इस रचना के लिए उत्तरदायी एक ईश्वर हो !"[2]

जहाँ अधिकेता के अतीत में थीं - पिता वाजश्रवा से सम्बद्ध कड़ - स्मृतियाँ, वहाँ उसके भविष्य में है --

"मेरा हाथ पकड़े एक बालक साथ
मेरी उंगलियों में छिपी नन्हे स्नेह का संस्पर्श...

अब घर चलो
मेरे लिए जिम्मेदार उसका प्यार,
उसके नेत्रों की सरल जिज्ञासा,
जहाँ मैं पुनः अपने भविष्य में भी जीता हूँ
उपरिक्त उपलब्ध पूर्ण आवर्त ।"[3]

---

1. Shulman B.H. Contribution to Individual psychology p-63
2. कुँवरनारायण आत्मजयी - पृ. ... 54
3. -वही- पृ. ... 57

3. युंग के स्वप्न सिद्धान्त

3.1 स्वप्नों का वर्तमान समस्याओं से सीधा सम्बन्ध – युंग का मत है कि स्वप्नों के अंदर हमारी समस्याओं का हल होता है । हम जो कुछ मानते हैं उससे अधिक प्रदान करते हैं । स्वप्न न्यूरोसिस के कारणों में अन्तर्दृष्टि ही नहीं देते, उपचार की दिशा भी निर्देशित करते है – वे बतलाते हैं कि उपचार का आरंभ कहाँ से होना चाहिये ।"[1] ~~वे बतलाते हैं कि उपचार कहाँ आरम्भ~~ नचिकेता के स्वप्न वर्तमान की समस्याओं से सीधे सम्बन्धित है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति अतीत कालीन समस्याओं एवं भविष्य की जीवन प्रणाली से सम्बद्ध है । अतीत और भविष्य के बीच स्थित है – वह भयावह वर्तमान, जिसमें आत्महत्या के प्रयत्न की तात्कालिक परिणति "मृत्यु" नचिकेता की प्रतीक्षा कर रही है –

> "यह किसी गुफा का मुँह
> बजती सी सनसनाहट, अंदर आओ –
> अंदर आओ ।"[2]

नचिकेता की अनास्था, नास्तिकता, अकेलेपन और उदासी के मूल में पिता से उसका मतभेद है, जिसकी परिणति आगे चलकर उसे अपना एक नया पथ बनाने की प्रेरणा देती है । इस ~~असंभाव्य~~ असंभावना एवं और वर्तमान अनास्था-उदासी के मध्य में है अन्तर्द्वन्द्व । वाजश्रवा सर्वमेध करते हैं जिसमें सर्वस्व दान देना होता है । वह अत्यंत बूढ़ी एवं असमर्थ गायों को दान देना प्रारंभ करता है । नचिकेता यह सोचकर कि इन बूढ़ी गौओं को दान देने से पिताजी को पुण्य के बदले अपुण्य होगा, पिता को इस अपुण्य से बचाने के लिए तीन बार पूछने पर क्रोधित पिता कहता है मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ --

"मृत्यवे त्वा ददामि ।"[3]

---

1. C.G. Jung. Modern Man in Search of Soul p-6
2. कुंवरनारायण, आत्मजयी- पृ. ... 58 |3| -वही- पृ. 14

इन तीन शब्दों में निहित कटु सत्य का साक्षात्कार करते ही वह, पूर्णतः हतप्रभ, दुविधा ग्रस्त हो जाता है वह पुरानी पीढ़ी के विश्वासों को "विमूढ़" मानता है उन्हें " हठ" और ""नादानी" की संज्ञा देता है । फिर भी, वह अपने आप को स इस भावना से मुक्त नहीं कर पाता कि वह एक अशुभ स्थिति है --

"मैं अपने हठान्त सत्यों से दण्डित हूं
उनके विमूढ़ विश्वासों से हारा हूं ।
उनकी नादानी से
कुछ ऐसे अपराधी साबित हूं
मानो अपना ही हत्यारा हूं ।" [1]

नचिकेता का यह कथन उसके मन में घटित होती जा रही इस ग्रंथि का पूर्व परिचय देता है कि पिता की आत्मघाती नीतियों का सम्पूर्ण विरोध करने के लिए नचिकेता के सम्मुख अंततः एक ही मार्ग शेष बचता है और वह है - स्वयं आत्मघात कर लेना ।

" मैं पुन निर्वासित हूं
आजीवन वनवासी
राजपाट परित्यागी ।" [2]

नचिकेता का यह क्रमिक निष्कासन ही उसके भावी कृत्य का एक सोपान बनता है जिससे विमुग्ध नचिकेता स्वयं एक अन्तर्द्वन्द्व में फंस जाता है " नचिकेता का विषाद" में अन्तर्मन को निरन्तर बढ़ता दिखाया गया है जिसमें नचिकेता स्वयं को समुद्र में

- -

1. कुंवरनारायण , आत्मजयी , पृ. --- 16
2. -वही- पृ. --- 17

फेंके गए एक शिशु की भाँति पाता है। वह प्रलय के झकोरों से तैरते-तैरते युवक बन जाता है और डूबने से बचने का प्रयत्न करता है। "आत्म हत्या का प्रयत्न" इस खण्ड में नचिकेता स्वयं को जिस स्थिति में पाता है, उसका संकेत आरंभिक पंक्तियाँ देती है --

"जिधर भागे
उधर आगे पहले ही से एक कठिन अनिश्चय,
पीछे आ रही खड़ी होती एक नयी दीवार
जो पहले न थी
एक डरावनी छाया
और खिसकते पाँवों को
धमकाकर आगे ढकेलते
घातक निर्मम इशारे।"[1]

"आत्म" की हत्या कर नचिकेता आत्म श्रेष्ठता की भावना से मुक्त होकर एक नवीन "आत्म" को उपलब्ध होता है। उसे ज्ञात होता है।

" उस व्यथा - भरी आँखों की
टँगी हुई पुतलियों में
नचिकेता की अन्तिम सन्ध्या की उदासी थी।
मानो उस दर्द को
जीते नचिकेता ने एक बार
जीते जी वाजश्रवा ने बार-बार सहा हो "।[2]

---

1. कुँवरनारायण, आत्मजयी पृ. ... 40
2. -वही- पृ. ... 84

नचिकेता आत्म श्रेष्ठता की भावना से मुक्त होकर पुन चेतन होकर "कोलाहल" "भीड़" "नगाड़े" बजाने के उपक्रम आदि से अवगत होता है। जिसने स्वयं को "बहिष्कृत" माना था, जो क्या हूँ ? की पीड़ा से दग्ध था, वही नचिकेता अब सर्वथा " जीवित जाग्रत है --

"स्वस्थ स्वप्न–कोई अव्यय भविष्य "
मैं जाग्रत हूँ --
मैं भी जाग्रत हूँ -- ।" [1]

नचिकेता को स्वप्न में अपनी समस्याओं का समाधान स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। नचिकेता को " सृष्टि" " सौन्दर्य" शान्ति और "मुक्ति" बोध होता है सृष्टि बोध यह है कि --

"हर व्यक्तित्व
अपनी सृष्टि के आरंभ में
अनुभूत अकेला है।
उसे सम्पूर्ण देना है। " [2]

इस अपरिमित में
अपरिमित शक्ति की अनुभूति।
अबोध प्यार का आभास। " [3]

"आत्मजयी" के अन्तिम खण्ड "मुक्तिबोध" में नचिकेता गंभीर विवेक का परिचय देता है।

---

1. कुँवरनारायण, आत्मजयी, पृ. ... 88
2. -वही- " पृ. ... 95
3. -वही- " पृ. ... 98

यह जीवन से सम्बद्ध प्रश्नों का कोई अन्य बताया समाधान नहीं देता जाता
अपने अनन्त विश्वासों में जीवन अनेक संभावनाओं से युक्त रहता है जैसे नचिकेता
के लिए --

"यह भी संभव है
कि अपने और दूसरों के बीच
अनिवार्य अंतर को दूर तक सोचूँ
--- यहाँ तक कि सारा संसार
मेरी दृष्टि में
सिकुड़ कर तिल बराबर रह जाए,
और उसे जब चाहूँ मूँद कर
अँधेरे में खोल दूँ।"[1]

नचिकेता के मुक्तिबोध का दूसरा विकल्प यह भी है कि --

"एक कलाकार ईश्वर की तरह अनुपस्थित
अपार समय में सिर्फ
केवल आत्मा अमरत्व और आश्चर्य।"[2]

यह सब अपनी जगह यथावत है। "आत्मदान" तक स्वयं को सीमित रखने के पीछे नचिकेता का जो उद्देश्य है उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है क्योंकि चिन्तनशीलता के अतिरिक्त चिरंतनता और समसामयिकता, दोनों ही धरातलों को वह एक साथ स्पर्श करता है।

---

1. कुँवरनारायण, आत्मजयी, पृ. ... 99
2. -वही- पृ. ... 99

3.2 <u>स्वप्न सामूहिक अचेतन मन की भाषा</u> :- युंग स्वप्न का सम्बन्ध सामूहिक अचेतन से जोड़ता है स्वप्न में अतृप्त काम वासना को फ्रायड ने जो महत्व दिया है उसे युंग स्वीकार नहीं करता क्योंकि काम वासना है और मनुष्य की वासना केवल अनुभव की सीमा के अन्तर्गत है । नचिकेता के द्वारा देखे गए स्वप्न को सामूहिक स्वप्न के अन्तर्गत सूचित किया जा सकता है नचिकेता का आग्रह आधुनिक मन का है, किन्तु वही नचिकेता आदिम मनुष्य की जिज्ञासा से भी युक्त है । नचिकेता में इन दोनों आयामों आदिम कौतूहल प्राणी और आधुनिक क्षुब्ध अन्त व्यक्ति की द्वन्द्व मिलता और दृष्टिगत है । वाजश्रवा द्वारा चुनी गयी बीमार और दुर्बल गायें अवश्य एक शोषित मनोवृत्ति की सूचक है पर उसके विरुद्ध नचिकेता का आक्रोश शोषित अथवा वंचित व्यक्ति का आक्रोश नहीं अपितु पुरानी पीढ़ी के असंगत कार्यों के प्रति नई पीढ़ी का आक्रोश है । ऋषि वाजश्रवा, उनके पुत्र नचिकेता तथा यम से सम्बद्ध इस पुराख्यान में यम तथा नचिकेता के पारस्परिक संवाद के आधार को "आत्मजयी" के कवि ने अपनी कथा के रूप में ग्रहण किया है । काव्य का प्रारंभ नचिकेता तथा वाजश्रवा की यज्ञ-समापन विषयक असहमति से होता है । नचिकेता की इस असहमति और वाजश्रवा के क्रोध को नयी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक माना है । वाजश्रवा का आयोजन वैदिक व्यवस्था का वस्तु परक, बर्बर किन्तु आग्रह पूर्ण पुरारूप है और नचिकेता का तद् विषयक संशय प्रयोग धर्मा उपनिषत्कालीन आत्म परक संशय है । भूमिका में कवि कहता है " नचिकेता और वाजश्रवा की असहमति, तथा वाजश्रवा का क्रोध में नचिकेता को मृत्यु को दे देना, न केवल नयी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है बल्कि उन वस्तु परक वैदिक तथा

आत्म परक उपनिषत्कालीन दृष्टि कोणों का भी प्रतीक है जिसका एक रूप हम अपने आज के जीवन में भी पाते हैं। एक ओर तो दिन-दूनी और रात चौगुनी बढ़ती हुई हमारी भौतिक उन्नति, दूसरी ओर आत्मिक स्तर पर वह घोर असंयम जो इस भौतिक प्रगति को अपने ही लिए अभिशाप बनाए ले रहा है। वैदिक कालीन मनुष्य भी आज की ही तरह, बल्कि आज से कहीं अधिक ही भिन्न परिवेश में, प्राकृतिक शक्तियों को यज्ञादि द्वारा अपने अनुकूल रखना चाहता था। उसका दृष्टिकोण मूलतः वस्तुवादी था जिसकी प्रतिक्रिया में ही उपनिषत्कालीन आध्यात्म का विकास हुआ।"[1] इस प्रकार कवि ने वाजश्रवा को वैदिककालीन वस्तु-वादी दृष्टि कोण का और नचिकेता को उपनिषत्कालीन आत्मन का प्रतीक माना है।

यम तथा नचिकेता के संवाद के उपरांत नचिकेता के मिले तीन वरदानों में से कवि ने पहले और तीसरे वरदान को ही अपने विवेचन का आधार बनाया है वाजश्रवा के क्रोध की शांति के वरदान में जीर्ण परम्परा द्वारा स्वस्थ प्रयोग की दृष्टि का आभास है और मृत्यु रहस्योद्घाटन में मृत्यु सम्बन्धी चिंता की व्याख्या। जीवन और मृत्यु का प्रश्न मानव के अस्तित्व से सम्बद्ध होने के कारण आज भी इतना ही महत्वपूर्ण है जितना किसी पुराकाल में रहा। जीवन एक रम्य ललित संवेदन है तथा मृत्यु एक चित दहलाने वाली दारुण अनुभूति। हम इसी अनुभूति को वहन करने में स्वयं को असमर्थ पाकर इसी के भय से अमर जीवन की चिंता में लगे थे। इस भय का पूर्वीभूत प्रतिफलन अथवा मानव के अस्तित्व से सम्बद्ध प्रमुखतम चिंता है - मृत्यु अथवा ~~मानव के अस्तित्व से सम्बद्ध प्रमुखतम~~ उसकी तीव्र अनुभूति। नचिकेता को मिले तीसरे वरदान मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन में मानव-जीवन की इसी सूक्ष्मतम अनुभूति की व्याख्या है।

---

[1] कुँवरनारायण, आत्मजयी -- पृ. ... 5

मृत्यु के स्वरूप तक पहुँचने के लिए जीव को जीवन की यात्रा में प्राप्त विभिन्न अनुभवों का साक्षात्कार करना पड़ता है और इस प्रकार से इस अनुभूति का संधान प्रकारान्तर से अमर अथवा शाश्वत जीवन का संधान बन जाता है । इसी कारण नचिकेता को सृष्टि के प्रत्येक आयोजन में विनाश की गंध आती है । कर्मकाण्ड में उसके पिता के दान का मार्मिक विश्लेषण करता हुआ वह कहता है --

"एक सर्प उस शूर में छिपा है
दोनों को अपने से दूर फेंक दो ।
तुम्हारे सिंहासन के पीछे अभी-अभी
एक तीर की नोक चमकी थी
रनिवास में यह असमय विलाप कैसा ?
मनहूस काली आकृतियाँ कोनों से लगी हुईं ...
यह सब मेरा भ्रम है ? या
इन्हें न देख पाना तुम्हारा ?
रहस्यमय कानाफूसियाँ,
पेचीदा मौन आप ? या गुप्त मंत्रणाएँ
यह दान ? या अज्ञात शत्रुओं से कोई अशुभ समझौता ?। [1]

इन सब आयोजनों से उस पाखण्ड की गंध आती है । उसका मत है कि गलत जीने से सही बातें गलत हो जाती हैं । आरोपित जीवन दर्शन से भरी मुखौटों की अंधेर नगरी में नचिकेता नहीं जी सकता । इसी कारण आत्महत्या के प्रयास में उसका अचेतावस्था

---

1. कुँवरनारायण, "आत्मजयी", पृ. ... 6

में देखा गया स्वप्नमय से साक्षात्कार-उसे संसृति के चरमानुभव का भान कराने में सहायक सिद्ध होता है । चरम अनुभव से पूर्व की आरोहण तथा अनुभवाभास के पश्चात् की अवरोहणात्मक आध्यात्मिक मनःस्थितियों तथा दार्शनिक व्याख्याओं को "आत्मजयी" में उचित और अपेक्षित स्थान मिला है । आत्मजयी में कवि ने दरअसल एक "मूल्य" प्रतिपादित किया है, और इस मूल्य को सार्थक बनाया है उस पूरा कथा या मिथक द्वारा, जो उसके कलात्मक रूपाकार की अन्तर्भूमि में निहित है । यह केवल नचिकेता की ही कथा नहीं, बल्कि जितनी उसकी, उतनी ही अर्जुन की अहल्या की, या आज के संकट ग्रस्त युवामन की कथा है ।

अर्जुन के मोह में से "श्रीमद्भगवद्गीता" का कर्मयोग प्रस्फुटित हुआ और अहल्या राम की कथा की भी ठीक इसी तरह से व्याख्या की गयी है । ठीक ऐसी ही बुनावट " आत्मजयी " की मूल कथा में भी मिलती है इसमें स्थित जीवन की समस्याएँ वही है जो -- आदिम काल से ही मनुष्य के सम्मुख अस्तित्व के संकट उपस्थित करती रही है । बहुधा ऐसी अंतर्विरोध परक स्थितियों का समाधान मिथकों में मिलता है । नचिकेता का यह प्रसंग भी ऐसे ही एक " मिथक" पर आधारित है जिसका केन्द्रीय लक्ष्य जीवन और मृत्यु के अन्तर्विरोध को मिटाने का एक प्रयास है । चाहे मनुष्य जन्म से जुड़ी पवित्रता - अपवित्रता की, चाहे दैविक और दैहिक की - इन सबके मूल में, अंततः एक बुनियादी ढाँचा उपस्थित होता जो इस अन्तर्विरोध से सम्बन्धित है कि मनुष्य के जीवन में बहुत कुछ तो "प्राकृतिक" है और बहुत कुछ कृत्रिम अर्थात वह, जिसे हम " सांस्कृतिक" कह सकते हैं ।

इस तरह मिथकों के मूल में " प्राकृतिक और सांस्कृतिक" (नेचुरल एण्ड कल्चरल) के बीच तालमेल मिलाने की प्रवृत्ति लक्षित होती है ।

जन्म की भाँति मृत्यु भी प्राकृतिक है किंतु जिसे कुँवरनारायण ने "आत्मजयी" में सार्थक ढंग से जीना कहा है, वह मनुष्य की ऐसी सांस्कृतिक आवश्यकता है जिसका सतत द्वन्द्व जन्म-मृत्यु की प्राकृतिकता के विरुद्ध चलता रहता है । इस तरह , अंतिम विश्लेषण में, नचिकेता की समस्या भी "नेचुरल" और "कल्चरल" के अन्तर्विरोधों को मिटाने और तादात्म्य स्थापित करने की है । "उपनिषद्" की मूल कथा में यह तादात्म्य "यम" द्वारा दिए गए वरदानों से सम्पन्न होता है जबकि " आत्मजयी " में यम की, और उससे सम्बद्ध अति प्राकृत अलौकिक क्रिया कलाप की भूमिका गौण कर दी गई है । " आत्मजयी" का नचिकेता एक प्रकार से, यम के अस्तित्व को नकारता है । वह अपने अंतर में डूबकर ही समस्या का समाधान खोजने का यत्न करता है । वह किसी बाह्य प्राण अथवा सत्ता का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता, अपितु अपने व्यक्तित्व में ही शरण लेना चाहता है । एक दृष्टि से यह ठीक है, क्योंकि अस्तित्ववादी अर्थ में आधुनिक व्यक्ति चरम स्वतंत्रता से अभिशप्त है और उसका वास्तविक संकट भी अनेक विकल्पों में से एक को चुनने का संकट है । यह परिस्थिति और संकटपूर्ण इसलिए हो उठती है क्योंकि चुनने का दायित्व भी स्वयं उसे ही कष्ट ओढ़ना पड़ता है, वह उसे किसी अन्य के माथे मढ़कर मुक्त नहीं हो सकता । अस्तित्ववादी सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपनी इच्छा के बिना, अकारण और अकस्मात, इस संसार में आता है । वह किसी नैसर्गिक प्रयोजन के लिए जन्म नहीं लेता और अपने स्तरहीन जीवन को सार्थकता एवं सप्रयोजनता प्रदान करना स्वयं उसी के ऊपर निर्भर है । उसका अस्तित्व अनंत उत्पीड़न की प्रक्रिया है, किन्तु निष्काम भाव से

अपना कर्तव्य निभाने और जीवन के कटु सत्य के प्रति निर्भीक दृष्टिकोण अपनाने से वह मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकता है किन्तु यह मुक्ति व्यक्तिगत होती है, समष्टि के लिए इसमें कोई अवकाश नहीं' ।"[1] यह उपलब्धि पुरा कथाओं पर चढ़े धार्मिक आवरण को विच्छिन्न कर देती है, और नचिकेता के प्रसंग को नई व्यंजना देती । "उपनिषद" की कथा के अति मौलिक अथवा अवास्तविक प्रतीत होने वाले प्रसंगों को कवि ने यथासंभव हटाने का प्रयास किया है इसी लिए वाजश्रवा द्वारा न वह यम को दिया जाता है, न यम के पास जाता है, न यम उसे कोई वरदान देते ही देते हैं । इसकी जगह हम पाते हैं कि नचिकेता आत्महत्या का प्रयत्न करता है, अचेत होता है और अंततः आत्म शक्ति उपलब्ध करते हुए, उसे सौन्दर्य, शांति, मुक्ति आदि का बोध होता है । यह विधान निश्चय ही "आत्मजयी" को एक आधुनिक कृति बनाता है । कवि ने आधुनिक व्यक्ति की मानसिक अवस्थाओं के सन्दर्भ में ही "उपनिषद", यम , नचिकेता, आत्मा, मृत्यु, भ्रम आदि रूढ़ लगने वाले शब्दों का प्रयोग किया है इन सबके मूल में उन परिस्थितियों का चित्रण है जिनसे आज का मनुष्य भी गुजर रहा है । नचिकेता उस आधुनिक व्यक्ति का प्रतीक है जिसके लिए अस्तित्व की चुनौती प्रतिपल "मृत्यु" और "मुक्ति" के सीमांतों तक विस्तृत रहती है ।

नचिकेता के प्रसंग पर आधारित यह नयी कृति ही एक "विचित्र स्वप्न" अथवा "दुःस्वप्न" का चित्रण करती है । "कठोपनिषद" आदि अन्य प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध कथा प्रसंग घटनात्मकता, नाटकीयता और पुराणों की महत्ता से युक्त है,

- -

1. [illegible] समन्विति, वर्ष 1 अंक 1 संपादकीय भूमिका , पृष्ठ ...5

जबकि "आत्मजयी" में इस सब कुछ को क्रमशः सूक्ष्म-तरल बनाते हुए, अंततः मात्र एक दुःस्वप्न या "नाइट मेयर" बना दिया गया है। लेकिन इस कृति की विशेषता यह है, जो इसकी चेतना और शिल्प के साथ अनिवार्यतः अभिन्न है – कि मात्र एक "नाइट मेयर" होने से लेकर, मानव अस्तित्व और स्थिति की विराटतम गति नियति तक – यह अपने आप को प्रतिबिंबित कर सकी है। समग्र कृति में नचिकेता द्वारा "उस रात" देखे गए एक " विचित्र स्वप्न" का उल्लेख है – जिसमें पहले वह अपने पिता को चुनौती देकर, फिर उनके द्वारा प्रताड़ित होकर, आत्म हत्या की सीमा तक पहुँचता है और अंत में अंतःस्थित "भय" अर्थात मृत्यु से मुक्त होता हुआ, जीवन तथा आचरण की ओर वापस लौटता है।

कृति के इस विश्लेषण में वाजश्रवा यम. नचिकेता में आत्म हत्या का आदि सब "स्वप्न" सम्बन्धी नई स्थितियाँ और घटनाएँ बन जाती हैं। जैसा पहले भी संकेतित किया जा चुका है, " आत्मजयी" केवल एक स्तरीय कृति नहीं है। इसकी अन्य परतों को खोलने के क्रम में, दूसरे धरातल पर यह दुःस्वप्न से आगे बढ़कर एक स्नायु विकार पीड़ित युवा की मनोग्रंथियों से उलझते जाने के परिणाम स्वरूप हुए मनोविघटन का, और अंततः उसकी मनोमुक्ति का, मार्मिक नाट्य-काव्य बन गया है।

प्रारंभ में नचिकेता एक कुंठित युवक की भाँति दिखाई देता है उसका विद्रोह पिता के प्रति उसे अत्यंत आक्रामक बना देता है। पर पिता की ओर से प्रतिघात होते ही, नचिकेता की कुण्ठाएँ बढ़ने लगती हैं। वह स्वयं को निर्वासित और व्यर्थ समझने लगता है। यहाँ तक कि भयभीत होकर वह अपने ही अस्तित्व को मिटा देने का फैसला करता है किन्तु बचा लिया जाता है उद्विग्न करने वाले "आत्म" को समाप्त करने के प्रयास में ही, उन्मुक्त करने वाले उसके "आत्म" का उदय स्वतः निहित है। और अब नचिकेता अपने आप को समर्पित करता है – इस बार मृत्यु के नहीं, अपितु जीवन के प्रति।

षष्ठ अध्याय

समकालीन नाट्य-काव्यों में भावनाओं की सन्तुलित अभिव्यक्ति :

1 मानसिक सन्तुलन के लिए अचेतन मन की कार्य विधि

1.1 सुस्थिरता

1.2 मौलिक नैतिक निर्णय

1.3 सहयोग

1.4 आत्म-विस्तार

1.5 आत्म-निरीक्षण

1.6 संयोजनशील जीवन-दर्शन

षष्ठ अध्याय

समकालीन नाट्य-काव्यों में भावनाओं की संतुलित अभिव्यक्ति

1. मानसिक संतुलन के लिए अचेतन मन की कार्य विधि :-

विकास कीनिरंतर उर्ध्वमुखी प्रक्रिया में व्यक्ति एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, जिसमें उसकी समस्त भावनाएं किसी एक उद्गम से निःसृत होती हुई पुनः उसी में विलीन होती प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति "लिबिडो" का प्रयोग मनोवैज्ञानिक कार्यों में सुस्थिरता के साथ करता है। सबल इच्छा शक्ति वाला व्यक्ति इसी विशेषता के कारण अपने मौलिक नैतिक निर्णय में समर्थ होता है। वह इस सत्य से परिचित हो जाता है कि जीवन का अर्थ समस्त मानव जाति में दिलचस्पी लेना है और इसी आधार पर वह सामाजिक अनुभव और प्रेम को बढ़ाने की कोशिश करता है। इसी संदर्भ में सुस्थिरता, मौलिक नैतिक निर्णय, सहयोग, आत्मविस्तार, आत्म निरीक्षण, संयोजन शील जीवन-दर्शन आदि भावनाओं में व्यक्ति की संतुलित अभिव्यक्ति निहित है।

1.1 सुस्थिरता :-

उच्चतर व्यक्तित्व के विकास को प्राप्त हुआ व्यक्ति प्रेम के द्वारा ही घृणा को या तो विजित करने में समर्थ होता है अथवा उसे निष्प्राण करने में। फ्रायड ने कहा है, "व्यक्ति में विफलताएं, चिंताएं एवं तनाव भी हो सकते हैं। किंतु उन्हें सुलझाने की स्थायी स्थिति का निर्माण हो जाता है, जिससे व्यक्ति उन्हें यथार्थ चिंतन तर्क एवं संतोषपूर्ण ढंग से सुलझा लेता है। स्थायित्व के इसी आधार

पर जातीय तथा कल्याण-संबंधी कार्य, सामूहिक कार्य, सांस्कृतिक सौंदर्य विषयक "साहित्यिक अनुसंधान तथा प्रकृति अध्ययन" आदि विभिन्न कार्यों की प्रक्रिया होती है ।"[1] "सूखा सरोवर" राजकुमारी कहती है--

"नगरी का सत्य था एक अपना ही, जिसकी परिधि में
जीवन बंधा था, वह ऐसा क्षण था जो अमर रहकर,
सदा देगा भाव हमको स्वप्न नगरी को ।"[2]

राजकुमारी पवित्र प्रेम और सतीत्व की प्रतीक है । उसमें प्रेम की अनन्यता की सात्विक ज्योति विद्यमान है साथ ही उसमें प्रेमी के प्रति एकांत समर्पण का भाव है । राजकुमारी को यह जानकर अत्यंत दुःख होता है कि उसका पिता उसकी इच्छा के विरुद्ध मैनापुरी के राजा से उसका विवाह करनेवाला है--

"राजा मैनापुरी संग
मेरा पिता
ब्याह रच रहा है मेरा ।"[3]

उत्तर प्रियदर्शी में अशोक दिग्विजय हर्ष से दीप्त होकर जिस समय चारणों और बंदी जनों का यशोगान सुनने में लीन रहता है--

"गाओ-नांदी
भार चारण-गण
गगन गूंजने दो
प्रियदर्शी परमेश्वर
राज-राजेश्वर के यशगान से ।"[4]

- -

1. कैल्विन एस. हाल, फ्रायड साइकोलाजी, पृष्ठ - 104
2. लक्ष्मीनारायणलाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 75
3. " , " , " - 78
4. " , " , " -

उसी समय उसे असंख्य स्वरों का चीत्कार सुनाई पड़ता है और पराजित, ध्वस्त किंतु दुर्विनीत शत्रुओं का दल उसकी ओर बढ़ता दिखाई देता है--

"असंख्य शत्रुदल
क्यों ये
ध्वस्त, विजित, विस्मृत
ये धूल मिल चुके शत्रु
अनार्य अकिंचन
उमड़ उमड़ आते हैं ।"[1]

राजा इस उपद्रव को शासित करने के लिए नरक यात्रा देने का निर्णय लेता है--

"यह प्रेत दल
शासित होगा
अशमित नरक प्रजा को यह परमेश्वर
कड़ी यंत्रणा में बांधेगा ।"[2]

प्रेतों के यमराज राजा के नरक लोक से प्रेरित अशोक अपने मंत्रियों को आज्ञा देता है कि ऊंची दीवारों से घिरे एक ऐसे नरक का निर्माण करें जिसमें उसके आदेशानुसार प्रेत शत्रुओं को यंत्रणा दी जा सके ।

"उन्हें नरक
मेरा शासन है अनलंघ्य
यंत्रणा
नरक चाहिये उनको ।"[3]

---

1. अज्ञेय, उत्तर प्रियदर्शी, पृष्ठ -19
2. " , " , " - 20
3. " , " , " - 25

एक भिक्षु बढ़कर नरक की सीमा में प्रवेश करता है । नरक के गण उसे पकड़ कर यंत्रणा देने लगते हैं और खौलते कड़ाहे में फेंक देते हैं किंतु भिक्षु के चेहरे पर अखण्ड शांति का भाव बना रहता है--

"विफल हुई यमकृशा
नरक ज्वालाएं
शमित हुई
उत्तप्त कड़ाहों में खिल उठे
कोकनद कमल
काल झंझा हो मृदुल बन गया
चंदन गंध समीकरण ।"[1]

नरक के गण दौड़कर राजा को नरक में घटित चमत्कार की सूचना देता है । गणों के आग्रह पर अशोक नरक में प्रवेश करता है और भिक्षु से साक्षात्कार होने पर उसके मन में करुणा जाग उठती है वह जानना चाहता है--

"तुम कौन काषायधारी
कैसे तुम यहाँ
तुम्हारे चारों ओर
शांति यह कैसे
ये सब क्या है सच ही कहते थे
रस लिप्त हो गया शासन
भंग हुई मर्यादा
क्यों ज्वालाएं नहीं छु रही तुमको
दु दु लगती सी सांसें

---

1. अज्ञेय, उत्तर प्रियदर्शी, पृष्ठ - 30

तुम्हारे चारों ओर बह रही है

जीवन कवच सी ?

क्यों, कैसे किस चमत्कार बल से

तुम नरक-मुक्त हो ?

ओ सन्यासी ।"[1]

भिक्षु अशोक को समझाता है कि अहंकार जन्य नाटक का जहाँ स्त्रोत है, वहीं पारमिता करुणा का उद्गम स्थल है । अहंता के जागने से नरक की प्राचीरें उठ खड़ी होती है तथा करुणा के जागने से मानव बंधन मुक्त हो जाता है--

"जहाँ तुम्हारे अहंकार का

यम की सत्ता

स्वयं तुम्हीं ने ये दी उसको

तुम हुए प्रतिश्रुत

एक समान अकरुणा के बंधन में

नरक तुम्हारे भीतर है वह वहीं

जहाँ से निःसृत पारमिता करुणा में

उसका बंध खुलता है-स्वयं नरक ही गल जाता

एक अहंता जहाँ जागी, भव पाश खिले साम्राज्य

प्राचीर नरक के वहीं छिन्न गये ।"[2]

भिक्षु उसे मुक्ति का रहस्य बताते हुए कहता है--

"करुणा के जागने पर मानव बंधन मुक्त

हो जाता है

- -

1. अज्ञेय, उत्तर प्रियदर्शी, पृष्ठ - 44

2. " , " , " - 46

जागी करुणा, मिटा नरक
साम्राज्य रहे, कट गये बंधन
आप्लावित ज्योति कमल कोश में
मानव मुक्त हुआ ।"[1]

भिक्षु के धर्मोपदेश से अशोक का मन परिवर्तित होता है ।

"प्रवाद पर्व" में राम के समक्ष यह विडंबना है कि शक्ति का उत्तर उन्होंने प्रति शक्ति से दिया था किंतु एक साधारण व्यक्ति के प्रश्न का समाधान किस प्रकार किया जाए—

"साधारणता के इस नारायण को
आर्य पुत्र
न्याय के प्रति नारायण की अपेक्षा है
और
मुझे भी ।"[2]

लक्ष्मण एक अगण्य साधारण की शंका को विद्वेष मात्र बतलाकर उसकी उपेक्षा करते हैं उनकी दृष्टि में उस अनाम व्यक्ति के अविवेकपूर्ण शंका का कोई मूल्यगत प्रयोजन नहीं है । महादेवी सीता के चरित्र पर कलंक लगाना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।

"एक अनाम साधारण धोबी ने
सार्वजनिक रूप से
संपूर्ण उत्तरदायित्वता के साथ
महादेवी सीता के

- -

1. अज्ञेय, उत्तर प्रियदर्शी, पृष्ठ - 47
2. नरेश मेहता, प्रवादपर्व, पृष्ठ - 28

परीक्षित अकलंकित चरित्र पर
अविवेकपूर्ण शंका उठायी है
जिसका न
न कोई अवसर था और
न ही कोई मूल्यगत प्रयोजन ।"[1]

लक्ष्मण कहते हैं कि अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अर्थ यह नहीं होता कि हम राज्य और राष्ट्रीय गरिमा तथा शीर्षस्थ व्यक्तियों के चरित्र मर्यादा पर शंका उठाये । वे इस प्रकार की स्वतंत्रता को उच्छृंखलता कहते हैं, वे इसे स्वाधीनता ही नहीं अराजकता मानते हैं जो अपराध से बढ़कर होती है और राजद्रोह को जन्म देती है--

"स्वाधीनता नहीं है संध्यों
स्वतंत्रता का अर्थ
अराजकता नहीं होता
अराजकता
अपराध से भी गंभीर होती है
क्यों कि
वह राजद्रोह की जननी है ।"[2]

लक्ष्मण उस शंका को संपूर्ण नारीत्व का अपमान मानते हैं--

"हमने महादेवी
के उज्वल, निष्कलुष
देवता तुल्य स्फटिक चरित्र के प्रति
न केवल

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाददपर्व, पृष्ठ - 86
2. " , " , " -92

अविश्वास ही प्रकट किया
बल्कि
उनके नारित्व का अपमान भी ।"[1]

लक्ष्मण के इन सुझावों से राम असहमत होते हैं क्यों कि सीता की चरित्र मर्यादा पर उठाई गयी शंका तर्जनी को महत्व हीन और गलत नहीं मानते उनकी दृष्टि में राष्ट्र का प्रत्येक सदस्य स्वाधीन है या तो स्वाधीनता केवल कपोल कल्पना है--

"शंका का उत्तर
केवल निर्भयता ही हो सकती है
और कदाचित
पद मर्यादा, अधिकार
सब कुछ त्याग कर निर्भर हो सकता है ।"[2]

इन सब कारणों को दृष्टि में रखते हुए राम यह निर्णय लेते हैं कि साधारण जन की शंका का उत्तर सीता त्याग ही हो सकता है--

"अनाम साधारण जन के आग्रह का उत्तर
सीता
त्याग के उदात्त चरित्र के तथा
निःस्पृह सौम्यता के
प्रति आग्रह द्वारा हो सकता है
प्रत्येक ऐसी परीक्षा हमें अद्वितीय बनाती है ।"[3]

राम निर्णय लेते हैं कि सूर्योदय के साथ ही सीता वनवास के लिए प्रस्थान करेगी और वनवास काल में उन्हें कोई राजकीय सुविधा नहीं

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 87
2. " , " , " - 87
3. " , " , " - 103

दी जाएगी--

"अतः सूर्योदय के साथ ही
सीता
वनवास के लिए प्रस्थान करेगी
वनवासकाल में
वह किसी राजकीय पद
मर्यादा सुविधा और सुरक्षा की
अधिकारिणी नहीं होगी ।"[1]

"महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर परिस्थितियों के क्रम से गुजरते हुए यह अनुभव करते हैं कि यात्रा का अंतिम हिम पथ अब धर्मपथ में परिवर्तित हो जायेगा--

"प्रिय ! यहाँ से अब यह हिमपथ
धर्मपथ में परिणत होता है ।"[2]

उन्हें स्मृतियों के रूप में बारंबार जल चित्रों सा तैरने वाला यह संसार भ्रम लगता है--

"जल चित्रों में बारंबार तैर आनेवाला
यह संसार
विगत का केवल भ्रम है ।"[3]

वे द्रौपदी को सुझाव देते हैं कि विगत घटनाओं का स्मरण व्यर्थ है ।

- -

1. नरेश मेहता, प्रवादपर्व, पृष्ठ - 104
2. " , महाप्रस्थान, पृष्ठ - 74
4.

"एक कंठ विषपायी" दक्ष का शंकर के प्रति घृणा और वैमनस्य का यही कारण है कि परंपरा खंडन से वह प्रतिक्रियावादी हो जाती है और सती तथा शिव को यज्ञ में निमंत्रित न करके अपने अपमान का बदला लेता है--

"उन दोनों ने केवल मेरी
बाह्य प्रतिष्ठा खंडित की थी
उनकी आत्मप्रतिष्ठा का तोड़ूंगा ।"[1]

दक्ष यज्ञ का आयोजन इसीलिए करते हैं कि शंकर अपनी अवहेलना देखकर दुःखी हो उठे--

"यह यज्ञ योजन विराट
उनके अभाव का श्री गणेश है
हर अवसर
हर आयोजन या
अपनी अवहेलना देखकर
शंकर का देवत्व स्वयं ही झुलस उठेगा
इतनी बड़ी उपेक्षा
और अवज्ञा
उसको सह्य न होगी ।"[2]

किंतु शिव में अंत तक आते-आते बुद्धिपरता की स्थिति को प्राप्त करते हैं ।

"उर्वशी" में "उर्वशी" सनातन नारी है । काम वंशगता उर्वशी स्वयं राजा के पास अभिसार करने आती है । उसके विषय में

- -

1. दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृष्ठ - 15
2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 89

में जब पुरूरवा जिज्ञासा व्यक्त करते हैं तब वह स्पष्ट रूप से कह देती है कि उसका निवास वस्तुत: संपूर्ण प्रकृति में है--

"मैं मानवी नहीं, देवी हूँ देवों के आनन पर
सदा एक झिल मिल रहस्य आवरण पड़ा है ।
उसे न हटाओ मत प्रकाश के पूरा खुल जाने से
जीवन में जो भी कवित्व है, शेष रहता है ।"[1]

इस प्रकार यहाँ उर्वशी का देवी रूप सामने उभर कर आता है । सहजन्या उसके रूप सौंदर्य को बताती है कि वह नंदन वन की उषा, सुरपुर के लिए कौमुदी स्वयम्‌या इंद्र के मन की कामना, सिद्ध वैराग में राग जगाने वाली, देवों के शोणित में आग लगानेवाली रति की मूर्ति है । कवि ने तृतीय अंक में उर्वशी के मुख से कहलाया है--

"पाषाणों के अनगढ़ अंगों को काट छांट
मैं ही निखिल स्तभनता, मुष्टि मध्यमा,
मदिर लोचना, काम तुलिता नारी
प्रस्तावरण कर भंग
तोड़ तम को उन्मत्त उभरती हूँ ।"[2]

प्रेम संबंधों को लेकर पुरूरवा में जो तनाव है उसे सुलझाने की चेष्टा करती है । रक्त की महिमा को सुनाकर वह कहती है--

"रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी
क्यों कि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है
निरी बुद्धि की निर्मितियाँ निष्प्राण हुआ करती है

1.
2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 94

चित्र प्रतिमा, इनमें जो जीवन लहराता है
वह सुरों से कहीं पत्र पाषाणों में आया है
कलाकार के अंतर के हिलकोरे हुए रुधिर से ।"[1]

पुरुरवा वीर नृपति है । उसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर थी । इला का पुत्र होने के कारण इसे इला-पुत्र उसके वंश को ऐल वंश के नाम से पुकारा जाता है--

"इला पुत्र मैं पुरु पदों में नमस्कार करता हूँ ।
× × ×
ऐल वंश के महासंघ पर नया सूर्य निकला है
पुत्र-प्राप्ति का लग्न, आज अनुपम अबाध उत्सव है ।"[2]

पुरुरवा आर्यावर्त का अधिपति है । वह पराक्रमी, सुंदर और ज्ञानी है । उसके रूप और गुणों का परिचय निपुणिका ने दिया है--

"कार्तिकेय सम शूर, देवताओं के गुरु समज्ञानी है
रवि सम तेजवंत, सुरपति के सदृश प्रतापी मानी ।"[3]

इस प्रकार औशीनरी के सम्मुख किया गया शारीरिक एवं मानसिक सौंदर्य का वर्णन अत्यंत भव्य है । इसीकारण उर्वशी उससे प्रेम करने लगती है । पुरुरवा को अपने सौंदर्य, शक्ति एवं तेज का ज्ञान स्वयं भी है वह कहता है--

"यह शिला-सा वक्ष, ये चट्टान-सी मेरी भुजाएं,
सूर्य के आलोक से दीपित समुन्नत भाल,

---

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 58
2. " , " , " - 137
3. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 35

मेरे प्राण का सागर अगम, उत्ताल उछल है
सामने टिकते नहीं वन राज पर्वत डोलते हैं
कांपता है कुंडली मारे समय का व्याल
मेरी बांह में मारूत, गरूड़ गजराज का बल है
मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूं मैं।
उर्वशी अपने समय का सूर्य हूं मैं
अंधतम के भाल पर पावक जलाता हूं
बादलों के सीस पर स्यंदन चलाता हूं।"[1]

ऐसा वीर नृपति उर्वशी को दैत्य के हाथों से बचाने में समर्थ होता है।

"सूर्य पुत्र" में सूर्य का प्रेम पवित्र है साथ ही उसमें प्रेमी के प्रति एकांत समर्पण का भाव है--

"सूर्य की ग्रीवा तन गई निश्चल में
डोलने लगे दिग्मंडल
अलसाई देह को द्रुत गति देते हुए
सूर्य के रथ के सातों अश्वहित टिनाने लगे।"[2]

सूर्य को यह जानकर अत्यंत दु:ख होता है कि--

"यह उम्र प्यार करने की है या वात्सल्य में मग्न रहने
परिवार के दायित्व निभाने की है
या पृथा के कच्चे शरीर के
मदांध गंध की चिर पिपासु की तरह
तलछट तक पीने की।"[3]

---

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ -
2. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ - 2
3. " , " , " - 3

कुंती सूर्य को एकांत रूप से समर्पित होती है किंतु अपने काका का समाधान देते हुए उसके चेहरे पर गहरा विषाद छा जाता है--

"मौन कुंती ने केवल झुका लिया सिर
और पलकों के बीच छिपा लिये दो नयन कटोर
चुपचाप बैठी निश्चेष्ट
किसी चित्रखचित प्रतिमासी ।"[1]

भीष्म पिता जब जन समूह को संबोधित करते हुए कर्ण की असमर्थता को प्रकट करते हैं तब कर्ण के मन में क्षणिक प्रतिहिंसा के भाव जागृत होते हैं किंतु स्थिर होते हुए वह कहता है--

"मैं रहूँगा केवल एक दर्शक जब तक हैं आप सेनापति
करूँगा मौन, बिना शस्त्र धरे, आपकी जय की प्रतीक्षा
× × ×
एक वज्रमय आघात सहन करता हुआ
स्वयं अपनी प्रतिज्ञा से पा गया निर्वासन

"एक विश्वास और" में विश्वामित्र में व्यक्ति मात्र में गूंजती हुई चीत्कारें गूंजती हुई उन्हें अधिक व्यथित कर देती है और वह सोचते हैं कि व्यक्ति का रुदन अन्यों का संतोष कैसे बन सकता है । क्या एक व्यक्ति के हृदय में अन्य के प्रति निर्ममता ही बची रहेगी ? इस करुणा से संचालित होकर वह व्यक्ति मात्र को पीड़ित न करने एवं व्यक्ति-व्यक्ति से प्रेम करने का संदेश प्राप्त करने हेतु समाधिस्थ होते हैं--

---

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ - 86-87

"श्वास-श्वास में संकल्प सिद्धकर
क्षण क्षण को विगलित कर
कण कण को अर्पित कर,
"भा" में रत होकर
शक्ति-स्फुलिंग संचित कर,
असुर-पूता धी वृत्ति,
भारत का सृजन--
कर्मयोगी बन,
शक्ति पुंज पवित्र ।"[1]

1.2 मौलिक नैतिक निर्णय :-

सभ्य समाज के सामान्य नियमों से ऊपर उठकर व्यक्ति मौलिक नैतिक निर्णय लेता है । इसी विशेषता के कारण उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ है । मैक्डूगल के अनुसार - "सबल इच्छा-शक्तिवाला व्यक्ति इसी विशेषता के कारण अपने मौलिक नैतिक निर्णय लेने में समर्थ होता है और समाज द्वारा उनके अनुमोदन अथवा अननुमोदन की अधिक चिंता न करता हुआ या इन निर्णयों के अनुसार उच्चतर आचरण का विकास करने में सफल हो जाता है । ऐसा व्यक्ति अपने समाज की नैतिक परंपराओं की उपेक्षा नहीं करता, प्रत्युत उनको पूर्णतः आत्मसात करके ही अपने नवीन नैतिक निर्णय प्रस्तुत करता है । ये निर्णय न्याय, साहस, सत्य और आत्मत्याग के गुणों से परिपूर्ण रहते हैं ।"[2] "सूखा सरोवर" में राजकुमारी अन्याय का प्रतिरोध करने की अपूर्व क्षमता रखती है वह अपने प्रेमी को उत्साहित करती हुई कहती है:-

- -

1. रमेशचंद्र मिश्र, एक विश्वास और, पृष्ठ -12
2. मैक्डूगल विलियम, सोशल साइकोलाजी, पृष्ठ - 188-89

"मेरे प्रान
पूजन करूंगी
आओ, पर्व है आज
मेरे नयन का ।"[1]

राजकुमारी आत्महत्या के लिए विवश होती है क्यों कि उसमें प्रेम की एकनिष्ठता है । अन्याय के विरुद्ध तीव्र आक्रोश करती हुई वह आत्महत्या करती है ।

"संशय की एक रात" में लक्ष्मण पौरुष और कर्म के प्रति सजग है वे अकेले ही लंका पर अभियान करने और अपने पौरुष से सीता को रावण से मुक्त करके लाने की घोषणा करते हैं--

"यदि नितांत एकाकी भी जाना हो, जाऊँगा बंधु
जाऊँगा सीता को लाऊँगा, अपने पुरुषार्थ से ।"[2]

"संशय की एक रात" में राम प्रारंभ में क्या हो न हो के संकट से ग्रस्त है तो आगे चलकर सीता के विरह से पीड़ित है, किंतु जैसे ही उनका विवेक उन पर हावी होता है वैसे ही राम धनुष-बाण, शिरस्त्राण सबको छोड़ते हुए एक विरागी व्यक्ति के रूप में कह उठते हैं--

"समर्पित है यह
धनुष बाण है खड्ग और शिरस्त्राण
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
बाण विद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 80
2. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 27

मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए
सीता भी नहीं ।"[1]

युद्ध परिषद की बैठक उन्हें अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सोचने को विवश कर देती है । हनुमान जी उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि यदि सीता का अपहरण राम की व्यक्तिगत समस्या होती तो सेतुबंधन का निर्माण और सभी प्रकार के जातिगत और प्रबंधगत भेद भावों को भुलाकर कोटि-कोटि साधारण जन का एकत्र संगठन कभी संभव न होता--

"अपने सारे जाति कुलों के
राग द्वेष के
गुल्म भाव, प्रादेशिकता
ये छोटे-छोटे बौने
किस आवहान पर
महासेतु निर्माण कर रहे
इस महासेतु बंध का बनना
रहता मात्र कल्पना
रामेश्वर तट
एकत्र न होते ये नग्न देह के
कोटि-कोटि
साधारण जन
संभव था
सब कुछ संभव था

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 32

यदि वह राजा की
व्यक्तिगत समस्या होती ।"[1]

हनुमान की दृष्टि में सीता माता भले ही राम की पत्नी हो, किंतु साधारण जन के लिए तो वे एक पावन प्रतीक है । रावण के अशोक वन की सीता साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता है और कोटि-कोटि जनों की सम्मानिता है--

"सीता माता
भले ही राम की पत्नी हो
किसी की वधू
किसी की दुहिता हो
पर
हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल
प्रतीक है
रावण अशोक वन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता ।"[2]

हनुमान कहते हैं कि भावी युद्धों की आशंका मात्र से डरकर न्याय और अधिकार का पक्ष छोड़ देना उचित नहीं--

"संभव है
हमारे कारण ही
अनागत युद्धों की नींव पड़े
पर
इस डर से

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 62
2. " , " , " - 62-64

क्या हम न्याय और अधिकार छोड़दें
नहीं
नहीं महाराज
समय ही करेगा प्रतिकार
हर बार
अनुचित का ।"[1]

सुग्रीव युद्ध के बारे में बताते हुए राम से कहते हैं कि युद्ध केवल फेन ही नहीं वरन निर्णय है, जिससे इतिहास बनता है--

"महाराज
युद्ध केवल फेन ही नहीं
निर्णय है
जिससे इतिहास बना करता है ।"[2]

विभीषण युद्ध को स्वत्व और अधिकार को अर्जन का अंतिम मार्ग और दर्शन घोषित करते हैं--

"युद्ध
मंत्रणा नहीं
एक दर्शन है राम !
अंतिम मार्ग है
स्वत्व और अधिकार अर्जन का
किसी-किसी युग में
युद्ध ही
अंतिम सत्य, दर्शन हुआ करता मित्र
शेष
शोभा वंचना ।"[3]

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 69
2. " , " , " - 70
3. " , " , " - 71

परिषद का निर्णय अंत में युद्ध के पक्ष में होता है जिसे राम आत्मसात करते हैं ।

"प्रवाद पर्व" में निर्णय देते समय राम का प्रशासकीय न्यायी मन दृढ़ रहता है, प्रारंभ में राम कुछ विचारमग्न दिखाई देते हैं क्यों कि साधारण व्यक्ति ने उनके राजसी गरिमा और चरित्र मर्यादा की अनाम तर्जनी उठाई है । राम जानते हैं कि जब कभी ऐसी तर्जनी उठती है तब राजतंत्र और इतिहास कोलाहल से भर उठते हैं--

"जब भी ऐसी
तर्जनी उठती है
तब राजतंत्र और इतिहास
कोलाहल से भर उठते हैं ।"[1]

राम प्रश्न में उठे हाथ को प्रति इतिहास कहते हैं जो सदा अलिखित रहता है क्यों कि वह साधारण जन का संकेत होता है--

"परंतु प्रश्न में उठा
अनाम था
मनुष्य मात्र का हाथ
प्रति इतिहास होता है राम ।
प्रति इतिहास
सदा अलिखित रहता है
और प्रति ऐतिहासिक
अनाम ।"[2]

---

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 27
2. " , " , " - 28

"एक कंठ विष पायी" में दक्ष में अपूर्व साहस मिलता है। देवत्वों का वास मिटाकर और अनेक प्रलोभन देकर शंकर दक्ष की अनुमति के बिना ही उनकी कन्या सती को वरण करके एक लोक प्रचलित परंपरा का खंडन करते हैं जिससे सारे समाज में दक्ष का सिर नीचा हो जाता है--

"वह जिसने घर की परंपरा तोड़ी है
वह जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है
जिसके कारण
मेरा माथा नीचे है सारे समाज में।"[1]

और दक्ष उसी क्षण से प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं।

"अग्निलोक" में सीता भी सामाजिक नियमों परंपराओं आदि से ऊपर उठकर मौलिक निर्णय लेती है। यज्ञ के अवसर पर राम द्वारा उनके स्थान पर केवल स्वर्ण प्रतिमा स्थापित किये जाने पर सीता अपने जीवन को सारहीन अथवा निष्प्रयोजन समझने लगती है--

सीता को यह अनुभूति होती है कि किसी "अन्धनियति" से परिचालित होने के कारण ही राम कभी सही समय पर सही काम नहीं कर सकते।

"क्या तुम्हारा यह अटल प्रण है,
कि तुम कभी सही समय पर सही काम न करोगे ?"[2]

राम की निर्ममता, महत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है---

- -

1. दुष्यंत कुमार, एक कंठ विष पायी, पृष्ठ - 11

2. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 31

"किसी एक अपढ़ न समझ प्राणी ने
इन्होंने आनन फानन में मुझे घर से निकाल दिया
ऐसा ही इन्हें प्रजा का मन रखना था
इन्होंने पत्नी को अपनाया ही कब था
ये तो राज्य के मतवाले थे
विजय श्री के भूखे थे ।"[1]

रघुवंश में पनपती हुई दूषित प्रवृत्तियों की भर्त्सना करती है--

"इन महान रघुवंशियों के कुल में
राज्य को इतना महत्व क्यों दिया जाता है ?
और भावना का इतना निरादर क्यों होता है ?
यह कितनी विचित्र बात है
कि इनके परिवार में
नारी प्रेम के बदले राज्य ही माँगती है
और पुरुष उसकी अनुचित माँग पर
अपने कर्तव्य को
अपने पुत्र स्नेह को
अपने धर्म तक को छोड़ बैठता है ।"[2]

सीता सामाजिक नियमों परंपराओं आदि से ऊपर उठकर मौलिक निर्णय लेती है । यज्ञ के अवसर राम द्वारा उनके स्थान पर केवल स्वर्ण प्रतिमा स्थापित किये जाने पर सीता जीवन को सारहीन अथवा निष्प्रयोजन समझने लगती है--

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलीक, पृष्ठ - 49-50
2. " , " , " - 25

"अब मुझे अपने अस्तित्व का एक एक पल नरक भोग लगता है ।"[1]

"उर्वशी" में पुरुरवा का स्वभाव है कि वह सहज प्राप्त हो जानेवाली वस्तु उसके लिए शीघ्र ही निरस होती है और नई वस्तु की खोज में लग जाता है--

"किंतु पुरुष चाहता भीगना मधु के नये क्षणों में
नित्य चूमना एक अभिषिंचित ओस कणों में ।"[2]

किंतु ऐसे नर को नारी अपने वश में रख सकती है, उसे सिर्फ यही करना है कि--

"प्रियतम को रख सके निमज्जित जो अतृप्ति के रस में,
पुरुष बड़े सुख से रहता है उस प्रमदा के बस में ।"[3]

जब तक पुरुरवा को उर्वशी नहीं मिली थी उस समय तक वह उसे प्राप्त करने के लिए तड़पता रहा और फिर उर्वशी की प्राप्ति उसमें एक विरुद्वन्द्व को जन्म देती है ।

"सूर्यपुत्र" में दुर्योधन कर्ण को अपमानित होते देखकर दुःखी होता है वह आगे बढ़कर कर्ण को उत्साहित करता हुआ उसका राजतिलक करता है और अपने मित्र एवं सखा के रूप स्वीकारता है--

"मैं कद्र करता हूँ वीर भुजदण्डों की
वीरों का शौर्य ही उनकी पहचान है
बाकी ये विधि निषेध
थोथे है, मिथ्या है

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 54
2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - ~~34~~ 34
3. " , " , " - 34

कायर बहाने है
भुलाने हैं ।"[1]

"एक विश्वास और" में विश्वामित्र राम के माध्यम से अनार्य सभ्यता और संस्कृति को मुक्त रखना चाहते हैं । विश्वामित्र का यह राष्ट्रीय लक्ष्य है । उनका चरित्र संकल्पी, दृढ़ प्रतिज्ञ, काम जयी योद्धा का है इसलिए वह कहते हैं--

"मैं वाग्भिलाषी
कर चुका हूँ प्रतिज्ञा शस्त्र के परित्याग की
माध्यम चाहिए मुझको--
वंश क्षत्रिय जन हिताय,
राम पुत्र अपनी परख का ।
करूं मैं समर्पित निज अस्त्र-शक्ति
मंत्र शक्ति, संतुष्टमन से ।"[2]

विश्वामित्र और वसिष्ठ में विमर्श के उपरांत वीरोत्स में राम जब बलिष्ठ विजेता के रूप में सिद्ध होते हैं तब विश्वामित्र बोल उठते हैं--

"यजमान हो सकता है--
यही राम हमारे महायज्ञ का ।
और लंबी सांस ली वसिष्ठ ने
और कहा-बात सही सचमुच मेरे मन में थी ।"[3]

1.3 सहयोग :-

संतुलित के व्यक्तित्व के लिए सहयोग का सर्वोपरि महत्व है,

- -

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ -
2. रमेशचंद्र मिश्र, एक विश्वास और, पृष्ठ - 26
3. " , " , " - 55

जिसके आधार पर मानव-प्रेम एवं कल्याण से संबंधित कार्य होते हैं। एडलर के अनुसार - " ऐसे व्यक्ति सदा हुए हैं जो इस सत्य से परिचित रहे हैं, जो जानते थे कि जीवन का अर्थ समस्त मानव-जाति में दिलचस्पी रखना है और जो सामाजिक अनुभूति और प्रेम को बढ़ाने की कोशिश करते थे।"[1]

"संशय की एक रात" में राम व्यक्ति की सहज मानवता में विश्वास रखते हैं और व्यक्ति में निहित श्रेष्ठ गुणों को जगाने और उदात्त करने के पक्षपाती है--

"मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बंधु
मानव में निहित श्रेष्ठ जो विराजा
उसको ही
हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा बंधु!"[2]

"संशय की एक रात" में लक्ष्मण भी सहयोग को प्रधानता देते हैं। लक्ष्मण युद्ध से खिन्न उदासीन राम में रचनात्मक आकर्षण जगाने के लिए वे युद्ध के औचित्य का चित्रण करते हैं--

"संधि या कि युद्ध
टूटे संदर्भ की
मात्र विवशता ही नहीं है
नहीं है हम
केवल परिचालित यंत्र मात्र।"[3]

---

1. एल्फ्रेड एडलर, वार लाइफ शुड मीन टू यू, पृष्ठ - 7
2. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 18
3. " , " , " - 14-15

राम शासक पक्ष और व्यवस्था पक्ष के प्रतिनिधि है । उनको यह आत्मविश्वास है कि कितने ही लघु हो इससे क्या—

"सार्थक है
स्वत्व है हमारा
कर्म—
हमारी जलती हुई आँखों में
बंधी हुई मुट्ठी में
भिंचे हुए ओठों में
इस यांत्रित पैरों में
सब कुछ है ।"[1]

युद्ध का परिणाम शुभ भी हो सकता है, अशुभ भी किंतु लक्ष्मण को इनसे कोई सरोकार नहीं—

"चलने पर
संभव है—
तीर्थ मिले
कीर्ति मिले
वापर की छाँह मिले
संभव है
पसली में बाण धंसे
प्यासे ही दम तोड़े
बीलों से
आखिर तक ।"[2]

- -

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ-14-15
2. " , " , " - 15-23

"महाप्रस्थान में द्रौपदी और अर्जुन को सहयोग प्रदान कर उन्हें नयी दिशा प्रदान करनेवाले युधिष्ठिर है। महाप्रस्थान के स्वाहापर्व में युधिष्ठिर द्रौपदी की पुकार उसे समझाते हुए कहते हैं कि यात्राएं ऐसी ऊंचाईयां होती है जहां पर सारी सामूहिकता नष्ट होकर वैयक्तिकता में परिणत हो जाती है। इस समय किसी को पुकारना व्यर्थ क्यों कि पुकारते हुए यात्राएं नहीं की जाती--

"पार्थ
या किसी को पुकार कर क्या होगा ?
उर्ध्वता पर पहुंच कर
सारी सामूहिकता
वैयक्तिकता में परिणत हो जाती है।"[1]

इस ऊंचाई के बाद एक और ऊंचाई है जहां पर यह शरीर भी वृक्ष छाल सा उतार देना पड़ता है--

"एक और भी ऊंचाई होती है कृष्ण।
जहां यह तन भी
वृक्ष छाल सा उतार देना पड़ता है
धूम्र वस्त्रों का परित्याग कर
ताम्रवर्णी अग्नि
जैसे आकाश में पथ वहन करती है
वैसे ही मन
सम्बहीन अबाध यात्रिक हो
धर्मवहन करता है।"[2]

---

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 113
2. " , " , " - 74

युधिष्ठिर द्रौपदी को अन्य किसी ग्रंथि की अपेक्षा "शिव संकल्प ग्रंथि" को पालते रहने का आग्रह या सुझाव देते हैं--

"अन्य किसी ग्रंथि की अपेक्षा
अच्छा है
शिव संकल्प ग्रंथि को पालते रहना ।"[1]

वे द्रौपदी को सुझाव देते हुए कहते हैं कि विगत घटनाओं का स्मरण व्यर्थ क्यों कि जल समय और जीवन वापस नहीं लौटते--

"व्यर्थ है
उन घटनाओं का स्मरण भी
जो युद्धों
प्रतिहिंसाओं की ज्वाला में नष्ट हो गयी
कहीं-कुछ नहीं लौटा करता
न जल, न समय, न जीवन ।"[2]

युधिष्ठिर यह मानते हैं कि हम जिस संसार को छोड़ चुके हैं संभवत: अब उसके लिए कोई पगडंडी नहीं इसलिए उसे "खुले केशों वाला मान" त्यागने और संपूर्ण स्मृतियों तथा खंडित संसार के प्रति अनासक्त समर्पित हो जाने का संकेत देते हैं--

"येह खुले केशोंवाला
अपने भीतर से खंडित संसार
और उसकी भग्न स्मृतियों को
सदा के लिए मूंद दो ।"[3]

- -

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 74
2. " , " , " - 77-78
3. " , " , " - 78

वे निर्भ्रम होने को हिमालय की आत्मा बतलाते हैं अनासक्ति हिमालय की आत्मा है--

"अनासक्ति क ही स्वर्ग है
हिमालय की आत्मा है
जो वास्तविकता से नष्ट हो चुका
उसे स्मृतियों में नष्ट हो जाने दो
और निर्भ्रम हो जाओ ।"[1]

अर्जुन की अनेक शंकाओं का समाधान करते हैं तथा प्राकृतिक धर्म की महत्ता का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि प्राकृतिक धर्म ही सबसे बड़ा है । जिसका भेदन नहीं किया जा सकता है--

"प्रकृति से बड़ा
कोई व्यक्ति नहीं होता
कोई शस्त्र नहीं पार्थ
जो प्रकृति के धर्म का भेदन कर सके
प्रकृति के धर्म का भेदन करना
परात्पर होना है
और शस्त्रों से संभव नहीं है ।"[2]

युद्ध, राज्य, साम्राज्य, संपदा और संबंध को वे कुचक बतलाते हैं जिन्हें व्यक्ति अपने चारों ओर से बुन लेता है फिर कभी सफलता की सुगंधि के परिकूप से बाहर आना नहीं चाहता--

"सत्ता पर आधिपत्य बनाये रखने के लिए

- -

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 104
2. " , " , " - 116

फिर संघर्ष, षड्यंत्र और कुचक्र
अनिवार्य हो जाते हैं
तब प्रत्येक बस्ती में
राज्य का एक अप्रतिम प्रतीक
कारागार
निर्मित होता जाता है ।
समाज की अनुकंपा या कृपा से
राज्याकांक्षी
राज्य या सत्ता नहीं अर्जित किया करता
बल्कि संघर्ष, षड्यंत्र और कुचक्रों से ही ।"[1]

"अग्निलोक" में सीता को युद्ध के तुमुल विजय-निनाद के नीचे कराहता प्रजा का हाहाकार सुनाई देता है । वह समझती है कि अश्वमेध के नाम पर पाप किया जा रहा है । राम को दिग्विजयीन बनकर आत्मजयी बनना है--

"विजय यात्रा
अश्वमेध
युद्ध लिप्सा ।
किसका कौन सा हित है इस बल प्रदर्शन में ।
धन जन और बल का ऐसा घोर अपव्यय
जब सारी भूमि अभावों से ग्रस्त है
पीड़ा से त्रस्त है
क्या लक्ष्य है इसका
मेरे प्रभु
क्या तुम अब भी नहीं जान पाये

- -

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 117

तुम्हें दिग्विजयी नहीं आत्मजयी बनना है ।"[1]

अंत में सीता आत्म स्वातंत्र्य की घोषणा करती है--

"अब मैं स्वतंत्र हूं, मुक्त हूं
अपने आप में पूर्ण हूं
आप अपनी निर्देशिका, आप अपनी
और आप अपनी भोक्ता हूं ।"[2]

वाल्मीकि लव और कुश के रोकने पर भी सीता वेग से एक खड्ड में कूद कर अपने प्राणांत कर लेती है और आत्म त्याग का परिचय देती है--

"शम्बूक" में राम विप्रसुत को जीवित करने के लिए तथा प्रजा कल्याण के लिए शम्बूक का वध करने का निश्चय करते हैं । राम पुष्पक यान द्वारा दण्डक पहुँचते हैं । राम और शम्बूक दोनों अपनी-अपनी दलीलें देते हैं लेकिन राम पर शम्बूक पूरी तरह से हावी रहता है फिर अंतत: राम द्विविधा से उभर कर शम्बूक का सिर मार ही देते हैं--

"अंतत:
नृप राम ने
लाचार हो
कर दिया खड्ग प्रहार
कट गया
शम्बूक का सिर
बह चली
कच्चे रुधिर की धारा ।"[3]

---

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 30
2. " , " , " - 53
3. जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 68

1.4 आत्म विस्तार :-

इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति समाज और राष्ट्र के प्रति अपने अंतर में प्रेम विकसित करने में सफल होता है । गार्डन डब्ल्यु आलपोर्ट के अनुसार - "व्यक्ति अपनी दृष्टि में महत्वपूर्ण प्रतीत होने वाले किसी भी कार्य में उत्साह एवं शक्ति के साथ अनुरत हो जाता है ।"[1] समकालीन नाट्य-काव्यों में बहुत से पात्र उत्साह एवं शक्ति के साथ लक्ष्योन्मुख कार्यों में सक्रिय हुए है तथा सुख-दु:ख, बाधा पराजय आदि से विचलित नहीं हुए हैं । "संशय की एक रात" में राम युद्ध परिषद की बैठक और निर्णय के उपरांत युद्ध के लिए प्रेरित होते हैं एवं सूर्योदय को वरण करते हैं--

"संशय की बेला अब नहीं रही
अंतरीप जल में
सूर्योदय साक्षी है
संशय की बेला नहीं रही ।
अब मैं केवल प्रतीक्षा हूँ
क्वचित कर्म हूँ
प्रतिश्रुत युद्ध हूँ ।"[2]

राम की प्रतिभा व्यक्तिगत समस्याओं से को तोड़कर राष्ट्र के विशाल प्रांगण में विचरने लगती है--

अब मैं निर्णय हूँ
जिसे होना था

---

1. गार्डन डब्ल्यु आलपोर्ट, पर्सनालिटी ए साइकोलाजीकल इन्टरप्रेटेशन, पृष्ठ - 213

2. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ - 82

खड्ग और बाणों के द्वारा जिसे होना है
विचारों में जो हो चुका
उसे अब भुजाओं से होना है
हो मेरे विवेक
अब यह प्रश्न है केवल युद्ध ।"[1]

"प्रवाद पर्व" में सीता में आत्म विस्तार की प्रवृत्ति मिलती है वे जानती है कि उन्हें केवल इतिहास और इतिहास पुरुष के पार्श्व में प्रतिमा सी खड़ी होना है--

"मुझे अवगत था
आर्य पुत्र
आरंभ से ही इस प्रतीति थी
कि मुझे
इतिहास और
इतिहास पुरुष के पार्श्व में
केवल एक प्रतिमा सा खड़ा होना है ।"[2]

जिस दिन उन्होंने पुष्प वाटिका में राम को देखा था उसी क्षण उन्होंने महसूस किया था कि वे सामान्य राजकुमार को नहीं वरन एक यज्ञ पुरुष को देख रही है क्योंकि उस व्यक्तित्व की गंध में फूलों की कमनीयता तथा मंत्रों की पवित्रता थी । सीता अपने को पृथ्वी और राम को आकाश मानती है और अपनी संधि या मिलन को "अप्राप्य क्षितिज" बतलाती है--

- -

1.
2. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 7।

"मैं पृथ्वी और
आप आकाश
हमारी द्युति
हमारी संधि
सदा अप्राप्य क्षितिज ही रहेगी ।"[1]

पृथ्वी एक सीमा तक ही ऊर्ध्वगामी हो सकती है ऊर्ध्व वैराट्य चाहे कितना ही विनम्र क्यों न हो किंतु क्षितिज पर पहुंच कर फिर वही असंग नील आकाश होता है । सीता उन सबको पृथ्वी की नियति मानती है कि उस पर पद चिन्हों के अधूरे आलेख, विस्मृत गाथायें और आख्यान लिखे जाते हैं चाहे दुःख के ही क्यों न हो किंतु आकाश तो पक्षियों को लौटाकर सारे मेघ रूपी वस्त्रों को उतार कर संबंधहीन हो जाता है और एक सन्यासी की भूमिका में शोभा देता है—

"उस पर
पद चिन्हों के अधूरे आलेख
विस्मृत गाथाएं और
आख्यान ही आख्यान लिखे हों
चाहे वह मात्र दुःख के ही क्यों न हो
सबकी आकांक्षा
पक्षियों को लौटाकर
सारे मेघ वस्त्रों को उतार
संबंधहीन
अनागरिक सन्यासी की भूमिकायें
शोभा पाता है ।"[2]

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ – 72
2. " , " , " – 74

सीता यह सब कुछ प्रकृतियों के विपरीत ही होना मानती है । वे वनवास, अशोक वाटिका, आसन्न मातृत्व इन सबको सीता यह सब कुछ प्रवृत्तियों के विपरीत होना मानती है । वह वनवास, पंचवटी अशोक वाटिका, आसन्न मातृत्व इन सबको ज़िंदगी के पड़ाव मानती है । यात्रांत और पटाक्षेप नहीं--

"जब प्रकृतियां विपरीत होती हैं
जब नियतियां भिन्न होती हैं
तब
ये इतिहास के नहीं
पुराण के क्षण होते हैं
तब यही होता है--
वह राज्याभिषेक में विघ्न
वह पंचवटी
वह अशोक-वाटिका वाली प्रतीक्षा
वह युद्ध
वही साम्राज्ञी स्वरूप
मेरा आज का
यह आसन्न मातृत्व
सब मात्र पड़ाव है
यात्रांत नहीं
पटाक्षेप नहीं ।"[1]

वे जानती है कि यहां किसी के मोह को कोई अर्थ नहीं है केवल कर्म ही सब कुछ है--

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 75

"यह नहीं लगता कि
ये सारी घटनाएं
ये प्रसंग
हमारे दांपत्य जीवन के अंग थे
बल्कि
किसी प्राचीन उपाख्यान लगते हैं
आर्य पुत्र
किसी के मोह का
यहां कोई अर्थ नहीं है ।"[1]

राम जीवन भर इतिहास की प्रत्यंचा पर बाण की मर्यादा बन बद्ध रहे हैं और अंग भाव से दिशाएं संचालित करते रहे । भले ही वह दिशा माता, पिता, परिवार, पत्नी, राज्य वनवास मित्र अथवा शत्रु की रही हो । वे स्वीकारती है कि व्यक्ति जब इतिहास को समर्पित हो जाता है तब उसके लिए ऐसी त्रासदी का घटना अनिवार्य हो जाता है क्यों कि--

"इतिहास उसे और
वह इतिहास को
निरंतर तराशते रहते हैं
और
दोनों टूटते हुए निर्मित होते जाते हैं ।"[2]

राजभवनों में व्यक्ति नहीं इतिहास पुरुष चला करता है और मार्गों, वनों में पक्षों का रक्षक--

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 76
2. " , " , " - 67

"राजभवनों में
व्यक्ति नहीं
इतिहास पुरूष चला करता है
मार्गों, वनों, तपोवनों में
यज्ञों ऋषियों का रक्षक ।"[1]

इतिहास के निर्माता घर परिवार की भाषा में बातें नहीं उन्हें तो दुर्गों, प्रासादों और युद्धों का व्याकरण ही कंठाग्र होता है इसीलिए उन्होंने शुरू से स्वयं को बंधन में बांधा था--

"इतिहास के निर्माता
घर परिवार की भाषा में
बातें नहीं किया करते
उन्हें दुर्गों, प्रासादों और युद्धों का व्याकरण
कण्ठाग्र होता है
तभी तो
आरंभ से ही मैं ने
आपको नहीं
स्वयं को बंधन में बांधा था ।"[2]

सीता कहती है कि राज्य, न्याय और राष्ट्र किन्हीं व्यक्तियों तथा संबंधों से ऊपर नहीं होने चाहिए यदि इसी प्रकार एक अनाम साधारण जन का विश्वास है जिसे उसने निर्भय अभिव्यक्त किया है तो राज्य, न्याय तथा शासक को उस अनाम प्रजा के विश्वास की

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 78
2. " , " , " - 77

अभिव्यक्ति की रक्षा की जानी चाहिए । उसका स्वर अकेला है तो क्या हुआ भले ही उसके कारण उन पर राज्य के किसी उच्च व्यक्ति पर क्यों न आंच आती हो । आत्मविस्तार की प्रवृत्ति के कारण ही सीता प्रसन्नता पूर्वक निर्वासन को स्वीकारती है । सीता जानती है कि समाज में व्यक्ति को अपना स्थान बनाने के लिए बहुत बड़ी मूल्य चुकाना होता है । "अग्निलोक" में सीता राम की पत्नी भी है और प्रजा भी--

"वे महाराज हैं
और मैं उनकी प्रजा हूँ ।"[1]

सीता पत्नी के रूप में उत्पीड़ित, प्रवंचित है और प्रजा रूप में शोषित । सीता का शोषण दुहरा है - मानसिक उससे भी बढ़कर शारीरिक रचनाकार भी इस तथ्य से मर्माहत है कि निर्दोष सीता को उस समय निर्वासित किया गया था जब उन्हें पूरे दिन चढ़े थे और पैर ऐसे भारी थे कि चल भी नहीं पाती थी--

"महारानी
जो उन्हें इस राज-सुख छोड़कर
वन में भटकना पड़ा ?
सो भी तब
जब उन्हें पूरे दिन चढ़े थे ।"[2]

शारीरिकता के कारण सीता भोग्या है और पति के लिए संदेहास्पद भी है--

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 14
2. " , " , " - 15

"अपनी पवित्रता सिद्ध करूं
मैं अयोध्या की महारानी, राम की परिणीता
मैं आँखों में आंसू भरकर
आँचल पसार कर
अपने स्वामी के चरणों पर सिर रखकर
अपने पुत्रों की सौगंध खाकर कहूं
कि मैं पवित्र हूँ
अपना सत मुझे सौगंध खाकर प्रमाणित करना होगा ।"[1]

साथ ही संतानोत्पत्ति के बोझिल दायित्व की निर्वाहिका भी है—

"दो नन्हे नन्हे बच्चों को छाती से चिपकाये
पेड़ के फल खाकर
नदियों और नालों का जल पीकर
जिस तिसके आगे हाथ पसारकर
दुखि दिन और सूनी रात में कलपती फिरी ।"[2]

सीता सब कष्टों को चुपचाप सहन करती है क्यों कि वह भी मानती है कि विवाह के रूप में नारी का स्थानांतरण भी उसकी पोच सामाजिक स्थिति का कारण है । नारी का समर्पण पुरुष का अधिकार है और इसी एक पक्षीय सामाजिक के कारण नारी पुरुष की जीवन संगिनी और अर्धांगिनी बनकर पुरुष के कष्टों में साथ देती है जब कि नारी को अपना कष्ट आप ही झेलना पड़ता है ।

"उर्वशी" में पुरूरवा शीलवान पुरुष है । उर्वशी के रूप पर मोहित हो जाने पर भूख, निद्रा को भूल सकता है, पर उसे प्राप्त

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 40
2. " , " , " -

करने के लिए समर्थ होते हुए देवलोक नहीं जाना चाहता उसमें शक्ति है, किंतु वह स्वयं साम्राज्य विस्तार का विरोधी है--

"नहीं बढ़ाया हाथ पर धेस्वाधीन मुकुट पर
न तो किया संघर्ष कभी पर की वसुधा हरने को,
अभी से प्रतिष्ठानपुर वंदित है सहस्त्र मुकुटों से,
और राज्य सीमा दिन-दिन विस्तृत होती जाती है ।"[1]

पुरुरवा पराक्रमी होने पर भी अपने को किसी कार्य का कर्ता नहीं मानता--

"झुके हुए हम धनुष मात्र हैं तनी हुई ज्या पर से
किसी और की इच्छाओं के बाण चला करते हैं ।"[2]

पुरुरवा प्रेमी जीव है । गंधमादन पर जाकर वह अपनी पतिव्रता पत्नी औशीनरी को संदेश भेजता है--

"करती रहो प्रार्थना त्रुटि को नहीं कर्म साधन में
जहां रहूँ मैं भी रत हूँ ईश्वर के आराधन में ।"[3]

प्रेम और काम के तीव्र द्वन्द्व के पश्चात उर्वशी प्रेमिका से दूर हटकर विदुषी नारी बन जाती है और पुरुरवा की भांति कवि के प्रेम और काम संबंधों की भावनाओं की पुष्टि करती दिखाई पड़ती है--

"जिस मधुर भूमिका में मन को दर्शन तरंग पहुँचाती है
उस दिव्य लोक हमें प्रेम की नाव सहज ले जाती है ।"[4]

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 44
2. " , " , " - 44
3. " , " , " - 38
4. " , " , " - 94

"सूर्यपुत्र" में कर्ण अंग देश का शासक बनने के बाद लक्ष्योन्मुख कार्यों में पूरी तरह सफल होता है। प्रजा के प्रति अपने अंतर प्रेम विकसित करते हुए कर्ण सोचता है--

"लगते व्यर्थ जाति पांति, वर्ण भेद
थोथी लगती ये मान्यताएं सामंती
वास्तव ध्वंस इन रुग्ण परंपराओं का,
छद्म व्यवहार
और कपट, स्वार्थ सिद्धि का
दूषित मनोकामना
और घृणा, राग द्वेष का।"[1]

अनंत त्याग की उत्कट इच्छा से कर्ण में आत्मविस्तार का उदय होता है--

"रोम रोम कर्ण का हो उठा प्रदीप्त
जीवन का अर्थ लगा केवल परोपकार
केवल सर्वस्वदान।"[2]

"एक विश्वास और" में राम को अपना शिष्य बताने के बाद विश्वामित्र के "स्व" का विस्तार होता है। "अनुशासन" सर्ग के अंतर्गत राम जब कहते हैं--

"मैं जो कुछ हूं गुरुवर
फल आपकी कृपा का।"[3]

यह सुनकर प्रसन्न चित्त विश्वामित्र आशीर्वाद देते हुए कहते हैं--

- -

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र," पृष्ठ - 58
2. " , " , " - 59
3. रमेशचंद्र मिश्र, एक विश्वास और, पृष्ठ - 84

"राष्ट्र पुरुष, राष्ट्र गुरु
तुम्हारे ही पराक्रम
पाएं अवलंब निरुपाय जन--
तुम्हारी इन बलिष्ठ भुजाओं का ।"[1]

1.5 आत्मनिरीक्षण :-

आत्म निरीक्षण की प्रवृत्ति द्वारा व्यक्ति में भावात्मक संतुलन की स्थापना होती है गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट के अनुसार - "व्यक्ति अपने दोषों का आरोपण दूसरों पर नहीं करता सच्ची विनोद-वृत्ति के द्वारा वह अपने स्नेह की वस्तुओं पर ही नहीं, स्वयं अपने पर भी हंस सकता है और फिर भी उनसे स्नेह कर सकता है । वह महत्वाकांक्षा एवं तत्संबंधी प्रत्यक्ष क्रिया के अंतर को समझता है और विश्व मंच पर जीवन का नाटक अनासक्त एवं अनुद्विग्न भाव से खेल सकता है ।"[2]

समकालीन नाट्य-काव्यों में अनेक पात्रों में आत्म निरीक्षण की प्रवृत्ति मिलती है "सूखा सरोवर" में जब वृद्ध स्वार्थी निर्बल और पलायनवादी कहकर छोटे राजा का तिरस्कार करता है तब वह आत्म निरीक्षण के प्रवृत्ति के कारण स्वयं पर व्यंग्य करता है--

"जो झूठ है
असत है
सत है
मैं ही अंग हूँ महाराज उसका ।"[3]

---

1. रमेशचंद्र मिश्र, एक विश्वास और, पृष्ठ - 84
2. गार्डन डब्ल्यूआलपोर्ट, पर्सन थीरी ए साइकोलोजिकल इंटरप्रिटेशन, पृष्ठ - 214
3. लक्ष्मीनारायणलाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 83

"एक कंठ विष पायी" में दक्ष एक चिंतनशील व्यक्ति के रूप में आते हैं। शिव के परंपरा खंडन से ही प्रारंभ में दक्ष प्रतिक्रियावादी होते हैं और शिव को यज्ञ में आमंत्रित न करके अपने अपमान का बदला लेना चाहते हैं। यद्यपि वह निर्मम और वज्र हृदय है किंतु शांतिपूर्ण ढंग से जब वे उक्त समस्या पर विचार करते हैं तो उनके मन में सती के प्रति प्रेम की अविरल धारा प्रवाहित होती है वीरिणी के यह कहने पर कि—

"मेरे संग अगर कहीं यह कहने पर कि
तो क्या तुम आत्मा पर
पर्वत सा भार वहन कर लोगे ?
मेरे अपमान को सहन कर लोगे
बोलो।"[1]

उनके मन सहज मानवीय संवेदना उभर कर आती है और सती के प्रति आक्रोश स्नेह और सम्मान में बदल जाता है वह वचन देते हैं कि शिव के प्रति अपने आक्रोश को सती पर नहीं उतारेंगे और राजकीय गौरव के साथ यज्ञ में भाग भोग पा सकेगी—

"अब तुम विश्वास रखो प्रिये,
शिव के प्रति मेरा आक्रोश
कभी
सती पर नहीं उतरेगा
राजकीय गौरव के योग्य
सती

---

1. दुष्यंत कुमार, एक कंठ विष पायी, पृष्ठ – 3।

भाग-भीग पाएगी
पक्ष में रहेगी वह ।"[1]

"प्रवाद पर्व" में राम में अंतर्मंथन उस समय उपस्थित होता है जब लक्ष्मण सीता को रथ में लेकर प्रस्थान करते हैं । राम दूर जाते हुए उस रथ को खिन्न उदास मन से देखते हैं—

"राम ! यह कैसा दृश्य तुम देख रहे हो
आम्र कुंजों के बीच से जाता
श्वेत घोड़ों वाला
प्रिया का वह राजरथ
और
यात्रा को अस्वीकारती
तुम्हारी ओर
उड़ जाने को आकुल
उसकी वह प्रकंपिता पताका
प्रत्येक क्षण
दूरियों के जल में डूब जाने के लिए
तुम्हारे ही आदेश पर
अनुज के सारथ्य में चला जा रहा है ।"[2]

एक ओर राम सीता के प्रति प्रेम भावना से ओतप्रोत है तो दूसरी ओर अनाम साधारण जन की शंका का समाधान और राजपुरुष होने के नाते सीता के प्रति अटूट प्रेम और अगाध विश्वास है । श्वेत घोड़ोंवाले रथ में सीता को आम्रकुंजों के बीच से जाती हुई देखकर

- -

1. दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृष्ठ - 32
2. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 107

उसी प्रकार विकलता का अनुभव करते हैं जिस प्रकार सारस पक्षी अनुभव करते हैं वे इस रथ के उसी प्रकार कभी लौटने की भी प्रतीक्षा मन में करते हैं--

"क्या किस दिन
इसी प्रकार गवाक्ष में खड़े
उस रथ का लौटना देख सकोगे राम ।"[1]

उन्होंने कभी ऐसी कल्पना नहीं कि सीता को सुंदर वस्त्रों के स्थान पर फिर वल्कल पहनाकर कारुणिक विदा देनी पड़ेगी--

"सौम्या
माधवी प्रिया को
चीनांशुक के स्थान पर
पुनः वल्कल पहना
ऐसी कारुणिक
विदा देनी होगी ।"[2]

प्रथम वनवास के समय तो लक्ष्मण और राम साथ में थे, लेकिन आज वह आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में है--

"उस समय प्रथम वनवास के
तुम थे
लक्ष्मण था और
था एक प्रति विश्वास
पर आज

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 107
2. " , " , " - 107

आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में
किस प्राप्ति के लिए निर्वासित किया गया ।"[1]

राम पश्चात्ताप करते हैं कि ऐसा अमानुषिक आचरण कोई वधिक भी आसन्न प्रसवा गौ के साथ नहीं करता । उन्होंने इस सनातन हाहाकार का वरण किया--

"ऐसा अमानुषिक आचरण तो
कोई वधिक भी
आसन्न प्रसवा गौ के साथ नहीं करता
इतिहास की कितनी बड़ी आश्वस्ति
पौराणिकता के किस अच्युत पद के लिए
इस सनातन हाहाकार का वरण किया राम ।"[2]

राम सोचते हैं कि क्या मनुष्य का प्रारब्ध है कि वह निर्मम और अंग कर्म करता चला जाए--

"राम ! यही है मनुष्य का प्रारब्ध कि
कर्म
अंग कर्म करता ही चला जाए ।
भले ही कर्म
धारदार शस्त्र की भांति
न केवल देह
बल्कि उसके व्यक्तित्व और
सारी आत्मीयताओं को भी काट फेंके ।"[3]

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 109
2. " , " , " - 110
3. " , " , " - 111

उन्हें सीता की यह बात याद है कि व्यक्ति जब इतिहास को समर्पित हो जाता है तब ऐसी त्रासदिक घटना भी अनिवार्य हो जाती है---

"प्रिया ने उस दिन सच कहा था राम कि
व्यक्ति जब
इतिहास को समर्पित हो जाता है
तब ऐसी त्रासदी का घटना
अनिवार्य हो जाता है ।"[1]

राम आत्म निरीक्षण करते हैं कि क्या व्यक्ति का केवल इतिहास पुरुष बन जाना तथा प्रिया का प्रतिमा बन जाना व्यक्तिगत जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना नहीं---

"व्यक्ति का केवल इतिहास पुरुष बन जाना
प्रिया का मात्र प्रतिमा बन जाना
व्यक्तिगत जीवन की
सबसे बड़ी दुर्घटनाएं होती है राम ।"[2]

सीता को विदा देते समय राम सोचते हैं कि उन्होंने राज्य तो किया ही नहीं जीवन भर वनवास ही तो पाया---

"क्या प्रिया को विदा दी जासकती है
किसलिए
राज्य के लिए
परंतु तुमने राज्य कब किया राम ?
जीवन भर वनवास ही तो किया ।"[3]

---

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ -111
2.
3. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 112

बारंबार व्यक्ति जीवन में एक ही नाटक दोहराया जाता है ऐसा राम का विश्वास है—

"बारंबार एक ही नाटक
व्यक्ति के जीवन में दुहराया जाता है ।"[1]

जीवन में दुहराया जाने वाला नाटक तो एक ही रहता है परंतु उसके संदर्भ और मुद्राएं बदल जाती है—

"संदर्भ बदल गए हैं
भूमिकाएं, मुद्राएं बदल गयी है
पर नाटक
क्या वही नहीं है ।"[2]

मुख्य पात्र राम, लक्ष्मण और सीता वही है परंतु किस अवसर पर यह त्रासदी खेली जा रही कोई नहीं जानता । "महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर अंतर्दर्शन के द्वारा यह जानने में सफल होते हैं कि हिम यातना का अनुभव करने वाले शरीर को विराट अग्नि में समर्पित कर देना ही श्रेष्ठ है—

"जर जाने दो
देह-भाव को भी
इस विराट यज्ञ में
यह मात्र समिधा है ।"[3]

वे जान जाते हैं कि जब पृथ्वी देह का बोध त्याग देती है तब वह शिव के कालजयी ललाट सी शुभ्र हिमालय हो जाती है । हिम को

- -

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 111
2. " , " , " - 111
3. " , " , " - 142

युधिष्ठिर श्वेत पुष्पों वाला स्वर्गोत्सव मानते हैं और देवताओं की "देहवर्णी" सी जाज्वल्य पवित्रता वाले इस हिमालय को वरण करने का निश्चय करते हैं--

"पृथ्वी जब देह का बोध त्याग देती है
तब वह शिव के काल जयी तालट सी
शुभ्र हिम आलय हो जाती है ।
त्यागो इस देह को युधिष्ठिर
देवताओं की देहवर्णी सी
जाज्वल्य पवित्रता ?
युधिष्ठिर ! व वरण करो
अपनी आत्मा में
इस हिमालय को वरण करो ।"[1]

महाभारतीय पात्रों का अपने ही द्वारा वंश नाश, कौरव की युद्ध में समाप्ति, युद्ध के बाद की अघोरी कापालिकता, गांधारी का कृष्ण के तजोमय शाप से बचाया जाना - ये कुछ स्मृतियाँ ऐसी है जो युधिष्ठिर को दुःखी बनाती है इसी संताप का स्पष्टीकरण पार्थ से करते हैं--

"स्मृतियाँ
फिर प्रतिक्षण इनकी आवृत्तियाँ
कुछ भी तो नहीं बीत नहीं पाता है पार्थ
व्यक्ति के मन में
जो कुछ अंकित या उत्कीर्ण होता
एक बार
कुछ भी तो मिट नहीं पाता ।"[2]

---

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 142-43
2. " , " , " - 51

वे विजय का पश्चाताप करते हुए हिम में गलते हैं इसी समय नकुल सहदेव के हिम में समा जाने का समाचार मिलता है । अतः वे पाण्डवता उसी प्रकार नष्ट होते हुए समझ रहे हैं जैसे वृक्ष का एक एक पत्ता झड़कर समाप्त हो जाता है किंतु निर्वेद की भूमिका पर वे स्वयं को संबंध मुक्त पाते हैं--

"आज मैं ही इस विजय का पश्चाताप करते हुए
इस हिम में गल रहा हूँ ।
नकुल और सहदेव
इस पाण्डवता के पीपल के
एक-एक पत्र झरते जा रहे हैं--
सांसारिकता
स्वरूप और ज्ञान
युधिष्ठिर ! निर्वेदके
इस प्रशांत बिंदु की नींव में
इतिहास और गाथाओं का कोलाहल
शांत हो चुका
अब तुम इतिहास हीन
कुल गोत्रहीन
स्वरूप नहीं
प्रज्ञा हो ।"[1]

"अग्निलोक" में राम आत्म निरीक्षण के द्वारा अपनी भूलों पर प्रायश्चित करते हैं सीता निर्वासन, शम्बूक वध, प्रजा पराग मुक्ता पत्नी पुत्र और प्रजा की उपेक्षा आदि सब कृत्यों में निहित जीवन

- -

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 141-101

दर्शन संबंधी भूल उन्हें गहराई से आत्म निरीक्षण को विवश करती है--

"मैं ने सीता को त्यागा था
मानो अपने को ही बांटा था
केवल इसलिए
कि वह मेरी लोकहित चिंता का प्रमाण हो
मैंने कब जाना था कि वह प्रजा के विरुद्ध है ?
मैंने सोचा था
कि सीता अपने मन को समझा लेगी
जब मैंने शम्बूक का वध किया
तब क्या मन के किसी कोने में हिचक थी
पर अब मुझे लगता है कि मैं अत्याचारी हूँ
और मेरे हाथों पर निरपराधों का रक्त है
मेरा सारा नियम संयम आडंबर बन गया
और मैंने अपनी आँखों देख लिया ।"[1]

राम अपने दुष्कर्मों पर रोते और पछताते हैं और आत्म निरीक्षण से उनको अपने सारे पाप साफ नजर आते हैं । सीता के बलिदान से राम आत्म प्रदर्शन और कल्पना के स्वनिर्मित लोक से निकल यथार्थ जीवन का अहसास करते हैं--

"आचार्य
कहीं गहरे बहुत गहरे
मेरे जीने में कोई बड़ी भूल थी
कि मेरे सारे मंतव्य उलट गये ।"[2]

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 58-59
2. " , " , " - 58

राम को यह जानकर तीखा बोध होता है कि आरोपित ईश्वर और उसके आविष्कर्ता ऋषि, मुनि, शास्त्र, पुराण सब मायावी और मिथ्या है। धर्म, रीति, कुल, परंपरा, मर्यादा, मंत्र, श्लोक, जन जीवन के यथार्थ से काटकर कल्पित लोक में भटकाने वाले शब्द है--

"धर्म और रीति कुल परंपरा, मर्यादा
वेद शास्त्र और पुराण
इनके बाड़े में बांध कर
जिन्होंने मुझे अतीत के मिथ्यात कुंडल में
शब्दों की पाश से जकड़ा है
वे ही मेरे कृत्यों के हामी है
जिन्होंने मेरी दृष्टि को   में जोड़ा
और मेरे श्रवणों के श्लोकों से ढ़पा है
उन्होंने मुझे अपनी पत्नी से, प्रजा संतती से
वंचित कर दिया है
मैं अपने जनों से असंपृक्त और विच्छिन्न
शून्य की कक्षा में निरंतर भ्रम मात्र हूं।"[1]

आत्मग्लानि से जुड़े राम सीता के धरती से जुड़े निर्विशिष्ट बनकर जिए गये यथार्थ जीवन को वरणीय समझते हैं--

"तुम जीवन अलख जगाती हुई
धरती की सच्ची संतान की भांति
धरती के जमीन से जुड़ी रही
प्रकोप, झंझावात अनावृष्टि, वज्रपात
सबके साथ निर्विशिष्ट बनकर खेलती रही।"[2]

---

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 60
2. " , " , " - 63

सीता की उदग्र आत्मचर्चा और जीवन की सच्ची अनुभूति को राम सब कुछ मानते हैं जिससे प्रेम सत्य और मुक्ति के रूप में उदात्त जीवन मूल्यों को उपलब्धि होती है--

"और तुमने अपनी उदग्र आत्मचर्चा से
प्रमाणित कर दिया कि जीवन की सच्ची अनुभूति हो
इस अंधे युग की अकेली अग्निलोक है
प्यार, सत्य, मुक्ति, उस लोक पर चलते हैं ।"[1]

राम आत्महत्या को पलायन मानते हैं--

"पर अपने जीवन का ऐसा व्यर्थ अंत
मैं फिर एक बार पलायन ही कहूँगा ।"[2]

राम अपने पापों के सच्चे प्रायश्चित के रूप में राम राज्य को नयी अनुभूति से उगे उदात्त मूल्यों पर आधारित करके, उसे देवी के गौरव का सच्चा स्मारक बनाने की प्रतीक्षा करते हैं--

"और राम राज्य
अभी केवल देवी की मंत्रणा का इतिहास है
उसे देवी के गौरव का स्मारक बना दूँ
ताकि जब जाऊँ तो गर्व से कह सकूँ
चाहे देर ही सही
जब मुझे तुम्हारी अग्नि मिल गयी
तो मैं ने उसमें अपने जीवन की
आहुति चढ़ाई ।"[3]

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 64
2. " , " , " - 64
3. " , " , " - 64

"अग्निलोक" में सीता राम द्वारा किये गए तिरस्कार और अपमान से आहत हो उठती है और अश्वमेध के अवसर पर अयोध्या जाना निर्वासन से बड़ा अपमान समझती है--

"नहीं, नहीं
मैं कहीं नहीं जाऊँगी
आज पहली बार चेत हुआ है
हाय,
मैं इतनी अंधी क्यों हो गयी ?
मैं ने क्या मान लिया
कि जो पहले तिरस्कार कर चुका है
बहिष्कृत कर चुका है
धोखा दे चुका है
वह अब एकाएक सच्चा हो जायेगा ?
मैं कितने बड़े भ्रम में थी ।"[1]

सीता यह जानकर दुःखी होती है कि यज्ञ में उनके स्थान पर उनकी प्रतिमा से काम चला लिया गया--

"अब मेरा यहां क्या काम है ?
हाय, जिसका स्थान सोने की प्रतिमा लेले
उसके जीने का प्रयोजन ही क्या है ।"[2]

राम के दुर्व्यवहार से पीड़ित और क्षुब्ध होते हुए भी उनके मन में राम के प्रति आसक्ति की एक अंतर्धारा प्रवाहित होती है वह इस प्रतीक्षा में रहती है कि राम एक न एक दिन उन्हें अवश्य समझेंगे--

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 38-39
2. " , " , " - 54

"नारी जिसे प्यार करती है उसके दोष नहीं देखती
मैं ने सोचा कभी तो वह दिन आयेगा
जब राम मुझे समझेंगे ।"[1]

"शम्बूक" में शम्बूक आत्म निरीक्षण के अपूर्व सामर्थ्य के कारण राम के मन को प्रायश्चित की अग्नि में झुलसने के लिए विवश कर देता है । राम के मानसिक धरातल पर छाया हुआ शम्बूक राम से बार-बार कहता है कि हे राम पाप ! और पुण्य कर्म के ही आयाम है परिस्थिति का निर्माण नियति के द्वारा होता है--

"पाप पुण्य मनुष्य के ही
कर्म के आयाम
नियति रचती है परिस्थिति
क्या कहूँ मैं राम ।"[1]

मनुष्य जिसे तुम्हारी लीला के नाम से संबोधित करते हैं वह सचमुच मानव के लिए बहुत भारी पड़ता है--

"लोग कहते हैं
कि लीला तुम्हारी है
किंतु मानव के लिए
यह बहुत भारी है ।"[2]

न्याय और अन्याय कभी भी मनुष्य की नियति से दूर नहीं रह सकते जो व्यक्ति मनुष्य की सहज गति से दूर है वह भला दण्ड विधान कैसे सह सकता है । विवेकी पुरुष उसे कहा जा सकता है जो संसार के

- -

1. भारत भूषण अग्रवाल, अग्निलोक, पृष्ठ - 48
2. जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 96
3. " , " , " - 97

विषम से विषम व्यवहार में भी अपना मार्ग निकाल सके जो जटिलता व कुटिलताओं के अगम पथ को धर्मपथ की धारणा के समान कोई रथ बना दें--

"न्याय या अन्याय दोनों
हो नहीं सकते कभी
मानव नियति से दूर
भला दण्ड विधान
कैसे रह सकेगा
व्यक्ति मन की
सहज गति से दूर
गहनता है न्याय में इतनी
उलझने हैं व्यक्ति में कितनी
है विवेकी वही
जो जग के विषम व्यवहार में
पथ बनाले
जटिलता में
कुटिलता में
धर्मरथ की धारणा सा
सुलभ कोई रथ बना ले ।"[1]

शम्बूक राम से आगे कहता है - संस्कृति रहित राज्य को दर्प से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता और ऐसा दर्प जो सर्प के समान मानव नियति को सदा दंश देता रहेगा--

"राज्य जो संस्कृति रहित है, दर्प है

---

1. जगदीशगुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 97

डसेगा मानव नियति को, सर्प है ।"[1]

शम्बूक की प्रखर तेजस्विता राम की गौरवमयी राजसी चेतना को आर-पार बेध जाती है वह उनकी नीति मर्यादा को ही नहीं, चारित्रिक महिमा को भी आच्छादित कर देती है । शम्बूक की तर्कशीलता जीवन के उस पक्ष को उद्घाटिक्त करती है जिसकी उपेक्षा करने से राम का प्रभुत्व और उनकी विराटता अर्थवत्ता खो देती है । शम्बूक की दृष्टि में लोकनायक वही हो सकता है जो धर्म धर्म और अधर्म, कर्म और अकर्म पहचानता है, वही लोक नायक हो सकता है । ऐसा व्यक्ति कभी भी लोकनायक नहीं हो सकता है जो सभी का विश्वास न अर्जित कर सके और समस्त प्रजा की आकांक्षा का प्रतिरूप न बन सके जो विधि अविधि की बात करने से कतराये और केवल दण्ड देने के लिए ही राज्याधिकारी बने--

"लोनायक वह नहीं
जो विधि-अविधि की
बात करने से डरे
बस
दण्ड नायक भ्रम हो ।"[3]

शम्बूक आत्मनिरीक्षण के कारण ही राम की निर्बलता को जान जाता है । उन पर आरोप लगाने से पहले वह अनेक प्रामाणिक तर्क प्रस्तुत करता है । मसलन जब दशरथ ने केवल राम को वनवास दिया तो वे अपने साथ सौ मित्र और सीता को क्यों लाये राम को राजा बनाने में कोई उसे कोई मूल्यगत प्रयोजन नहीं दिखाई देता--

- -

1. जगदीशगुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 97
2. " , " , " - 13
3. " , " , " - 48

"राजा तुम बने किस हेतु हो
व्यष्टि और समष्टि के मन सेतु हो ।
जब पिता ने दिया केवल तुम्ही को वनवास
क्यों वहां सौमित्र-सीता यह किया आवास ।"[1]

सीता का अपहरण राम का व्यक्तिगत कष्ट था, फिर उस कष्ट से मुक्ति पाने के लिए राम रावण के बीच भयंकर संग्राम समाज पर क्यों लादा गया--

"हरण सीता का तुम्हारा व्यक्तिगत कारण
मरण रावण का उसी अप कर्म का वारण ।"[2]

ताड़का मारीच, खर दूषण, सुबाहु, कबंध, वालि, त्रिशरा आदि का वध क्या न्याय संगत है क्या शासक पक्ष के लिए विपक्षी सब वध के पात्र होते हैं--

"ताड़का, मारीच, खर दूषण, सावाहु कबंध
वालि त्रिशिरा आदि का वध ही बना संबंध
क्या तुम्हारे न्याय का आधार है वध मात्र
विपक्षी सब केवल तुम्हारे वध के पात्र ।"[3]

जो राम का प्रतिपक्षी रहा उसे समाप्त कर दिया और जो विपक्ष निशाचर दल-बदल कर शासक के पक्ष में आ गया वही शिष्ट बन गया शम्बूक विभीषण का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि यदि वह राम के पक्ष में न आता और रावण वध नाभि में तीर मारने से होगा यह रहस्य राम को न बताता तो क्या वास्तव में श्रीराम रावण को मार

- -

1. जगदीशगुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 52
2. " , " , " - 52
3. " , " , " - 53

सकते थे ? कभी नहीं, यही कारण है कि आज भी जन मानस में विभीषण के नाम पर वंचना की गंध आती है और आज भी भाई के साथ विश्वासघात करनेवाले मनुष्य को विभीषण के नाम से संबोधित किया जाता है—

"विभीषण के नाम से हे राम
अब भी वंचना की गंध आती है
विभीषण का अर्थ जन मन में
अभी तक झुंझलाती है ।"[1]

"शम्बूक" राम को दोषी ठहराते हुए कहता है कि उनका सीता के शरीर के साथ विवाह हुआ किंतु वे सीता के मन को कभी नहीं जीत पाये क्योंकि अगर राम को सीता से स्नेह होता तो राजा द्वारा प्रजा में प्रवाद फैलाने पर छल से लक्ष्मण के द्वारा सीता को वन भेजने के स्थान पर सीता के साथ स्वयं चले जाते और राज्य का परित्याग कर देते राम को सीता नहीं शासन प्रिय है—

"भूमि पुत्री से हुए
हे राम ! तुम परिणीत
पर कहां उनके हृदय को
सके सचमुच जीत
स्नेह तुम्हें था छोड़ देते
राम तुम भी राज्य
क्यों केवल
तुम्हारे हेतु सीता त्याज्य ।"[2]

- -

1. जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 55
2. " , " , " - 57

शम्बूक राम को यह बोध कराता है कि उन्होंने प्रतिपक्ष की बात का कभी सम्मान नहीं दिया । उन्होंने प्रतिपक्ष का सदा या तो वध करा दिया था । निष्कासित न्यायपालिका उनके हाथों कठपुतली बनी रही । इसलिए उन्होंने रावण का वध किया हो या बालि का या शम्बूक का, सदैव ही उन्होंने न्याय करने में चूक की--

"कब सुना प्रतिपक्ष को
तुमने सहित सम्मान
दिया निर्वासन, कियावध
पक्षधर हो क्या न ?
सह रहा रावण
उधर है बालि
यह शम्बूक
अब न कहना
न्याय में तुमने नहीं की चूक ।"[1]

प्रकृति के नियम तपस्वी को युद्ध करने की अनुमति नहीं देते इसलिए शम्बूक राम से युद्ध नहीं करना चाहता है--

"मैं तुम्हारे नियम का
बंदी नहीं हूँ
प्रवृत्ति से अनिरुद्ध
अब तपस्वी हूँ
नहीं तो राम
मैं करता तुम्हीं से युद्ध ।"[2]

- -

1. जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 60
2. " , " , " - 66

"एक पुरूष और" में विश्वामित्र अपनी तपस्या की बल पर जीवित स्वर्ग के उपयोग का अधिकारी तथा बना देना चाहते हैं, लेकिन जब इंद्र यह अनुभव करते हैं कि ऐसा होने से उनके एक छत्र साम्राज्य पर आंच आयेगी तो विश्वामित्र की साधना को भंग करने के लिए उर्वशी की बेटी मेनका को धरती पर भेजते हैं। विश्वामित्र के सम्मुख मेनका की उपस्थिति एक नया अनुभव देती है। मेनका के रूप-सौंदर्य पर विमुग्ध होकर अपने निजी साधक को मेनका को सौंपने या सौंपने देने के बीच विश्वामित्र में अन्तर्द्वन्द्व होता है- विश्वामित्र आत्म निरीक्षण से यह जान लेता है कि नारी और पुरूष का एकात्मीकरण ही पूर्णता को प्राप्त होना है। नारी को अपने में समेट कर ही पूर्ण पुरूष है और नारी पुरूष को अपने में उतार कर पूर्ण नारी बनती है। विश्वामित्र मेनका से कहते हैं कि मेनका स्वर्ग के अधिकारी सोंचते होंगे कि तुम्हें भोगने से मेरा तप भंग हो और मैं अपने ही घर पदच्युत हो जाऊंगा लेकिन मैं अब व्यवस्था के द्वारा तुम्हारा और अपना अधिक शोषण नहीं होने दूंगा और अपने तप के संपूर्ण संचय को तुम्हारी आत्मा में उतारकर मैं जो कुछ आज तक अपने लिए था, पूरे समाज के लिए हो जाऊंगा--

"मेरे तेज से निकलती एक रेखा
खिंच जायेगी सारी व्यवस्था पर
जिसने अब तक मेरा और तुम्हारा
शोषण किया है
सोंचते होंगे स्वर्ग के अधिकारी
मेरा तप भी भंग होगा
मैं हो जाऊंगा पदच्युत अपने ही घर में
लेकिन यह संभव नहीं
क्यों कि मैं तप के संपूर्ण   य को

तुम्हारी आत्मा में उतार दूँगा
तुम्हारे आने से मेरी साधना की एकांतता
केवल अपने लिए न होकर
एक पूरे युग को समर्पित होगी ।"[1]

कर्मशील पुरुष के लिए स्वर्ग भावना ही सबकुछ होती और भावना शब्दहीन आवरण में निरर्थक होती है - अपने आत्मा को अकेले में नहीं प्राप्त किया जा सकता । आत्मा का परिचय सचमुच यातना से गुजरने जैसा अनुभव है । तपस्या की उत्तरोत्तरन्मुखता से धरती के अभाव में जीवन की संपूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती । अत: विश्वामित्र यह स्पष्ट घोषणा करते हैं--

"विश्वामित्र और मेनका की समानांतरता
धरती और आकाश
यथार्थ और स्वप्न
दोनों अपूर्णताओं का मिलाने का बिंदु है ।"[2]

सृजन का क्षण कोलाहल का नहीं, भीड़ नहीं एकांत चाहता है । एकांत में दो विपरीत शक्तियों का सम्मिलित सृजन है । सृजन में न बलात का पाप बोध होता है और न क्षरण का प्रायश्चित । इसलिए विश्वामित्र कहते हैं--

"ऊहापोह चुक गया है मेरे भीतर
मुझे अपने में उतारकर
तुम पूर्ण नारीत्व को प्राप्त हुई तो

- -

1. डॉ. विनय, एक पुरुष और, पृष्ठ - 119
2. " , " , " - 140

तुम्हें अपने में समेटकर
मैं ने पालालिया है पुरूषत्व ।"[1]

आत्मावलोचन की प्रवृत्ति के द्वारा ही विश्वामित्र स्वयं पर विजय प्राप्त करते हैं तथा मेनका को पापबोध जैसे कदर्य से निकाल कर उन्हें निरापराधि होने की प्रेरणा देते हैं--

"चिंता से सिर मत झुकाओ मेनका
कि तुमने मेरा उपभोग किया है
गर्व से सिर ऊँचा करके महसूस करो
अखण्ड मातृत्व
अखण्ड सौभाग्य
प्रसव की पीडा सहकर
तुम्हारा मृण्मय शरीर
कंचन हो गया है
अब तुम्हारे ही नाम को
झेलने की शक्ति केवल मुझ में
रह गयी शेष ।"[2]

"एक और पुरूष और" में मेनका भी अंतर्दर्शन के द्वारा इंद्र पर यह दोष लगाती है कि इंद्र का बुलावा उसके पास आता है तो वह अपने आप से पूछती--

"क्या सचमुच उसे बुलाने का
अस्वीकार कर सकती है

- -

1. डा. विनय, एक पुरूष और, पृष्ठ - 155
2. " , " , " - 158-159

शायद नहीं
वह उसके हाथ में नहीं है
क्या वह विद्रोह नहीं कर सकती
उसकी पूरी व्यवस्था के खिलाफ
जिसमें उसका जीना
एक यन्त्रणा से अधिक
-- और कुछ नहीं है ।"[1]

आत्मनिरीक्षण से मेनका जान जाती है कि शताब्दियों से नारी पुरुष के लिए मनोरंजन और क्रीडा का साधन रही है । उसने जब भी चाहा आगोश में समेट लिया और जब लगा कि कहीं उसका अस्तित्व खतरे में है और उसके द्वारा अपने को बचाया जा सकता है तो वह नारी से ऐसा कहने में भी तनिक संकोच नहीं कर पाया है--

"तुम जाओ
और जीवन का स्वाद लो
मेरे लिए प्रेम एक घटना है
तुम्हारे लिए मात्र स्मृति

मेनका की दृष्टि में ढोंग बंधाये नियमों से बंधा कर कुत्ते, बैल और भेड़ों का समूह तो चल सकता है पर आदमी नहीं क्यों कि आदमी वक्त से हमेशा आगे रहता है और जो वक्त से आगे होता है उसके लिए कोई नियम नहीं होते । समाज नियमों का नियामक होता है लेकिन वही सामाजिक नियम, परंपरायें यदि व्यक्ति की प्रगति में बाधक होती है तो हर युग में किसी "एक और पुरुष" ने जन्म लिया

- -

1. डॉ. विनय, एक पुरुष और, पृष्ठ - 64
2. " , " , " - 158-59
3. " , " , " - 134-124

है और साथ ही साथ एक और नारी जन्म लेती है जो निर्भीकता से कहती है—

"लेकिन - आज मैं हर्ष के साथ
उद्घोषित करती हूँ कि मैं नारी हूँ
स्मृतियों के उपदेश तुम्हारे लिये नहीं
मेरे लिये है
लेकिन मैं जला देना चाहती हूँ तमाम
ग्रंथों को
जिन्हें पुरुषों ने मिलकर आकार दिये
पुत मंत्रों और श्लोकों में ।"[1]

मेनका कहती है कि समाज की परंपराएं मान्यतायें मनुष्य को छललेती है और संस्कार आदमी को पति स्त्री को पत्नी बना देते हैं किंतु मुक्त प्रेम की गंध समाज को मान्य नहीं है—

"यहां रहने से शायद कलंकित हो जाएगा तपोवन
झुलस जायेगे नियम उपनियम
एक मुक्त प्रेम की गंध से ।
कितना छल लेती मान्यताएं
कितना धोखा देते हैं संस्कार
वे बना देते हैं आदमी को पति
स्त्री को पत्नी
और संतानों के मस्तक पर
दोनों का नाम जोड़कर
चिपका देता है एक पट्टा
सिर्फ दूध पीने के लिए ।"[2]

---

1. डॉ. विनय, एक पुरुष और", पृष्ठ - 134
2. " , " , " - 124

मेनका आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति के कारण ही स्त्री-पुरुषों के संबंधों को जानने में समर्थ हुई है ।

"उर्वशी" में पुरुरवा आत्मनिरीक्षण की वृत्ति द्वारा यह जानने में सफल होता है औशीनरी के प्रति वह अनुत्तरदायी रहा है पुत्र के वात्सल्य से वंचित एवं प्रजा पर से उसका एकाधिकार समाप्त हो गया है । किंतु प्रेम की पीड़ा प्रेमिका से मिलने की उत्कटता का परिचय चित्र लेखा के शब्दों में मिलता है--

"धुआं नहीं ज्वाला देखी है, ताप उष्म दिक सम है
जो अमर्त्य की आग, मर्त्य की जलन न उनसे कम है ।
सुखभोग से उदासीन जैसे उर्वशी विकल है
उसी भांति दिन रात कभी राजा को रचन कल है ।"[1]

"सूर्यपुत्र" में नासक्त कर्ण युद्ध की व्यर्थता का स्मरण करते हुए ग्लानि से भर उठते हैं और कहते हैं--

"युद्ध केवल यह प्रपंच है
पांडवों के प्रति द्वेष मेरी ही कुंठा है
मैं व्यर्थ चाहता हूँ हनन वीर अर्जुन का
मेरी तरह बलिष्ठ, मेरी तरह वीर
और मेरी तरह ही पुत्र वीर माता कुंती का ।"[2]

कर्ण मूल रूप में अंगि देश का शासक है किंतु स्वयं को वह प्रजा के तुल्य समझता है । दीन दु:खियों को देख व्यथित होता है और सोचता है--

"फैला दूँगा सद्भाव सारे ही राज्य में

- -

1. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 23
2. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्य पुत्र, पृष्ठ - 90

त्याग दूँगा वैभव समृद्धि और राजपाट
मिथ्या है ये आकर्षण
अगर न दे सका शिशुओं को दुलार
दे न सका दुखियों को सुख
और निर्धनों को ऐश्वर्य ।"[1]

"एक विश्वास और" में राम अहल्या के शाप के प्रसंग को गुरु विश्वामित्र को सुनाते हैं । विश्वामित्र की प्रतिमा उदात्त लक्ष्योन्मुख कार्यों में सफल होती है । व्यक्तिगत समस्याओं के घेरे को तोड़कर वह आगे बढ़ते हैं । राम के पूछे जाने पर सुंदरी अहल्या शाप विमुक्त कैसे हो सकती है तब विश्वामित्र स्पष्ट कहते हैं--

"वासना वृत्ति बनाती संकुचित शक्ति
इंद्र तक को, राघवेंद्र !
फिर मनुष्य की गति क्या
यह मेरा भी अनुभव है ।"[2]

विश्वामित्र के इतने बड़े मौलिक चरित्र में मेनका-प्रसंग एक घटना मात्र थी । विश्वामित्र का संपूर्ण जीवन ही चुनौती पूर्ण है । वही एक महत्वाकांक्षी का जीवन है राम में भी आत्म विस्तार की प्रवृत्ति दिखाई देती है उनका यह कथन है--

"कर दिया शापोल्लंघन मैं ने, उसका ।
रहूँगा अवश्य इस आश्रम में तब तक,
महर्षि गौतम लौटेंगे नहीं जब तक ।"[3]

- -

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र, पृष्ठ - 59
2. रमेशचंद्र मिश्र, एक विश्वास और, पृष्ठ - 98
3. " , " , " - 102

विश्वामित्र राम के संकल्प को बुद्धि-बल से समझते हैं और कहते हैं--

"बोले वे आयुष्मान ! दर्शन तुम्हारा
निश्चित ही अंत है उसके शाप का
कहते हुए पहुँचे वे निकट उस कुटिया के ।"[1]

1.6 संयोजनशील जीवन दर्शन :-

धर्म दृष्टि के कारण कुछ व्यक्ति अपनी समस्याओं को सुलझाने में समर्थ होते हैं और वर्तमान की कठिनाइयों को सरल बनाने में सफल होते हैं । गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट के अनुसार - "कर्मशील व्यक्ति का जीवन इसके आधार पर सफलतापूर्वक सक्रिय रहता है ।"[2] आलोच्य नाट्य-काव्यों में संयोजनशील जीवन दर्शन की अवधारणा अनेक पात्रों में उपलब्ध होती है । "सूखा सरोवर" में सन्यासी अपने मूल रूप में नगरी का राजा है । जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि होने के कारण उसे जनता का विश्वास प्राप्त है । वह राजा होते हुए भी स्वयं को प्रजा तुल्य समझता है । इसलिए विनम्रतावश सिंहासन पर नहीं बैठता है । न्याय, साहस एवं आत्मत्याग आदि गुणों से वह परिपूर्ण है । स्वार्थ का बलिदान करके समष्टि हित के उदात्त धरातल पर प्रतिष्ठित होने से उसका जीवन मर्यादित और सरस हो उठता है । वह स्वयं को प्रजा तुल्य समझता है । इसलिए विनम्रतावश सिंहासन पर नहीं बैठता--

"मैं तो कुछ भी नहीं हूँ
सब कुछ प्रजा है
उसने मुझे केवल प्रतिनिधि चुना है ।"[2]

- -

1. रमेशचंद्र मिश्र, एक विश्वास और, पृष्ठ - 102
2. गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट, पर्सनालिटि ए साइकोलोजिकल इन्टप्रिटेशन, पृष्ठ - 214
3. लक्ष्मीनारायणलाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 53

वह सिंहासन की परिकल्पना करने वाले को घोर शत्रु मानता है--

"पता नहीं किस निर्मम ने
किस अमानवीय क्षण ने
किस मनोबल से
निर्मित किया था
सिंहासन को ।
जिस चेतन ने इस जड़ की
कल्पना की होगी
सचमुच वह घोर शत्रु था
मानव का ।"[1]

विनम्र होते हुए भी वह शक्ति हीन नहीं है । छोटे राजा के साथ द्वन्द्व-युद्ध में अद्भुत साहस और वीरता का परिचय देता है--

"मैं निहत्था हूँ तो क्या
संपूर्ण हूँ मैं ।"[2]

छोटे राजा को राज सिंहासन सौंपकर वह सन्यास ग्रहण कर लेता है । सन्यासी त्याग की भावना को अधिक महत्व देता है - दायित्वों को "बोझ" मानता है--

"माथे पर अपना बोझ
प्राणों पर सबका बोझ
आँखों में उनके बोझ
प्राणों पर सबका बोझ

- -

1. लक्ष्मीनारायणलाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 54
2. " , " , " - 61
3.

आँखों में उनके बोध
जिन्होंने चुना था मुझे
जिन्होंने जन्म दिया
जिन्होंने कर्म दिया
और मन पर उनका बोध
उन सबका बोध
जिनसे आसक्ति है, पराजय है
बंधन है ।"[1]

सन्यासी के रूप में वह "धर्मराज" का ढोंग करनेवाले पुरोहित की पोल खोलता है--

"स्वार्थी वह
औरों की रट-रट कर
जो बो दें ऊँची बात
अभिनव कर दे किसी का
ऐसा जो कहा नहा जाये अपने में
समझो भयानक है
तुम सबने सत्य पा लिया
वह धर्मराज से
लेकिन वह छिपा क्यों
बोलता क्यों है ठूंठ के पीछे खड़ा हो ।"[2]

नगरी के राजा को प्रजा के साथ मिलकर सरोवर के देवता की अर्चना करने का निर्देश देता है--

- -

1. लक्ष्मीनारायणलाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 63
2. " , " , " - 21-22

"नगरी के राजा
और कंधा मिलाओ प्रजा से
और संयुक्त हो
नगरी के राजा
तुम और झुको
छू लो मस्तक से धरा ।"[1]

वह नगरी के जीवन में पुन: नयी मर्यादा और मूल्यों की स्थापना करने के लिए आत्मबलि तक देने को प्रस्तुत होता है--

"होगा क्या
मैं दूँगा बलि,
ऐसी बलि, जैसा कि प्रतिश्रुत हूँ देवता से
मेरी बलि पानी दिलाकर
मर्यादा नयी देगी
रक्षा करना तुम ।"[2]

"आत्मजयी" में नचिकेता अपना सारा जीवन यम या काल को सौंप देता है अर्थात् वह अपनी चेतना को काम सापेक्ष समय से मुक्त कर देता है । वह विशुद्ध अस्तित्व बोध रह जाता है । किसी भी महान लक्ष्य को पाने से पहले इस आत्मविश्वास को पाना अत्यंत आवश्यक है तभी मनुष्य अपने लिये तथा सबके लिए, निजी सुख सुविधाओं से परे कुछ प्राप्त कर सकता है । तब वह जीवन में कुछ पाने की ही आशा पर चलने वाला असहाय प्राणी ही नहीं जीवन को कुछ दे सकनेवाला समर्थ मनुष्य होगा । उसके लिए तब यह चिंता सहसा व्यर्थ हो जाएगी कि

- -

1. लक्ष्मीनारायण लाल, सूखा सरोवर, पृष्ठ - 33
2. " , " , " - 119

जीवन कितना असार है उसकी मुख्य चिंता यह होगी कि वह जीवन को कितना सारपूर्ण बना सकता है यथार्थ अब उसके बाहर नहीं, उसमें उससे है - अन्यथा वह कुछ नहीं । संपूर्ण बाह्य परिस्थिति तो उसकी चेतना से विकीर्ण है - चेतना तो उसके वश में नहीं या फिर अंधेरी है । वह चाहे तो सब कुछ अस्वीकार करके स्वयं को   को लौटा दे चाहे तो उसे स्वीकार करके एक नया अर्थ दे--

पहली परिस्थिति में नचिकेता अपने आपको काल को सौंप देता है, अर्थात् वह दिए गए बाह्य जीवन को अस्वीकार करता है आंतरिक जीवन के प्रति सचेत हुए भी वह अपने में आत्मशक्ति का विकास नहीं कर पाता है । वह निराशा के उस चरम बिंदु पर पहुंच जाता है । जहां साधारण जीवन की कोई सान्त्वना नहीं अस्तित्व पूर्णत: निरर्थक और असार लगता है । मन की यह वीतराग दशा जब सारे भौतिक मूल्य समाप्त हो जाते हैं - अस्तित्व जगत सापेक्ष नहीं रह जाता । स्वयं को सौंपता हुआ व्यक्ति एक इकाई रह जाता है जिसके सामने दूसरी इकाई है केवल अनिर्वचनीय महाशून्य । वह है जिसमें वह अपनी चेतना को लिप्त रख सके आत्महत्या ही उसे एक रास्ता दिखाई देता है--

"बलि के बाद की वेदी सूनसान एकांत
इतनी पास
जैसे किसी बिल्कुल निजि दुःख छू
रहा हो
छटपटाता रक्त
पीने के लिए अब नहीं

- -

व.

जो स्पर्श-लालायित-कदाचित
समर्पण के इस व्यथा के बाद
केवल मुक्ति हो ।"[1]

नचिकेता के समस्त जीवन को भ्रम मिश्रित उत्कण्ठा घेर लेती है उसे जीवन की कोई राह दिखाई नहीं देती--

"कहाँ जाऊँ
हर दिशा में
मृत्यु से भी बहुत आगे की
अपरिचित दूरियाँ है
किसे अपनाऊँ
कि निराशा को पार पाउ
कहाँ है वह बाँह, वह विश्वास जीवन सिद्धि
जो मुझे भटक्ते को ग्रहण करे
और मृतकों की सहस्त्रों पर्त गहरी
जर्जरित इस सभ्यता के पार पहुंचा दे ।"[2]

मृत्यु को विचारने तथा सहसा जीवन से उपराप होते नचिकेता भी निराशा बुद्ध की निराशा से बहुत भिन्न नहीं है । इसी प्रकार "गीता" में "युद्ध नहीं करूंगा" कहकर अर्जुन जब हथियार डाल देता है उस समय जीवन की असारता के प्रति अकस्मात सचेत हुए अर्जुन की वेदना का कोई अंत नहीं । पहली परिस्थिति में, नचिकेता की तरह वे सभी अपने आपको किसी न किसी रूप में संसार की अपेक्षा समाप्त कर लेते हैं ।

- -

1. कुंवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ - 43
2. " ," ," - 49

हम देखते हैं कि इस बिंदु से प्रत्येक चिंतक लौटता है - फिर एक बार जीवन की ओर । वह फिर से जीवन जीता है किसी ऐसे सत्य के लिए जिसे एक समझता है अमर है । यही उसका शाश्वत जीवन है, अमर जीवन है । वह सत्य "निर्वाण" हो सकता है, वह सत्य "ईश्वर" हो सकता है वह सत्य कोई ऐसा जीवन सत्य हो सकता है जो मरण धर्म व्यक्तिगत जीवन से बड़ा हो अधिक चिरस्थायी हो--

नचिकेता इस सार्थक अनुभूति तक पहुँचता है कि निजी सुख-सुविधा की खोज ही जीवन का चरम लक्ष्य नहीं--

"केवल भौतिक शर्तों पर ही
जीवन की कोई सान्त्वना नहीं
वह जीना मरने से बदतर
जिसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं कल्पना नहीं ।"[1]

जीवन के पूर्णानुभव के लिए किसी एक ऐसे मूल्य के लिए जीना आवश्यक है जो जीवन की अनश्वरता का बोध कराए--

"तुमको अपनी
घोरतम निराशा से बल लेना होगा
मृत संस्कारों से अपना जीवन खाली कर
उस खालीपन को नया मर्म देना होगा ।"[2]

यही खालीपन को नया मर्म देना होगा यही मनुष्य को सान्त्वना दे सकता है कि मृत्यु होते हुए भी भीतर वह भी वह किसी अमर अर्थ में जी सकता है--

- -

1. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ - 72

2.

"विश्वासों
या किसी विचित्र तर्क से ही
जीने को कोई अर्थ दिया जा सकता है
इतना विराट
इतना सुंदर
इतना असह्य
जो शायद केवल मृत्यु तले
संदिग्ध क्षणों में बीच जिया जा सकता है
बल्कि आकलित हो ।"[1]

नचिकेता यह जान जाता है प्रेम कार्य लुभाने और तात्कालिक सुख दिलाने वाले होते हो । इनका अधिकांश संबंध शारीरिक सुखों से होता है । विवेक मनुष्य कर्मों द्वारा आत्मिक सुख को पाते हैं । जीवन को सार्थक बनाते हैं । श्रद्धा श्रेय कर्मों की सहचरी है प्रेम कर्म से मन प्रभावित होता है । मन की चंचलता शारीरिक भूख को ललचाती है । विवेकी मनुष्य संयंत्र से काम लेते हैं तात्कालिक सुख के निर्लोभी बनकर श्रेय कर्मों द्वारा जीवन की पतन से बचाते हैं । शरीर आत्मा, मन और बुद्ध के परस्पर संबंधों को विशद बनाते हैं---

"व्यक्ति दास नहीं देह का
स्वामी भी है
अनुशासित भी इच्छाओं का
लक्ष्यहीन इंद्रिय विचरण तो
साधन का उपयोग नहीं उप भोग मात्र है
चिंताशील

---

1. कुंवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ - 72

कर्मठ मानव के उपाय से
खनिज परिस्थितियाँ जीवन की
दिव्य स्वरूप हो सकती है ।"[1]

मनोविकारों से क्रमशः मुक्त होता हुआ नचिकेता स्वयं को सृजन, सौंदर्य, शांति और मुक्ति के प्रति समर्पित करने में समर्थ होता है ।

"उत्तर प्रियदर्शी" में भिक्षु का दिव्य प्रभाव से युक्त व्यक्तित्व लौकिक की अपेक्षा अलौकिक ही अधिक है । उसके दिव्य चामात्कारिक प्रभाव से नरक की ज्वालाएं शांत होती है और खौलते कराहे में कमल खिल उठते हैं--

"विफल हुई सब कृशा
नरक ज्वालाएं
शमित हुई
उत्तप्त कड़ाहे में खिल उठे
कोकनद कमल ।"[2]

भिक्षु के चरित्र में किसी प्रकार की जटिलता या द्वन्द्वात्मकता स्थिति नहीं आ सकती वह द्वन्द्वातीत और निर्विकार होने के कारण स्वभाव के एक निश्चित क्षेत्र में सीमित होता है ।

"महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर युद्ध के पश्चात विरक्त होकर अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ हिमालय की ऊंचाई पर जाने लगते हैं । उनकी आसक्ति किसी में नहीं है । निर्वेद की भूमिका पर वे अनुभव करते हैं स्वर्गमार्ग में अकेले युधिष्ठिर शेष रह जाते हैं । उनकी

- -

1. अज्ञेय, उत्तर प्रियदर्शी, पृष्ठ - 38

शिम भ्रम है उन्हें अत: प्रेरणा होती है कि हिम यातना का अनुभव करनेवाले इस देह को त्याग देना ही आवश्यक उचित है । और हिमालय का वरण करना चाहिए--

"त्यागो युधिष्ठिर इस देह को
देवताओं की देहवर्णी सी
ज्वलय पवित्रता
युधिष्ठिर ! वरण करो
अपनी आत्मा में
हिमालय को वरण करो ।"[1]

"शम्बूक" में शम्बूक भी अपने सब कार्यों में धर्मदृष्ठि की प्रधानता देखता है । वह राम से इसलिए युद्ध नहीं करना चाहता क्यों कि उस समय वह तपस्वी का पद प्राप्त किये हुए है इस अवस्था में राम से युद्ध करना उन्हें शोभा नहीं देता--

"मैं तुम्हारे नियम का
बंदी नहीं हूँ
प्रकृति से अनिरुद्ध
अब तपस्वी हूँ
मैं करता तुम्हीं से युद्ध
छोड़कर तप युद्ध । अक्षम चूक
यह नहीं शोभन तुम्हें शम्बूक ।"[2]

"प्रवाद पर्व" में राम भी सभी कार्यों में धर्मदृष्टि को प्रधानता देते हैं । इसी प्रवृत्ति के कारण राम मंत्री परिषद से असहमत होते हुए एक साधारण व्यक्ति के पक्ष में निर्णय लेते हैं--

---

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृष्ठ - 111
2. जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृष्ठ - 66

"निर्वेद की इसी पाठिका पर खड़े होकर
राष्ट्र न्याय
राष्ट्र, इतिहास
मानवीय आचरण के देखने पर
मंत्री परिषद के अभिमत से सहमत होना
मेरे लिए नहीं
किसी के लिए भी कठिन होगा।"[1]

"उर्वशी" में पुरुरवा प्रेम के वशीभूत होकर क्रोध प्रकट करता है और उर्वशी अन्तर्धान हो जाने पर सन्यासी बन जाता है इस प्रकार प्रेम उसके पतन में नहीं बल्कि निर्वाण में सहायक होता है--

"पहुँच गया मेरा मुहूर्त, किरणें समेट अंबर से
चक्रवाल के पार विजन में कहीं उतर जाने का किंतु
जहाँ रहूँगा, वहीं महाभूत का अणु बनाकर।"[2]

"सूर्यपुत्र" में कर्ण कुंती से परिचित होने पर आत्मत्याग के गुणों से प्रेरित होते उसको आश्वासन देते हैं--

"युद्ध में नहीं करूंगा हनन तुम्हारे किस पुत्र का
केवल अर्जुन को तुम मत करो इसमें सम्मिलित।"[3]

माता कुंती के प्रति मर्यादित होते हुए कर्ण यह निवेदन करते हैं--

"पर यदि अर्जुन का निधन हो मेरे हाथों
और जीवित रह जाऊं मैं
तो आना तुम मिलने वीर माँ की तरह

---

1. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृष्ठ - 97
2. दिनकर, उर्वशी, पृष्ठ - 146
3. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र, पृष्ठ -

इस तरह गोपनीय, निर्जन तट पर नहीं
करना अभ्यर्थना सार्वजनिक रूप से
--देना मुझे मातृ स्नेह ।"

कर्मदृष्टि की प्रधानता के कारण कर्ण अर्जुन से असमर्थ होते हुए भी उन्हीं के पक्ष में निर्णय लेते हैं और वीर गति को प्राप्त होते हैं--

"देखता रहा कर्ण
पहिये को निकालने कूद पड़ा रथ से
इंगित पर कृष्ण के
सहमते हुए अर्जुन ने
चढ़ा लिया धनुष पर अंजालिक बाण ।
खींच दी प्रत्यंचा और छा गया अंधकार
एक विभूति निमिषों में
हो गई पूर्ण शांत इस नरलोक से ।"[2]

पांडु पुत्रों से सहमत होते हुए भी श्री कृष्ण कर्ण के विछोह से वेदनाग्रस्त होते हैं कर्ण के शौर्य का स्मरण करते हुए कर्ण के अवसान का दाह सहते हुए कहते हैं--

"इस महाभारत का दर्शक रहा हूं मैं
मैंने देखे हैं समर के भयावह दृश्य
इन दो पखवाड़ों में ।
कर्ण के निधन से डूब गया एक सूर्य
--महान देदीप्यमान
कर्ण सुकृत का शौर्य का इस युग के

1.
2. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र, पृष्ठ - 143

समय का हस्ताक्षर का अनन्य
द्वापर का ।
आयेगा नया लेकर नयी शक्ति, नया उल्लास
नयी आशा और अभिलाषा ।"[1]

"इला और अमिताभ" में इला में स्त्री-पुरुष का द्वन्द्व है नारी के अतिम प्रेम और पुरुष के प्रेम की ईश्वर भक्ति या शरणागति में चरम शांति और संतोष खोजने में परिणति ने इस द्वन्द्व को जन्म दिया है ।

"एक विश्वास और" में संयोजनशील जीवन दर्शन के कारण विश्वामित्र अपने शिष्य राम की सभी कठिनाइयों को सरल बना देते हैं उन्हें देशाटन के लिए प्रेरित करते हैं ।

- -

1. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र, पृष्ठ - 143
2. "

उपसंहार

मानसिक और स्नायविक रोगों की चिकित्सा की विशेष विधि है, जिसके फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का संघटन हुआ। इसके जन्मदाता सिगमंड फ्रायड थे और उन्होंने इसका उपयोग चिकित्सा शास्त्र में ही किया था। परन्तु, सि चिकित्सा की यह विधि जिन मूल सिद्धान्तों पर आधारित है। उन सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण, समर्थन विरोध अन्य सिद्धान्तों की स्थापना आदि से फ्रायड के समय से अब तक मनोविज्ञान ने इतनी प्रगति की कि आधुनिक युग की कोई भी विचार-धारा इसके प्रभाव से अछूती नहीं रह सकी। फ्रायड मानसिक -स्नायविक रोगों की चिकित्सा करते समय जिन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर पहुँचे उनका सार तीन शब्दों में व्यक्त हो सकता है - शैशवीय, दमित काम वृत्ति। शैशव में जब मानस में केवल "इड" ही विकसित रहता है दमन का प्रश्न नहीं उठता, किन्तु सामाजिक और नैतिक दबावों के कारण अहं और स्वाभाविक कामेच्छाओं का दमन होने लगता है। इच्छाओं के दमन के परिणाम स्वरूप ईडिपस कुण्ठा (भाव ग्रंथि) का फ्रायड के सिद्धान्तों में विशेष महत्व है। साधारण स्वप्न जीवन में ये दमित वासनाएं और कुण्ठाएं अपने को व्यक्त करने का प्रयत्न करती है परन्तु आदर्श अहम् (सुपर ईगो) द्वारा निर्मित प्रतिरोध के कारण अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट नहीं होती अपितु कपट वेशों में प्रकट होती है। यह कपट रूप स्वप्न और जाग्रत जीवन की भूलें हैं।

फ्रायड का एक अन्य सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक अभिप्राय का है जीवन का छोटे से छोटा व्यवहार सप्रयोजन होता है मानसिक जीवन में कुछ भी निष्प्रयोजन अथवा अकारण नहीं होता।

मनोविश्लेषण केवल फ्रायड तक ही सीमित नहीं रहा अन्य मनोविश्लेषकों ने अपने अनुसंधानों द्वारा कुछ नये सिद्धान्त भी दिए हैं ।

एडलर ने अहम् को महत्व दिया और कहा कि मानसिक स्नायविक रोगों का मूलकारण काम वृत्ति के अतिरिक्त अहं की मांग हो सकती है । यथार्थ से संघर्ष के कारण व्यक्ति के आत्म स्थापन को संतोष नहीं मिल पाता और उसमें हीनता ग्रंथि विकसित हो जाती है । इससे मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति प्रयत्न करता है, इसका दमन करता है । दमन से कुछ व्यक्तियों के आध्यात्मिक गर्व आ जाता है जिसे हीनत्व कुण्ठा का कपट रूप मान सकते हैं । इस भावना से बचने के लिए विशेष जीवन शैली अपनाता है और यह जीवन शैली परिवार में व्यक्ति की स्थिति से निश्चित होती है ।

युंग ने लिबिडो का अधिक विस्तृत अर्थ लिया, जिसमें फ्रायड की कामवृत्ति एवं एडलर की आत्म स्थापन वृत्ति दोनों सम्मिलित हैं । वह इसे जीवन की वह प्रारंभिक और सामान्य प्रेरक शक्ति मानते हैं, जो मानव के सभी व्यवहार में व्यक्त होती है । यह शक्ति जीवन शक्ति या मनः शक्ति कहा जा सकता है । युंग ने अपने दूसरे सिद्धान्त में कहा यह शक्ति एक अन्तिम साम्यावस्था की ओर उन्मुख रहती है । युंग की तीसरी महत्वपूर्ण देन व्यक्ति के प्रकारों में है । पहले प्रकार के व्यक्ति अंतर्मुखी और दूसरे प्रकार के व्यक्ति बहिर्मुखी होते हैं । अंतर्मुखी व्यक्ति विचारों और भावनाओं में केन्द्रित होने के कारण अधिक भावुक कल्पनाशील एकान्त प्रिय और अव्यावहारिक होते हैं । बहिर्मुखी व्यक्ति व्यवहार कुशल समाज प्रिय और क्रियाशील अधिक होते हैं ।

ओटोरैंक, कैरनहार्नी, एरिक फ्रोम व्यक्ति के अध्ययन में समाज एवं संस्कृति को महत्व देते है ।

व्यक्ति के मानसिक रसायनिक अध्ययन के लिए वंश परम्परा और परिवेश को आधार बनाया गया । प्रायड, एरिक फ्रोम, गोल्डस्टीन परिवेश को महत्व देते हैं तो युंग तथा आलपोर्ट वंश को, और एडलर वंश तथा परिवेश के साथ व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति को महत्व देते हैं । सुलीवान, लेविन समाज और संस्कृति को मनुष्य के निर्माण में महत्व पूर्ण मानते हैं । वंश एवं परिवेश के पश्चात् व्यक्ति के विकास की अवस्था में व्यक्ति के व्यवहार की सोद्देश्यता एवं व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियाँ व्यक्ति को समझने में सहायक होती है । व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों में आत्मरक्षा की प्रवृत्ति पर आधारित भावनाएं और व्युत्पन्न अथवा मिश्रित प्रवृत्तियाँ हैं । आत्मरक्षा प्रवृत्ति पर के अन्तर्गत आने वाली भावनाएं पलायन ।भय। युयुत्सा ।क्रोध एवं यौनिकता। शरणागति । दैन्य। एवं अधीनता । वात्सल्य । जिज्ञासा ।विस्मय। स्व प्रतिष्ठापन अथवा अंहवृत्ति है मिश्रीत प्रवृतियाँ जैसे विश्वास, आशा, निराशा, अनुताप, शोक, हर्ष, कृतज्ञता, निर्वेद, ग्लानि, ईर्ष्या, उद्वेग विषाद, क्षोभ, जड़ता, असंतोष आदि है ।

व्यक्ति मनोविश्लेषण में मूल प्रारुप सम्बन्धी सिद्धान्त का भी विशेष महत्व है । युंग का कथन है सामुहिक अचेतन ही वास्तविक रुप में मिथकों की सृष्टि करता है । मनुष्य की आदिम जिज्ञासा सृष्टि के मिथक शिव, राम, कृष्ण तथा अन्य पौराणिक मिथकों से प्रारंभ होती है और आधुनिक युग में नयी अर्थवत्ता प्रदान करती है ।

फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त में अचेतन मन की कार्य विधि मानसिक संघर्षों में निहित है जिसके आधार पर अन्तर्द्वंद, दमन, विस्थापन, प्रतीकीकरण, प्रतिक्रिया निर्माण, प्रक्षेपण, तादात्मीकरण, औचित्य स्थापन, क्षति पूर्ति, पलायन, प्रतिगमन, उन्नयन आदि है । एडलर एवं युंग के आधार पर अन्तर्द्वन्द्व एवं एरिक फ्रॉम कैरनहार्नी के नवीन सिद्धान्तों में भी अन्तर्द्वन्द्व का विशेष महत्व है । विभिन्न नाट्य काव्यों में अचेतन मन की कार्य विधि का उल्लेख है ।

व्यक्ति के अध्ययन में स्वप्नों का महत्वपूर्ण स्थान है । स्वप्नों के सम्बन्ध फ्रायड, एडलर एवं युंग की दृष्टि विशेष महत्वपूर्ण है । फ्रायड स्वप्न को एक मानसिक प्रक्रिया मानते हैं । एडलर स्वप्न को सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति एवं युंग स्वप्नों का सम्बन्ध वर्तमान समस्याओं से मानते हैं ।

मानसिक सतुंलन के लिए अचेतन मन की कार्य विधि भी महत्वपूर्ण होती है जैसे दृढ़ता, मौलिक नैतिक निर्णय, सहयोग, आत्म विस्तार, आत्म निरीक्षण संयोजनशील जीवन दर्शन । विकास की उच्चतर स्थिति में व्यक्ति एक संतुलित स्थिति को प्राप्त होता है ।

समकालीन नाट्य-काव्यों में मूलभावों की व्यंजना विशेष महत्व रखती है । व्यक्ति में मूलभूत प्रवृत्तियाँ जैसे घृणा या विकर्षण आत्मरक्षा की वृत्ति पर आधारित भावनाएं जैसे विस्मय आदि है समकालीन नाट्य काव्यों में मिश्र भावनाओं की व्यंजना भी दिखाई पड़ती है । सूखा सरोवर, उत्तर प्रियदर्शी, उर्वशी, संशय की एक रात, महाप्रस्थान, प्रवाद पर्व, आत्मजयी, एक कंठ विष पायी, एक पुरुष और , शम्बूक,

एक विश्वास और सूर्य पुत्र, महारथचन्द्र का मध्यान्तर, जानकी जीवन, सीता समाधि आदि में मूल का अन्तर्द्वन्द्व भावनाओं की व्यंजना व्यक्ति विश्लेषण में सहायक है।

हम किन्हीं प्राक्कथाओं पुरा गाथाओं, आदिम विश्वासों का अध्ययन करते हुए सामूहिक अवचेतन को जानने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं जो आज भी अतीत की असंख्य मानवीय प्रवृत्तियों को अपने में संजोये हुए हमारे वर्तमान जीवन को प्रेरित और संचालित करते हैं। मिथकों का आधुनिक उपयोग जहाँ आज के लेखकों रचनात्मक सफलता प्रदान करता है वहीं उनका कालातीत अध्ययन मनुष्य मात्र की प्रवृत्ति नियति से परिचित कराता है। सृष्टि के मिथक, शिव, राम, कृष्ण तथा अन्य ऐतिहासिक मिथक समकालीन नाट्य काव्यों के आधार स्तम्भ हैं। इन मिथकों को समकालीन नाट्य काव्यों में प्रयुक्त करके मिथकों में निहित मानव सत्य को उद्घाटित करना है तथा आधुनिक जीवन द्वारा प्रस्तुत की गई चुनौतियों को मिथक के परिप्रेक्ष्य में देखना है।

समकालीन नाट्य काव्यों में मानसिक संघर्षों, तत्सम्बन्धी प्रेरणाओं, तद् अन्य कुण्ठाओं की प्रतिक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक रूप आज की समस्या का जीता जागता प्रमाण है। मानसिक व्याधियों से ग्रस्त व्यक्ति तीव्र और गहरे मानसिक विक्षोभ के कारण अपने आप को संभाल नहीं पाता। और न ही सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बन पाता है ऐसी स्थिति में अचेतन में अतृप्त इच्छाएं एकत्रित होती जाती हैं जो मन में तनाव और पीड़ा उत्पन्न करती है। यह अन्तर्द्वन्द्व आत्माभिव्यक्ति से ही उत्पन्न नहीं प्रत्युत आत्म रक्षण आदि प्रवृत्तियों के दमन से इसका जन्म होता है।

और इससे ग्रस्त व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है । आज व्यक्तित्व के विकास में मानसिक संघर्ष एक ज्वलंत समस्या है । आलोच्य नाट्य काव्य आधुनिक मानसिकता की देन है अतः सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति से ओत प्रोत है ।

फ्रायड एडलर एवं युंग व्यक्ति के विकास में स्वप्नों का महत्व पूर्ण स्थान मानते हैं । स्वप्न के कुछ प्रसंग व्यक्ति के सामान्य क्रिया व्यापारों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । स्वप्नों की सहायता से व्यक्ति के अप्रकट अंशों तथा व्यक्ति चरित्र के नियामक अवयवों, स्वभावों मनोवृत्तियों और कार्य प्रणाली का अध्ययन किया सकता है । स्वप्न की दृष्टि से आलोच्य नाट्य काव्यों में कुँवरनारायण के आत्मजयी का विशेष महत्व है । नचिकेता के द्वारा देखे गए स्वप्नों का चित्रण जिस रूप में किया गया है इससे पूर्ण स्पष्ट है कि उसके द्वारा देखा गया स्वप्न पूर्ण सार्थक एवं नचिकेता के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है । फ्रायड के अनुसार देखा जाय तो नचिकेता के स्वप्नों का निश्चित अर्थ है । यह अर्थ अचेतन में पड़ी दबी अनैतिक, अवदमित इच्छाओं द्वारा तुष्टि प्राप्ति के प्रयत्नों से सम्बन्धित है । वाजश्रवा की संचय वृत्ति और यज्ञ की आहुतियों में निहित हिंसा का विरोध नचिकेता एक साथ करता है । वह बीमार, बूढ़ी गायों के दान अर्थात् सब कुछ संचित करने के क्रम में केवल निकृष्ट वस्तुओं से मुक्ति पाने के प्रयास की निंदा करते हुए वाजश्रवा को चुनौती देता है " मुझे किसको दान दोगे । नचिकेता क्रुद्ध होकर आत्म हत्या का प्रयत्न करता है लेकिन बचा लिया जाता है और स्वप्न में पूर्व जिवन की ईप्सित इच्छाओं को देखता है। जिसका अवलम्ब सुदूर अतीत की इच्छाओं से है ।

अभिनेता को स्वप्न में अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है । उसे यम से प्राप्त वरदानों में सृष्टि, सौन्दर्य, शान्ति और मुक्ति बोध होता है ।

विकास की निरन्तर ऊर्ध्वमुखी प्रक्रिया में व्यक्ति एक स्थिति में पहुंचता है जिसमें उसकी समस्त भावनाएं किसी एक ही उद्गम से निःसृत होती सी प्रतीत होती है यह अवस्था प्रत्येक मनुष्य के लिए संभव होती हुई विशिष्ट प्रयत्न के अभाव में सबको प्राप्त नहीं होती किन्तु जिस व्यक्ति को इस अवस्था की प्राप्ति हो जाती है उसे फिर कोई अभाव पीड़ित नहीं कर पाता और उसकी अनुभूति उसके चिन्तन एवं उसके कार्यों में एक अपूर्व सामंजस्य ला देता है यह अपनी व्यक्तिक सत्ता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न ही नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति अथवा उससे भी आगे बढ़कर सम्पूर्ण सृष्टि के साथ अपना आत्मिक विकास एवं एकीकरण करता है और उसके स्वभाव विचार एवं कार्य सृष्टि कल्याण के ही सहायक हो जाते हैं । सुस्थिरता, नैतिक बौद्धिक निर्णय सहयोग, आत्म निरीक्षण, आत्म विस्तार संयोजनशील जीवन दर्शन आदि अचेतन मन की इन कार्य विधियों के द्वारा व्यक्ति इस अवस्था को प्राप्त होता है । महा प्रस्थान में युधिष्ठिर परिस्थितियों के मध्य से गुजरते हुए सुस्थिरता का अनुभव करते हैं । यात्रा का अन्तिम हिम पथ धर्म पथ में परिवर्तित हो जाता है । युधिष्ठिर आत्मनिरीक्षण से यह जानने में सफल होते हैं कि हिम यातना का अनुभव करने वाले शरीर को विराट अग्नि से समर्पित कर देना ही श्रेष्ठ है । युद्ध के पश्चात विरक्त युधिष्ठिर संयोजनशील जीवन बिताने के लिए अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ हिमालय की ऊंचाइयों पर जाने लगते हैं । निर्वेद की भूमिका में वे यह अनुभव करते हैं कि हिम यातना का अनुभव करने वाले इस देह को त्याग देना आवश्यक है और हिमालय का वरण करना

उचित है। वे निर्मम होने को हिमालय की आत्मा बताते हैं। अनासक्ति हिमालय की आत्मा है। निर्वेद की भूमिका में शांति का अनुभव करते हैं।

समकालीन नाट्य काव्य जिन परिस्थितियों में लिखा गया है व्यक्ति और समाज की समस्याएँ उसका केन्द्र है। विभिन्न मनोवृत्तियों के आवरण में लिपटा व्यक्ति के अभावों उस की स्वच्छता में है का अध्ययन आधुनिक मनोविज्ञान ही अपने ज्ञान के आलोक में कर सकता है। मनोविश्लेषण का सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी में विश्व मनीषा का एक अन्यतम महत्वपूर्ण तथा अविभाज्य अंग बन गया है। मनुष्य के मन तथा उसकी वास्तविक प्रेरणाओं का जो ज्ञान पहले केवल प्रतिभाशाली अन्तर्दृष्ट के लिए ही संभव था, वह अब सामान्य ज्ञान का विषय है। साहित्य पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ा है। मानव मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृत्तियों को साहित्य में स्थान मिल रहा है। समकालीन नाट्य काव्यों में प्राप्त ये परम्परा उज्ज्वल ही नहीं सराहनीय भी है।

-::::-

सहायक ग्रंथ सूची

काव्य - ग्रंथ

1. अन्तिम निर्णय
   दिनाकल
   प्रथम संस्करण -1980
   विभूति प्रकाशन-14, नवीन शाहदरा, दिल्ली-2

2. अग्निलीक
   भारतभूषण अग्रवाल
   प्रथम संस्करण, 1980
   राजकमल प्रकाशन, प्रा, लि, 8, नेताजी सुभाष मार्ग
   नयी- दिल्ली - 110002.

3. आहत आत्माएँ
   डा० देवराज
   प्रथम संस्करण, 1978.
   कल्पकार प्रकाशन, 52. बादशाह नगर , लखनऊ-6

4. आत्मजयी
   कुंवरनारायण
   पंचम संस्करण, 1979.
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ,नई-दिल्ली.

5. आत्मदान
   बलदेववंशी
   प्रथम संस्करण, 1982.
   नेशनल पब्लिशिंग हाउस.

6. इला और अमिताभ
   डा० देवराज
   प्रथम संस्करण. 1972.
   राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.8.
   फैजबाजार, दरियागंज दिल्ली-62

7. उत्तर प्रियदर्शी.
हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय
प्रथम संस्करण. 1967
अक्षर प्रकाशन, प्रा० लि० दरियागंज- दिल्ली-6

8. उर्वशी
रामधारी सिंह "दिनकर"
पंचम संस्करण, 1973.
उदयाचल, राजेन्द्रनगर, पटना-6

9. एक पुरुष और.
डॉ० विनय
प्रथम संस्करण. 1974.
भारतीय भाषा प्रकाशन. 5/2/6 बी.
विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32

10. एक कंठ विषपायी
दुष्यंत कुमार.
चतुर्थ संस्करण, 1979.
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

11. एक विश्वास और
रमेशचन्द्र मिश्र.
प्रथम संस्करण, 1975.
अंलकार प्रकाशन.666 शीश.
दिल्ली - 51.

12. जानकी जीवन.
राजाराम शुक्ल राष्ट्रीय आत्मा"
प्रथम संस्करण 1980.
अंकम प्रकाशन, रामबाग, कानपुर -12

13. प्रवाद पर्व
नरेश मेहता
प्रथम संस्करण-1977, लोक भारती प्रकाशन. -

14. महाप्रस्थान.
नरेश मेहता.
प्रथम संस्करण, 1975.
लोक भारती प्रकाशन, 15.ए. महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद - 13

15. माँ.
उमाकान्त मालवीय
प्रथम संस्करण -1973.
साहित्य भवन प्रा. लि.
इलाहाबाद - 3

16. महास्वप्न का मध्यान्तर
कैलाश वाजपेयी
प्रथम संस्करण- 1980
नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
नयी - दिल्ली -

17. शम्बूक.
जगदीश गुप्त
प्रथम संस्करण 1977.
लोकभारती प्रकाशन. 15,ए महात्मागाँधी मार्ग.

18. सूखा सरोवर
लक्ष्मीनारायण लाल
प्रथम संस्करण- 1960
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. काशी.

19. सूर्यपुत्र
जगदीश चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण - 1975.
दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि.
दिल्ली -45

20. संशय की एक रात
नरेश मेहता
प्रथम संस्करण - 1977
पुस्तकायन-5,9 स्वामी विवेकानन्द मार्ग
इलाहाबाद -3

21. सीता समाधि
रामेश्वरी अग्रवाल
प्रथम संस्करण, 1980
नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
नई- दिल्ली-

'आलोचनात्मक- ग्रंथ'

1. अरस्तु का काव्य शास्त्र
अनुवादक , डॉ० नगेन्द्र.
तृतीय आवृत्ति संवत, 2031.
भारतीय भण्डार हिन्दी अनुसंधान परिषद
दिल्ली विश्वविद्यालय .
दिल्ली -

2. आधुनिक प्रबन्ध काव्य: नवीनता के धरातल
डा० विनोद गोदरे.
प्रथम संस्करण, 1985.
वाणी प्रकाशन; नई-दिल्ली- 110002.

3. आत्मजयी चेतना और शिल्प
विजया शर्मा
प्रथम संस्करण, 1979.
दि. मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड.

4. आधुनिक मनोविज्ञान और सूर काव्य
डॉ. कमला आत्रेय
प्रथम संस्करण, 1976.
विद्या प्रकाशन, साहिबाबाद

5. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वप्न मनोविज्ञान
डॉ. कैलाश जोशी.
प्रथम संस्करण .1976.
सांघी प्रकाशन , जयपुर, उदयपुर

6. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन.
डॉ० गणेश दत्त गौड़
प्रथम संस्करण - 1965.
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा.

7. आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्व
डॉ० भानुराव काशीनाथ गायकवाड़.
प्रथम संस्करण, 1975.
पुस्तक संस्थान, नेहरू नगर - कानपुर -12.

8. उर्वशी विचार और विश्लेषण
वचनदेव कुमार
1973.
नेशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली-

9. उर्वशी एक नवीन दृष्टि.
डॉ. सतीश कुमार भार्गव
प्रथम संस्करण - 1978.
विज्ञान प्रकाशन -
दिल्ली -

10. उर्वशी काबुकी और चिन्तन.
अरविन्द पाण्डेय.
संस्करण, 1982
विद्या विहार, 87/40, ए.
आचार्य नगर- कानपुर -3

11. कवि की दृष्टि
भारत भूषण अग्रवाल
प्रथम संस्करण- 1978.
दि. मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड,
दिल्ली -

12. कुँवरनारायण और उनका साहित्य
अखिल मेहरोत्रा
प्रथम संस्करण 1984.
ज्ञान भारती, 4/14 रूप नगर- दिल्ली.

13. नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन
प्रभाकर शर्मा
प्रथम संस्करण - 1979.
पंचशील , प्रकाशन, जयपुर.

14. नरेश मेहता, कविता की ऊर्ध्वयात्रा.
राजकमल राय
प्रथम संस्करण - 1982.
लोक भारती प्रकाशन
15, ए. महात्मागांधी मार्ग - इलाहाबाद -

15. नीति प्रवेशिका
अनुवादक, गोवर्धन भट्ट.
द्वितीय संस्करण, 1972.
राजकमल प्रकाशन.-पटना.

16. नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर.
डॉ. संतोष कुमार तिवारी.
प्रथम संस्करण - 1980
जवाहर पुस्तकालय - मथुरा.

17. नरेश मेहता का काव्य: संवेदना और शिल्प
अभिनन्दन पटेल
प्रथम संस्करण , 1980
आराधना ब्रदर्स, 124/15, सी. गोविन्द नगर ,
कानपुर -

18. नयी कविता की प्रबन्ध चेतना
महावीर सिंह चौहान
प्रथम संस्करण - 1981.
गिरनार प्रकाशन, पिलाजी गंज,
मेहसाणा, गुजरात.

19. नयी कविता के नाट्य काव्य
हरिचरण शर्मा,
प्रथम संस्करण -1977.
शोध प्रबन्ध, प्रकाशन.
दिल्ली -

20. नयी कविता और पौराणिक गाथा
रामस्वार्थ सिंह
प्रथम संस्करण, 1980
पब्लिकेशन्स, नयी-दिल्ली.

21. पुराण विमर्श
बलदेव उपाध्याय
द्वितीय संस्करण, 1978.
चौखम्बा, विद्या भवन, वाराणसी.

22. पुरातत्व और कविता.
डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा.
प्रथम संस्करण, 1980
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी-दिल्ली.

23. मिथक और भाषा.
कल्याण मल लोढ़ा
प्रथम संस्करण, 1981.
हिन्दी विभाग कलकत्ता, विश्वविद्यालय
कलकत्ता.

24. मिथक और यथार्थ
डी. डी. कोसाम्बी
प्रथम संस्करण, 1983.
प्रकाशन संस्थान, दिल्ली - 110002,

25. मिथक और स्वप्न
डॉ. रमेश कुन्तल मेघ
संस्करण 1967.
अक्षर प्रकाशन, राजपथ.
कानपुर - 12.

26. मिथक और साहित्य
डा० नगेन्द्र
प्रथम संस्करण, 1979.
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
इलाहाबाद -

27. युवा संचेतना
डा० प्रेम वल्लभ शर्मा.
प्रथम संस्करण, 1983.
आर्य प्रकाशन मण्डल,
गांधी नगर, दिल्ली - 110031.

28. वैदिक माइथोलाजी
अनु. रामकुमार राय
प्रथम संस्करण, 1961.
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

29. राम काव्यों में नारी.
डा० विद्या.
प्रथम संस्करण, 1983.
प्रकाशन संस्थान, दिल्ली- 110002

30. सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान,
डा० शंकर प्रसाद.
प्रथम संस्करण , 1978.
अनुपम प्रकाशन, मथुरा.

31. समकालीन हिन्दी कविता सामाजिक मूल्य.
डा० रवीन्द्रनाथ वरमन
प्रथम संस्करण, 1984.
राजेश प्रकाशन, दिल्ली- 51

32. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा
देव भारद्वाज
प्रथम संस्करण, 1983.
पंचशील प्रकाशन, दिल्ली-

33. समकालीन हिन्दी कविता संवाद
सम्पादक, डा० विमल.
प्रथम संस्करण, 1976.
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली- 110007

34. स्वप्नलोक
हरिमोहन शर्मा
प्रथम संस्करण, 1971.
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन.
नेताजी सुभाष मार्ग- दिल्ली-6

35. स्वप्न सिद्धान्त
चन्द्रबली पाण्डे
1978.
परितोष प्रकाशन, 195, सीताराम (गौरीशंकर भाट)
[illegible]..-

36. हिन्दी के बहुचर्चित काव्य नये संदर्भ
बलभीम राजगोरे
प्रथम संस्करण, 1980
अनुपम प्रकाशन, कानपुर -1

37. हिन्दी कहानी अलगाव का दर्शन.
मार्डन पार्श्व टोड़रमल.
प्रथम संस्करण, 1982.
अमर प्रकाशन-

संस्कृत - ग्रन्थ

1. ऋग्वेद.

2. यजुर्वेद.

3. अथर्ववेद

4. शतपथ ब्राह्मण- श्री वासुदेव -ब्रह्म भागवत

5. मनु स्मृति - मनु

6. ब्रह्म पुराण
मनसुख राय मोर, 5, क्लाइव रो.
1957. ई.
कलकत्ता.

7. पद्म पुराण
मनसुख राम मोर,
1957. ई.
5, क्लाईव रो. कलकत्ता -1

8. लिंग पुराण.
मनसुखराम मोर,
1957. ई.
5, क्लाइव रो, कलकत्ता-1

9. स्कन्द पुराण
मनसुख राम मोर
1957 ई.
5, क्लाइव.रो. कलकत्ता-1

10. ब्रह्मवैवर्त पुराण
मनसुखराम मोर
1957 ई.
5, क्लाईव रो. कलकत्ता-1

11. विष्णु पुराण
मनसुख राम मोर
1957 ई.
5, क्लाइव रो. कलकत्ता-1

12. कठोपनिषद्
महामण्डलेश्वर, महेशानन्दगिरि महाराज.
दक्षिणामूर्ति मठ, वाराणसी.

13. महाभारत, गीता प्रेस
गोरखपुर.

14. कथासरित्सागर.
अनु. एवं. पंडित केदारनाथ शर्मा सारस्वत.
बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना.

15. कथासरित्सागर
सम्पादक, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल.
बिहार राष्ट्र भाषा, परिषद, पटना.

16. तुलसीदास, रामचरितमानस - गीताप्रेस, गोरखपुर

17. रघुवंश.
कालिदास
अनुवादक. पं. हरगोविंद शास्त्री.
संस्कृत पुस्तकालय बनारस. वि. 2008.

18. उत्तर रामचरित
भवभूति अनुवादक, के.के. भट्ट.
बुक स्टोर्स, टावर रोड़, सूरत- 1953.

19. जैन रामायण.
    हेमचन्द्र.

20. श्रीमद् भगवतगीता,
    गीता प्रेस.
    गोरखपुर.

21. तैतरीय ब्राह्मण.

1. An historical Introduction to Modern Psychology.
Gardner Murphy
1949
London, Routleds J Kagan Paul L.T.D.

2. An out line of Psycho analysis
Frend Sigmund
1955
The Hogarth Press and the Institute of Psychoanalysis.

3. A Social interest; a challenge to Man kind
Alfred Adeler
1938
London Faber

4. Are you considering Psychoanalysis
Horney K.
1946
Norton.

5. An out line of Psychology
Mc Dougall William
1933
Methuen and Co Ltd., London.

6. Adlers Place in Psychology
Way, Lewis
1962
Collies Books, New York.

7. An Introduction to Social psychology
Mc.Dougall, William
1960
Methuen and Co.Ltd.,London.

8. An out line of Abnormal Psychology
Mc.Dougall William
1926
Methuen & Co.Ltd.,
36 Essex Street W.C.London

9. Behaviorism
Watson J.B.
1930
New York, Norton

10. Collected works
C.G. Jung,
1953
New York, Panthe on Bollingen Series

11. Contemporary theories and systems in Psychology
Benjamin B Wolman
1979
Freeman Book Company, Delhi.

12. Contemporary schools of Psychology
R.S.Woodworth
1930
London Methuen & Company

13. Conceptions of Modern Psychiatry
H.S.Gullivan
1947
Washington; W.A.White Foundation.

14. Crisis of Psychoanalysis
Erich Fromm
First Published in Great Britain 1971
Copy Right 1970, By Erich Fromm
Jonathan Cape thirty Bed Ford Square London

15. Escape from Freedom
Erich Fromm
1941
New York; Farrar & Pinchart

16. Energies of Man
Mc Dougall
1932
London; Methuen

17. Interpretation of Dreams
Frend Sigmund
Translated by James Strachey
1967
George allen and Unwin Ltd. London.

18. Modern Man in Search of soul
C.G. Jung
Translated by W.S.Bell
1933
Routled & Kegan Paul L.T.D.
Brodway House 68-74 London.

19. Memories Dreams and Reflections
C.G.Jung
Translated by Richard and Clarawinston
1963
New York Vinlage Books.

20. Myth and Literature
William Righter
1975
Routledge & Kegan Paul London.

21 Man for himself
From Erich
1947
New York Richart

22. Neurotic personality of our time
Horney K.
1937
New York, Norton.

23. New ways in Psychoanalysis
Horney K.
19 39
New York, Norton

24. Our Inner Conflicts
Horney K.
1945
New York, Norton.

25. Principles of Topological Psychology
Lewink
1936
New York Mc Graw-Hills.

26. Psychology and Morals
J.A.Hadfield
1927
Methuen & Co L.T.D.
36 Essex Street W.C. London

27. Psychological Types
C.G.Jung,
1933
New York, Harcourt Brace.

28. Principles of Gestalt Psychology
Koffka K.
1936
New York Har Court Brac

29. Practice and theory of Individual Psychology
Alfred Adler
1927
New York, Har Court Brace.

30. Psycholdgy of Jung
Avis M Dry
1961
London:Methuen & Co. Ltd.

31. Principles of Abnormal Psychology
Edmund S.Coriblin.

32. Personality: A Psychological Interpretation
All port Gordon W.D.
1948
Henary Holt and Co. New York.

33. Seven Psychologies
Heid Breder
1933
N-Y Appeleton, 1
Century, Crafts.

34. Science of living
Alfred Adler
1929
New York, Greenberg.

35. Sain Society
Erich Fromm
1955
New York, Rine hart.

36. Understanding human Nature
Alfred Adler
Translated by Walter Beranwolfe
1954
George Allen & Unwin Ltd.
Ruskin House Museum Street London

37. Will Theraphy truth and reality
Pankotto
1945
New York; Knoph.

38. What life should mean to you
Alfred Adler
1931
Boston Little Borown.

MAGAZINES

1. Mirror, September 1985

2. Psychological studies with a special article on measurement of human Motivation in India
Vol-29 November 1984.